उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

हल्द्वानी

BAKK - 301

स्तोत्र पाठ एवं होम विधि

मानविकी विद्याशाखा

कर्मकाण्ड विभाग

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139

फोन नं .05946- 261122 , 261123

टॉल फ्री न0 18001804025

Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

पाठयक्रम समिति

प्रोफे0 एच0पी0 शुक्ल
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य,संस्कृत विभाग
उ0मु0वि0वि 0, हल्द्वानी

डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
ज्योतिष-कर्मकाण्ड विभाग
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

डॉ0 रामराज उपाध्याय
सहायक आचार्य, पौरोहित्य विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली

डॉ0 रामानुज उपाध्याय
सहायक आचार्य, वेद विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, ज्योतिष-कर्मकाण्ड विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ उमेश शुक्ल प्रवक्ता, व्याकरण श्रीमती लाडदेवी शर्मा पंचोली महाविद्यालय, बरून्दनी भिलवाड़ा , राजस्थान	1	1, 2, 3, 4
डॉ0 रामानुज उपाध्याय सहायक आचार्य, वेद विभाग श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली	**2, 3**	1,2,3,4 1,2,3,4
डॉ0 रामराज उपाध्याय **एसोसिएट प्रोफेसर , पौरोहित्य विभाग** श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	**4**	1,2,3,4,5

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशित वर्ष - 2022

ISBN No. – 978-93-84632-87-8

प्रकाशक: - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय – 263139
मुद्रक:

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – सूक्त पाठ	**पृष्ठ - 1**
इकाई 1: पुरूष सूक्त	2 -9
इकाई 2: श्री सूक्त	10-30
इकाई 3: रूद्र सूक्त	31-50
इकाई 4: शिवसंकल्प सूक्त	51- 59
द्वितीय खण्ड - स्तोत्र पाठ	**पृष्ठ 60**
इकाई 1 : आदित्य हृदय स्तोत्र	61-81
इकाई 2 : अन्नपूर्णा स्तोत्र	82-103
इकाइ 3: देव्यापराध क्षमापन स्तोत्र	104-112
इकाइ 4: शिवपंचाक्षर एवं रूद्राष्टक स्तोत्र	113-122
तृतीय खण्ड – नवरात्र विधान	**पृष्ठ 123**
इकाई 1: नवरात्र परिचय एवं महत्व	124-132
इकाई 2: दुर्गासप्तशती पाठ विधि	133-146
इकाई 3: शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी पाठ विचार	147-159
इकाई 4: श्रीदुर्गाशप्तशती हवन विधान	160-182
चतुर्थ खण्ड - हवन विधि	**पृष्ठ 183**
इकाई 1: पंच भू संस्कार	184-203
इकाई 2: अग्नि स्थापन	204-219
इकाइ 3: कुशकण्डिका	220 –235
इकाई 4: हवन	236-251
इकाई 5: बलिविधान एवं पूर्णाहूति	252 – 268

बी0ए0 कर्मकाण्ड
BA-21
तृतीय वर्ष – BAKA-301
प्रथम पत्र
स्तोत्र पाठ एवं होम विधि

खण्ड – 1
सूक्त पाठ

इकाई-1 पुरूष सूक्त

इकाई की रुप रेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पुरूष सूक्त

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न उतर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 1 प्रस्तावना

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित खण्ड-1 की यह पहली इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि '**पुरूष सूक्त**' का प्रयोजन क्या है इसकी उत्पति किस प्रकार से हुई है? इसकी उत्पति अनादि काल से हुई है। तथा इसी सूक्त के माध्यम से आज सनातन धर्म की रक्षा हो रही है ।

सभी सूक्तों में '**पुरूषसूक्त**' श्रेष्ठ माना गया है। इसका सम्बन्ध सृष्टि सृजन से जुड़ा हुआ है। इसमें सोलह ऋचाएँ हैं, जो भगवान् नारायण के सृष्टि सृजन के स्वरूप को लेकर इससे जुड़ी हुई हैं। इन सोलह ऋचाओं से ही देवता के षोड़शोपचार पूजन हैं। पूजन के प्रत्येक उपचार के साथ पुरूषसूक्त की एक एक ऋचा जुड़ी है। इसके भावार्थ से ही सृष्टि सृजन का बोध होता है। इसके प्रथम मन्त्र में ही सहस्त्र शिरो से भाव है समस्त ब्रह्माण्ड जिसका अंश अस विश्व मृत्युलोक में समसत प्राणियों से जुड़ा हुआ है।यह स्वरूप हजारों नेत्र, हाथ पैर, अन्द्रिय होने से विराट् स्वरूप में प्रत्यक्ष है, जीवन में प्रत्यक्ष इसका आविर्भाव होता है। जीव का अंत हो जाने पर इसका तिरोभाव होताहै। इससे परब्रह्म महानारायण परमात्मा का व्यक्त और अव्यक्त निराकार और साकार रूप प्रकट होता है, जो अनंत स्वरूप है, जिसकी हजारों मूर्तियाँ है, जिसके हजारों पाँव, आँखें भुजाएँ हैं वह अच्युत पुरूष कोटियुगों से विद्यमान है। वस्तुतः वही सृष्टि का सृजन तत्त्व रूप में विद्यमान है। उस पुरूषोत्तम पुरूष को हम बार-बार नमस्कार करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप वेदशास्त्र से वर्णित पुरूष सूक्त का अध्ययन करेंगे।

1. पुरूष सूक्त के विषय में आप परिचित होंगे-
2. पुरूष सूक्त के सोलह मन्त्रों के विषय में आप परिचित होंगे
3. चारों वर्णों के उत्पत्ति के विषय में आप परिचित होंगे
4. पुरूष सूक्त के पन्द्रहवें मन्त्र के विषय में आप परिचित होंगे
5. पुरूष सूक्त के सोलहवें मन्त्र के विषय में आप परिचित होंगे

1.3 वर्ण विषय : पुरूष सूक्त

सहस्त्राशीर्षा पुरूषः सहस्त्राकक्षः सहस्त्रपात् ।

सभूमि गं सर्व्वतस्पृत्त्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।। 1 ।।

हे मनुष्यों! जिस पूर्ण परामात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर, आँखे और पैर आदि अवयव है जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहाँ जगत नहीं वहाँ भी पूर्ण हो रहा है।

पुरूषऽएवेदः गूँ सर्वंय्यद भूतँ य्यच्चभाव्व्यम्।

उतामृतत्त्वस्येशानों यदन्नेनातिरोहति।। 2 ।।

वह विराट पुरूष ही भूतत, भविष्य और वर्तमान है, वही ''अमृतत्वस्य ईशानः'' अर्थात अमरता का स्वामी है।यत् अन्नेन अतिरोहति अर्थात् जो अन्न से बढ़ता है। अन्न का अर्थ प्राण भी है।

एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च्च पूरुषः।

पदोस्य व्विश्श्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि ।। 3 ।।

इस विराट की इतनी महिमा है कि उससे भी बढ़कर व परूष महिमा वाला है इसके एक पादस्वरूप यह समस्त चराचर जगत है और तीन पादस्वरूप अमृतत्व दिव्य लोभ है।

त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरूषः पादोस्येहाभवत्पुनः।

ततो व्विष्ष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ।। 4 ।।

यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्यजगत् से पृथक तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत को बार बार उत्पन्न करता है, पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है। अर्थात् अनशन और अशन की सृष्टि में शासन के अन्तर्गत जगत जिसमें अन्नादि सृष्टि के प्राणी एवं अनशन अर्थात दिव्यलोक के प्राणी निवास करते है।

ततो व्विराडजायत व्विराजोऽअधिपूरूषः।

सजातो ऽअत्त्यरिच्च्यतपश्च्चाद्भूमिमथो पुरः ।। 5 ।।

परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पनन होता है, वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी हुआ, उसके दोषों से लिप्त न होकर इस सबका अधिष्ठाता है। इस प्रकार सामान्य रूप से जगत की रचना का वर्णन कर विशेषकर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते है।

तस्म्माद्यज्ञात्त्सर्व्वहुतः सम्भृतम्पृषदाज्ज्यम्।

पशूँस्ताँश्चक्क्रे व्वयव्व्यानारण्ण्या ग्राम्म्याश्च ये ।। 6 ।।

जिस सबका गहण करने योग्य, पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत के हित के लिए दही आदि भोग्य पदार्थो ओर ग्राम के तथा वन के पशु बनायें है उसकी सब लोग उपासना करो।

तस्म्माद्यज्ञात्त्सर्व्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दाःगं सिजज्ञिरे तस्म्माद्द्यजुस्त्स्म्मादजायत ।। 7 ।।

हे मनुष्यां! तुम को चाहिए कि उस पूर्ण अत्यन्त पूजनीय जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते या समर्पण करते है उस परमात्मा से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन हुआ; उस परमात्मा से अथर्ववेद उत्पन्न हुआ और उस पुरूष से यजुर्वेद उत्पन्न होता है और उस वेद को पढ़ो और उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ।

तस्म्मादश्श्वाऽअजायन्त ये के चोभयादतः

गावो हे जज्ञिरे तस्म्मात्तस्म्माज्जाताऽअजावयः ।। 8 ।।

हे मनुष्यों! तुम को घोड़े तथा जो कोई गदहा आदि दोनों, ओर ऊपर नीचे दाँतों वाले हैं वे

उस परमेश्वर से उत्पन्न हुए उसी से गौवें या अन्य भी एक ओर दाँत वाले जीव निश्चय करके उत्पन्न हुए हैं, इस प्रकार कहना चाहिए।

तँय्यज्ञम्बर्हिषि प्प्रौक्षन्नपुरूषंजातमग्रतः।

तेन देवाऽअयजन्त साद्ध्याऽऋषयश्च्च ये ॥ 9 ॥

विद्वान मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करे।

यत्त्पुरूषँ व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्प्पयन्।

मुखंकिमस्यासीत्त्किम्बाहू किमूरू पदाऽउच्च्येते ॥ 10 ॥

हे विद्वानों! आप जिस पूर्ण परमेश्वर को विविध प्रकार से धारण करते हो उसको कितने प्रकार से विशेषकर कहते हैं और इस ईश्वर की सृष्टि में मुख के समान श्रेष्ठ कौन है? भुजबल को धारण करने वाला कौन है? उरू अर्थात् घोंटू के कार्य करने वाले कौन है और पाँव के समान तुच्छ कौन कहे जाते हैं?

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्नयः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्श्यः पद्भ्याम् गं शूद्द्रोऽ अजायत ॥ 11 ॥

हे जिज्ञासु लोगो! तुम उस ईश्वर की सृष्टि में वेद व ईश्वर का ज्ञाता इनका सेवक या उपासक मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण है। भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त राजन्य (क्षत्रिय) है। ऊरू अर्थात् जंघाओं के तुल्य वेगादि से काम करने वाला अथवा व्यापारविद्या में प्रवीण वैश्य है। सेवा और अभिमान से रहित होने से शूद्र उत्पन्न हुआ है।

चन्द्रमा मनसो जातश्च्चक्षोः सूर्य्योऽ अजायत।

श्रोत्त्राद्वायुश्च्च प्प्राणश्च्च मुखादग्निरजायत ॥ 12 ॥

जो यह सब जगत् कारण ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसमें चन्द्रलोक मनरूप, सूर्यलोक नेत्ररूप वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, मुख के तुल्य अग्नि औषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य है ऐसा जानना चाहिए।

नाब्भ्याऽ आसीदन्तरिक्षः गं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।

पद्भ्याम्भूमिर्द्दिशः श्रोत्त्रात्तथा लोकां ऽअकल्प्पयन् ॥ 13 ॥

हे मनुष्यों! जो जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है वह सब विराटरूप कार्यकारण का अवयवरूप है, ऐसा जानना चाहिए।

यत्त्पुरूषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

व्वसन्तो स्यासी दाज्जयङ्ग्रीष्म्मऽइध्ध्मः शरद्धविः ॥ 14 ॥

जब ब्राह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्किर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानस ज्ञानयज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्न आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिए।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्तसमिधकृताः।

देवा यद्यज्ञन्तन्नवानाऽ अबध्नन्पुरूषम्पशुम् ।। 15 ।।

हे मनुष्यों! जिस मानस ज्ञानयज्ञ को विस्तृत करते हुए विद्वान लोग जानने योग्य परमात्मा को हृदय में बांधते है। इस यज्ञ के सात गायत्री आदि छन्द चारों ओर से सूत के सात लपेटों (परिधि) के समान है। इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पाँच सूक्ष्मभूत, पाँच स्थूलभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और सत्व, रजस् तीन गुण ये सामग्री रूप किये उस यज्ञ को अथावत् जानो। इस विशेषताओं वाले पुरूष को यज्ञ विस्तार है उसकी पशुता को समाप्त करने के लिए बाँधा अर्थात् यज्ञ वेदी पर आहूत किया।

यज्ञेन यज्ञमयजनत देवास्तानि धर्म्माण प्प्रथमान्यासन्।

तेहनाकम्महिमान» सचन्त यत्रपूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः ।। 16 ।।

हे मनुष्यों! जो विद्वान् लोग पूर्वोक्त ज्ञानयज्ञ से पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वि ईश्वर की पूजा करते है, वे ईश्वर की पूजा आदि धारणरूप धर्म अनादि रूप से मुख्य है, वे विद्वान् महत्व से युक्त हुए जिस मुख में इस समय से पूव साधनों को किये हुए प्रकाशमान विद्वान् है उस सब दुःखरहित मुक्तिसुख को ही प्रापत होते है, उसको तुमलोग भी प्राप्त होवोगे।

1.4 सारांश

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित खण्ड-1 की यह पहली इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप पुरूष सूक्त के सोलह मन्त्रों का अध्ययन किया है इन सोलह मन्त्रों में **'सहस्त्रशीर्ष'** शब्द अनन्त द्युलोक से युक्त उस महाविराट्पुरुष का द्योतक है। उस महाविराट् से ही इस क्षुद्र विराट् की उत्पत्ति होती है। उस महान् विराट् पुरूष के रोम-रोम से अनन्त भूः भुवः एवं स्वर्लोकों से समन्वित अगणित ब्रह्माण्ड वर्तमान रहते हैं। वह चतुष्पात् पूर्ण पुरूष एकपाद से अगणित ग्रह्माण्डों के रूप में विकसित रहता है। उसे ही महानारायण विष्णु रूप में कहा गया है। सहस्त्रशीर्षा पुरूष चतुष्पात् पूर्ण पुरूष है। वह अपने एक पाद से अगणित विश्व ब्रह्माण्डों के रूप में विकसित हुआ। वह अन्तर्यामी रूप में सन्निविष्ट रहताहै। इसे कोटी महनारायण या विष्णु कहकर पुकारते हैं। वह ज्यायमान है। पुराणों में इसे ही शेष अथवा अनन्त कहते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि समस्त वेदादि शास्त्रों में नित्य और नैमित्तिक कर्मों को मानव के लिये परम धर्म और परम कर्तव्य कहा है। संसार में सभी मनुष्यों पर तीन प्रकार के ऋण होते हैं-देव-ऋण, पितृ-ऋण और मनुष्य(ऋषी)ऋण। नित्य कर्म करने से मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है इस लिये मनुष्य अपने ऋणों से मुक्त होने के लिये कर्मकाण्ड का अध्ययन करता है तथा अपने जीवन में इसको पालन करता है। क्योंकि अपने ऋणों से मुक्त कर्मकाण्ड के माध्यम से ही होसकता है और उसके पास दूसरा कोई रास्ता नही है। इस लिये कर्मकाण्ड का ज्ञान अत्यन्त

आवश्यक है।

1.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
सहस्त्र	हजारों
शीर्षा	शिर
पुरूषः	पुरुष
सहस्त्राक्षः	हजारो नेत्र वाले
सहस्त्रपात्	हजारो पैर वाले
महिमातो	महिमा वाला है
पदोस्य	पादस्वरूप
व्विश्वाभूतानि	समस्त चराचर जगत्
ब्राह्मणोस्य	उत्तम ब्राह्मण है।
मुखमासीद्	उपासक मुख के तुल्य
बाहू	बाहू
राजन्नयः कृतः।	तुल्य बल पराक्रमयुक्त राजन्य (क्षत्रिय) है।
ऊरू	जंघाओं के तुल्य वेगादि से काम करने वाला अथवा तदस्य
वैश्श्यः	व्यापारविद्या में प्रवीण वैश्य है।
पद्भ्याम्	पैरों से
शूद्र्रो	शूद्र
अजायत	उत्पन्न हुआ है

1.6 -अभ्यासार्थ प्रश्न -उत्तर

1-प्रश्न- असंख्य शिर, का वर्णन पुरूष सूक्त के किस मन्त्र में किया गया है है?

उत्तर- असंख्य शिर, का वर्णन पुरूष सूक्त के पहले मन्त्र में किया गया है।

2-प्रश्न- विराट पुरूष, का वर्णन पुरूष सूक्त के किस मन्त्र में किया गया है?

उत्तर- विराट पुरूष, का वर्णन पुरूष सूक्त के दूसरे मन्त्र में किया गया है।

3-प्रश्न- सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का वर्णन पुरूष सूक्त के किस मन्त्र में किया गया है?

उत्तर- सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का वर्णन पुरूष सूक्त के नौवें मन्त्र में किया गया है।

4-प्रश्न-पुरुष सूक्त में कितने मन्त्र है?

उत्तर- पुरूष सूक्त में सोलह मन्त्र है।

5-प्रश्न- जगत् को ईश्वर ने उत्पन्न किया है, इसका वर्णन पुरूष सूक्त के किस मन्त्र में किया गया है?

उत्तर- जगत् को ईश्वर ने उत्पन्न किया है, इसका वर्णन पुरूष सूक्त के बारहवें मन्त्र में किया गया है।

1.7-सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1 पुस्तक का नाम-रुद्रष्टाध्यायी
लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र
प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2 पुस्तक का नाम-सर्वदेव पूजापद्धति
लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र
प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

3 धर्मशास्त्र का इतिहास
लेखक - डॉ. पाण्डुरङ्ग वामन काणे
प्रकाशकः- उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान।

4 नित्यकर्म पूजा प्रकाश,
लेखकः- पं. बिहारी लाल मिश्र,
प्रकाशकः- गीताप्रेस, गोरखपुर।

5 अमृतवर्षा, नित्यकर्म, प्रभुसेवा
संकलन ग्रन्थ
प्रकाशकः- मल्होत्रा प्रकाशन, दिल्ली।

6 कर्मठगुरुः
लेखक - मुकुन्द वल्लभ ज्योतिषाचार्य
प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

7 हवनात्मक दुर्गासप्तशती
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर।

8 शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टध्यायी
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - अखिल भारतीय प्राच्य ज्योतिष शोध संस्थान, जयपुर।

9 विवाह संस्कार
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - हंसा प्रकाशन, जयपुर

1.8-उपयोगी पुस्तकें

1-पुस्तक का नाम- रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- यज्ञेन यज्ञमयजनत देवास्तानि धर्म्माण प्रथमान्यासन्।

तेहनाकम्महिमान: सचन्त यत्रपूर्व्वे साद्ध्याः सन्ति देवाः। इस मन्त्र का वर्णन कीजिये।

इकाई - 2 श्री सूक्तम्

इकाई की रुप रेखा

2.1-प्रस्तावना

2.2-उद्देश्य

2.3 श्री सूक्तम्

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न उतर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 उपयोगी पुस्तके

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2. 1- प्रस्तावना

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित खण्ड एक की यह दूसरी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि **'श्री सूक्त'** की उत्पति किस प्रकार से हुई है? श्रीसूक्त की उत्पति अनादि काल से हुई है। तथा इन्ही सूक्तों के माध्यम से आज सनातन धर्म की रक्षा हो रही है।

'श्रीसूक्त' को जानते हुए आप पूजा के विषय में परिचित होंगे कि पूजन का प्रयोजन क्या है एवं उसका महत्त्व क्या है इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है!

प्रत्येक पूजन के प्रारम्भ में आत्मशुद्धि, गुरु स्मरण, पवित्र धारण, पृथ्वी पूजन, संकल्प, भैरव प्रणाम, दीप पूजन, शंख-घण्टा पूजन के पश्चात् ही देव पूजन करना चाहिए। व्रतोद्यापन एवं विशेष अनुष्ठानों के समय यज्ञपीठ की स्थापना का विशेष महत्त्व होता है, अतः प्रधान देवता की पीठ रचना पूर्व दिशा के मध्य में की जाये। पीठ रचना हेतु विविध रंगों के अक्षत या अन्नादि लिये जाते है।

2.2- उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वेदशास्त्र से वर्णित श्रीसूक्त का अध्ययन करेंगे।

1. श्रीसूक्त के विषय में आप परिचित होंगे-
2. श्रीसूक्त के महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे
3. श्रीसूक्त पाठ के विषय में आप परिचित होंगे
4. श्रीसूक्त के न्यास के विषय में आप परिचित होंगे
5. श्रीसूक्त की समाज में उपयोगिता क्या है। इसके विषय में आप परिचित होंगे

2.3 श्री सूक्तम्

विधि-

लक्ष्मी की उपासना के लिये श्री सूक्त का पाठ किया जाता है। यह तथ्य सर्वसाधारण के लिये जान लेना अत्यधिक आवश्यक है अतः ध्यान दे कि-

सदा स्मरण रखें कि -जो भी पाठ हो उस पाठ को शुद्ध तथा शुद्धता से करें।

एक निश्चत संख्या में पाठ करें। पूर्व दिवस में पाठ किये गये पाठों से आगामी दिनों में कम पाठ न करे यदि चाहे तो अधिक पाठ कर सकते हैं परन्तु स्मरण यही रखना है कि भूतकाल से वर्तमान काल के पाठ कम न हो ।

पाठ का उच्चारण होंठों से बाहर आना चाहिये यदि अभ्यास न होने के कारण यह विधि प्रयुक्त न हो सके तो धीमे स्वर में पाठ करें।

पाठ काल में धूप-दीप जलता रहे।

पुस्तक देखकर ही पाठ करे।

पाठ काल में श्री यन्त्र की प्रतिमा , फोटों समक्ष रखना चाहिये

श्री सूक्त का पाठ कुश या कम्बल के आसन पर बैठकर करें।

जिस स्थान पर जिस स्थान पर पाठ का शुभारम्भ हो वही पर आगामी दिनों में भी पाठ करना चाहिये

पाठ काल में मन को पाठ से मिलायें ।

मिथ्या सम्भाषण न करें।

स्त्री सेवन न करे ।

आलस्य जम्भाई यथाशक्ति त्याग दें।

श्री सूक्त का पाठ पूर्व दिशा के तरफ मुख करके ही करें।

देवालय या विष्णु मन्दिर में बैठकर पूजन सामग्री का सम्प्रोक्षण करके आचमन प्रणायाम करे- सर्वप्रथम गौरी गणेश का पूजन करे।

एक लकड़ी की चौकी के ऊपर गणेश, षोडशमातृका, सप्तमातृका स्थापित करे। दूसरी चौकी पर नवग्रह, पञ्चलोकपाल आदि स्थापति करे। ईशान कोण में घी का दीपक रखे और अपने दायें हाथ में पूजा सामग्री रख लेवे। शुद्ध नवीन वस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख बैठे। कुंकुम (रोली) का तिलक करके अपने दायें हाथ की अनामिका में सुवर्ण की अंगुठी पहनकर आचमन प्राणायाम कर पूजन आरम्भ करे।

पवित्रीकरण-(अधोलिखित मन्त्र को पढते हुए कलश के जल से अपने उपर तथा पूजनादि की सामग्रियों पर जल छिडके):-

ऊँ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।।

ऊँ पुण्डरीकाक्षः पुनातु , ऊँ पुण्डरीकाक्षः पुनातु , ऊँ पुण्डरीकाक्षः पुनातु ,

आचमन (तीन बार आचमन करे):-

ऊँ केशवाय नमः। ऊँ नारायणाय नमः। ऊँ माधवाय नमः।

प्राणायाम:-

गोविन्दाय नमः बोलकर हाथ धोवे और यदि ज्यादा ही कर सके तो तीन बार पूरक (दायें हाथ के अंगूठे से नाक का दायाँ छेद बन्द करके बायें छेद से श्वास अन्दर लेवे), कुम्भक (दायें हाथ की छोटी अंगुली से दूसरी अंगुली द्वारा बाया छेद भी बन्द करके श्वास को अन्दर रोके), रेचक (दायें अंगूठे को धीरे-धीरे हटाकर श्वास बाहर निकाले) करे।

पवित्रीधारणम् -

ॐ पवित्रेस्त्थो व्वैष्णव्यौसवितुर्व्वः प्रसव उत्पन्नुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्स्य रश्मिभिः।

तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुनेतच्छकेयम्।।

सपत्नीक यजमान के ललाट में स्वस्तितिलक लगाते हुए मन्त्र को बोले-

ॐ स्वस्तिन इन्द्रो व्वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा व्विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्ताक्ष्र्याऽअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु।।

ॐ श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्क्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्वि नौव्व्यात्तम्।

इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्व्वलोकं म ऽइषाण।।

ग्रन्थिबन्धन- (लोकाचार से यजमान का सपत्नीक ग्रन्थिबन्धन करे):-

ॐ तम्पत्नीभिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुतवा हिरण्यैः।

नाकङ्गृब्भ्णानाः सुकृतस्यलोके तृतीयपृष्ठेऽअधिरोचने दिवः।।

आसनपूजन (आसन की पूजा करे):-

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।

त्वं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम् ।

ॐ कूर्मासनाय नमः।

ॐ अनन्तासनाय नमः।

ॐ विमलासनाय नमः। (सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि)

भूतापसारण (बायें हाथ में सरसों लेकर उसे दाहिने हाथ से ढककर निम्न मन्त्र पढ़े) -

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।

ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया।।

अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्।

सर्वेषामवरोधेन पूजाकर्म समारभे।।

निम्न मन्त्रों को पढ़ते हुए सरसों का सभी दिशाओं में विकिरण करे:-

प्राच्यैदिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशेस्वाहा दक्षिणायै दिशेस्वाहार्व्वाच्यै दिशेस्वाहा प्प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहा व्वार्च्यै दिशे स्वाहोदर्ध्वायै दिशेस्वाहा व्वार्च्यै दिशे स्वाहा व्वाच्यै दिशे स्वाहार्व्वाच्यै दिशे स्वाहा।

पूर्वे रक्षतु गोविन्द आग्नेय्यां गरुड़ध्वजः। दक्षिणे रक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैर्ऋते।।

पश्चिमे वारुणो रक्षेद्वायव्यां मधुसूदनः। उत्तरे श्रीधरो रक्षेद् ऐशान्ये तु गदाधरः।।

ऊर्ध्वं गोवर्धनो रक्षेद्अधस्ताद्त्रिविक्रमः। एवं दश दिशो रक्षेद्वासुदेवो जनार्दनः।।

कर्मपात्र पूजन् (ताँबे के पात्र में जलभरकर कलश को अक्षतपुञ्ज पर स्थापित करते हुए पूजन करे):-

ॐ तत्वामि ब्ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते जमानो हविर्भिः।

अहेडमानो व्वरुणे हबोद्ध्युरुश समानऽ आयुः प्प्रमोषीः।। ॐ वरुणाय नमः।

पूर्वे ऋग्वेदाय नमः। दक्षिणे यजुर्वेदाय नमः।

पश्चिमे सामवेदाय नमः। उत्तरे अथर्ववेदाय नमः।

मध्ये साङ्गवरुणाय नमः। सर्वोपचारार्थे चन्दन अक्षतपुष्पाणि समर्पयामि।

अंकुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्सर्वाणि तीर्थानि आवाहयेत् (दायें हाथ की मध्यमा अङ्गुली से जलपात्र में सभी तीर्थों का आवाहन करे):-

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेस्मिन्सन्निधिं कुरु।।

कलशस्य मुखे विष्णु कण्ठे रुद्रः समाश्रितः।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः।।
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः।।
अश्च सहिताः सर्वे कलशाम्बु समाश्रिताः।
गायत्री चात्र सावित्री शान्तिः पुष्टिकरा तथा।
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः।।

उदकेन पूजासामग्रीं स्वात्मानं च सम्प्रोक्षयेत् (पात्र के जल से पूजन सामग्री एवं स्वयं का प्रोक्षण करे):-

ॐ आपो हिष्ठामयोभुवस्तानऽऊर्ज्जेदधातन। महेरणायचक्षसे।।
योवः शिवतमोरसस्तस्यभाजयते हनः। उशतीरिवमातरः।।
तस्म्माऽअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ आपोजनयथाचनः।।

दीपपूजनम् (देवताओं के दाहिने तरफ घी एवं विशेष कर्मों में बायें हाथ की तरफ तेल का दीपक जलाकर पूजन करना चाहिए):-

अग्निर्द्देवता व्वातो देवता सूर्य्या देवता चन्द्रमा देवता व्वसवो देवता रुद्रा देवतादित्त्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्प्पतिर्द्देवतेन्द्रो देवता व्वरुणो देवता।

ॐ दीपनाथाय नमः। सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि (गन्ध अक्षत पुष्प दीपक के सामने छोडे।)

प्रार्थनाः-(हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर अधोलिखित श्लोक को पढते हुए दीपक के सामने छोड़े

ॐ भो दीप देवस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत।
यावत्कर्मसमाप्तिः स्यात्तावदत्र स्थिरो भव।।

सर्वप्रथम श्री सूक्त की अधिकार प्राप्ति के लिये प्रायश्चित्तरूप में गोदान का संकल्प करना चाहिये

प्रायश्चित संकल्प हाथ में जल अक्षत-पुष्प कुश तथा द्रव्य लेकर प्रायश्चित संकल्प करे-

हरिः ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे तदादौ श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वतरे अष्टाविंशतितमे

कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे तत्रापि परमपवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्त अन्तर्गते अमुकदेशे (अपने देश का नाम) अमुकक्षेत्रे (अपने राज्य का नाम) अमुकनगरे (अपने नगर का नाम) श्री गङ्गायमुनयोः अमुकभागे (अपने स्थान की दिशा) नर्मदाया अमुक भागे (अपने स्थान की दिशा) चान्द्रसंज्ञकानां प्रभवादिषष्टिसम्वत्सराणां मध्ये अमुक नाम्नि सम्वत्सरे (सम्वत्सर का नाम) श्रीमन्नृपति विक्रमार्कसमयादमुकसंख्यापरिमिते विक्रमाब्दे (वर्तमान विक्रम सम्वत्) अमुकायने (वर्तमान सम्वत्) अमुकर्ता (वर्तमान ऋतु) अमुकमासे (वर्तमान मास) अमुकपक्षे (वर्तमान पक्ष) अमुकतिथौ (वर्तमान तिथि) अमुकवासरे अमुकगोत्रः (यजमान का गौत्र) अमुकशर्मा अहं क्रियमाण श्री सूक्त पाठ कर्मणि अधिकार प्राप्त्यर्थं कायिक वाचिकमानसिक सांसर्गिकचतुर्विधपापशमनार्थं शरीरशुद्ध्यर्थं गोनिष्क्रयद्रव्यं ''''''''''गोत्राय''''''''''शर्मणे आचार्याय भवते सम्प्रददे (ऐसा कहकर हाथ का संकल्प जल तथा द्रव्य ब्राह्मण के हाथ में देदे।

मंगल पाठ -हस्ते अक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा (हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर गणेश जी की प्रार्थना करे):-

ॐ आनो भद्राः क्रतवो यन्तु व्विश्वतो दब्धासोऽअपरीतासऽउद्भिदः। देवानो यथा सदमिद्वृधेऽअसन्नप्प्रायुवोरक्षितारो दिवेदिवे॥१॥ देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतान्देवाना रातिरभिनोनिवर्त्तताम्। देवाना सक्ख्यमुपसेदिमा व्वयं देवानऽआयुः प्प्रतिरन्तुजीवसे॥२॥ तान्पूर्वया निविदाहूमहे व्वयं भगम्मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम्। अर्यमणं व्वरुण सोमामश्विना सरस्वती नः सुभगामयस्करत्॥३॥ तन्नोव्वातो मयो भुव्वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः। तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयो भुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम्॥४॥ तामीशानञ्जगतस्तस्थुषस्पति-न्धियञ्जिन्वमवसे हूमहे व्वयम्। पूषा नो यथा व्वेदसामद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥५॥ स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाव्विश्ववेदाः। स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ऽ अरिष्टनेमिः स्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु॥६॥ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो व्विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्व्वामनवः सूरचक्षसो व्विश्वेनोदेवाऽअवसा गमन्निह॥७॥ भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा œ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं य्यदायुः॥८॥ शतमिन्नुशरदो ऽ अन्ति देवा त्रा नश्चक्रा जरसंतनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मद्ध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥९॥ अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा ऽ अदितिः पञ्चजना ऽ अदितिर्ज्जातमदितिर्ज्जनित्वम्॥१०॥ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष œ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। व्वनस्पतयः शान्ति व्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व œ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि॥११॥ यतो यतः समीहसे ततो नो ऽ अभयं कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्योभयन्नः पशुभ्यः॥१२॥ सुशान्तिर्भवतु॥ (अक्षत-पुष्प को सिर से लगाकर गणपति मण्ड़ल पर गणेशजी को समर्पित करे)

गणपत्यादि देवानां स्मरणम्- (हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर गणेश जी की प्रार्थना करे)

सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजगर्णकः। लम्बोदरश्च विकटोविघ्ननाशो विनायकः। धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो

भालचन्द्रो गजाननः। द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि। विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे संकटे चौव विघ्नस्तस्य न जायते। शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्। प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये। अभीप्सितार्थ सिध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः। सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः। सर्वमङ्ग्ल माङ्ग्ल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते। सर्वदा सर्व कार्येषु नास्ति तेषाममङ्ग्गलम्। येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनं हरिः। तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव। विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेंऽघ्रियुगं स्मरामि। लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः। यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्री र्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम। सर्वेष्वारब्धकार्येषु त्रयस्त्रि भुवनेश्वराः। देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः। विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम्। वन्दे काशीं गुहां गङ्गा भवानी मणिकर्णिकाम्। विनायकं गुरुभानुं ब्रह्मिविष्णुमहेश्वरान्। सरस्वतीं प्रणौम्यादौ सर्वकार्यार्थ सिद्धये।ऊँ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। ऊँ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। ऊँ उमामहेश्वराभ्यां नमः। ऊँ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। ऊँ शचीपुरन्दराभ्यां नमः। ऊँ मातृपितृचरणकमलेभ्यो नमः। ऊँ सर्वपितृदेवताभ्यो नमः। ऊँ इष्टदेवताभ्यो नमः। ऊँ कुलदेवताभ्यो नमः। ऊँ ग्रामदेवताभ्यो नमः। ऊँ स्थानदेवताभ्यो नमः। ऊँ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ऊँ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः। ऊँ गुरवे नमः। ऊँ परमगुरवे नमः। ऊँ परात्परगुरवे नमः। ऊँ परमेष्ठिगुरवे नमः।(अक्षत-पुष्प को सिर से लगाकर गणपति मण्ड़ल पर गणेशजी को समर्पित करे)

संकल्प-हाथ में जल अक्षत-पुष्प कुश तथा द्रव्य लेकर संकल्प करे-

हरिः ऊँ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः ऊँ तत्सदद्यैतस्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीये परार्द्धे तदादौ श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्वतमन्वतरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे तत्रापि परमपवित्रे भारतवर्षे आर्यावर्त अन्तर्गते अमुकदेशे (अपने देश का नाम) अमुकक्षेत्रे (अपने राज्य का नाम) अमुकनगरे (अपने नगर का नाम) श्री गङ्गायमुनयोः अमुकभागे (अपने स्थान की दिशा) नर्मदाया अमुक भागे (अपने स्थान की दिशा) चान्द्रसंज्ञकानां प्रभवादिषष्टिसम्वत्सराणां मध्ये अमुक नाम्नि सम्वत्सरे (सम्वत्सर का नाम) श्रीमन्नृपति विक्रमार्कसमयादमुकसंख्यापरिमिते विक्रमाब्दे (वर्तमान विक्रम सम्वत्) अमुकायने (वर्तमान सम्वत्) अमुकर्ता (वर्तमान ऋतु) अमुकमासे (वर्तमान मास) अमुकपक्षे (वर्तमान पक्ष) अमुकतिथौ (वर्तमान तिथि) अमुकवासरे अमुकगोत्रः (यजमान का गौत्र) अमुकशर्मा अहं (ब्राह्मण के लिए शर्मा, क्षत्रिय के लिए वैश्य, वैश्य के लिए गुप्ता, शूद्र के लिए दासान्त) सपुत्रस्त्रीबान्धवो अहं मम जन्मलग्नाच्चन्द्रलग्नाद् वर्ष मास दिन गोचराष्टक वर्गदशान्तर्दशादिषु चतुर्थाष्टं द्वादशस्थान् स्थित क्रूरग्रहास्तेषां अनिष्टफल शान्ति पूर्वकं द्वितीयसप्तम् एकादशस्थानस्थित सकल शुभफल प्राप्त्यर्थं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य नित्यकल्याणप्राप्त्यर्थम् अलक्ष्मीविनाशपूर्वक मनो अभिलषित विपुल लक्ष्मीप्राप्त्यर्थ सर्वदा मम गृहे लक्ष्मी निवासार्थं च श्री महालक्ष्मी देव्याः प्रप्त्यर्थं श्री सूक्तस्य पाठमहं

करिष्ये (वा ब्राह्मण द्वारा कारयिष्ये) । ऐसा कहकर हाथ का संकल्प जल तथा द्रव्य गणेश जी के सामने छोड़ दे।

पुनः हाथ में जल अक्षत-पुष्प कुश तथा द्रव्य लेकर बोले -

तदंगत्वेन कार्यस्य सिद्ध्यर्थं आदौ गणेशाम्बिकयोः पूजनं करिष्ये। ऐसा कहकर हाथ का संकल्प जल तथा द्रव्य गणेश जी के सामने छोड़ दे।

पूजा में जो वस्तु विद्यमान न हो उसके लिये 'मनसा परिकल्प्य समर्पयामि' कहे। जैसे, आभूषणके लिये 'आभूषणं मनसा परिकल्प्य समर्पयामि'।)

सर्वप्रथम श्रीगणपति का पूजन आप कर ले।

प्राणप्रतिष्ठा- बायें हाथ में अक्षत लेकर निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़ते हुए दाहिने हाथ से उन अक्षतों को लक्ष्मी जी के प्रतिमा पर छोड़ते जाय।

ॐ मनोजूतिर्ज्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्त्वरिष्टं ज्ञ œ समिमन्दधातु।

विश्वेदवा स ऽ इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः। सुप्रतिष्ठिते वरदे भवेताम्

प्रार्थना:-(हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर अधोलिखित श्लोक को पढ़ते हुए लक्ष्मी जी के सामने छोडे

या सा पद्मासनस्थ विपुल कटि तटि पद्म पत्रायताक्षी
गम्भीरा वर्तनाभिः स्तनभरनमितांशुभ्र वस्त्रोत्तरीया।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणा खचितैः स्नापिता हेमकुम्भै
र्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमांगल्ययुक्ता।।

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१।।

आसनम् -(हाथ में पुष्प लेकर अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर छोड़े

ॐ पुरुष ऽ एवेद œ सर्व्वंद्भूतँच्च भाव्व्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, आसनार्थे पुष्पं समर्पयामि।

पाद्यम् --(हाथ में जल लेकर अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर छोड़े

ॐ एतावानस्य महिमातोज्ज्यॉंश्चपूरुषः।
पादोस्य व्विश्श्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, पादप्रक्षालनार्थं पाद्यं समर्पयामि।

अर्घ्यम् --(हाथ में जल लेकर अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर छोडे

ॐ धामन्तेव्विश्वम्भुवनमधिश्रितमन्तः समुद्रेहृद्यन्त रायुषि।
अपामनीकेसमिथेय ऽ आभृतस्तमश्याम मधुमन्तन्त ऽ ऊर्मिम्।।
ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, हस्तयोः अर्घ्यं समर्पयामि।

आचमनीयम् --(हाथ में जल लेकर अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर छोडे

सर्वतीर्थ समायुक्तं सुगन्धिनिर्मलं जलम्।

आचम्यार्थं मया दत्तं गृहाण गणनायक।।

ऊँ इमम्मेव्वरुणŸशुधीहवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, मुखे आचमनीयं समर्पयामि।

जलस्नानम् -(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर जल छोडे

ऊँ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्यस्कम्भसर्ज्जनीस्त्थो व्वरुणस्य ऽ ऋतसदन्यसि

वरुणस्य ऽ ऋतसदनमसि व्वरुणस्य ऽ ऋतसदनमासीद।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, स्नानार्थे जलं समर्पयामि।।

पञ्चामृत स्नानम् -(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर पंचामृत से स्नान करावे

पयो दधिघृतं चैव मधुं च शर्करायुतम्।

सरस्वती तु पञ्चधासो देशेभवत्सरित्।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, मिलितपञ्चामृतस्नानं समर्पयामि।

शुद्धोदक स्नानम् -(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर शुद्ध जल से स्नान करावे)

ऊँ शुद्धवालः सर्व शुद्धवालो मणिवालस्त ऽ आश्विनः श्येतः

श्येताक्षो रुणस्तेरुद्रायपशुपतये कर्णायामा अवलिप्ता रौद्रानभोःरूपाः पार्ज्जन्याः।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि।

वस्त्रोपवस्त्रम्-(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर रक्त सूत्र चढावे)

ऊँ सुजातोज्ज्योतिषा सहशर्म्म व्वरुथमासदत्स्वः।

व्वासो ऽ अग्ने विश्वरूप œ सँव्ययस्वव्विभावसो।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, वस्त्रोपवस्त्रार्थे रक्तसूत्रं समर्पयामि।

चन्दनम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए गणेश जी और गौरी लक्ष्मी जी के उपर चन्दन चढावे)

ऊँ अ œ शुना ते अ œ शुः पृच्यतां परुषा परुः।

गन्धस्ते सोममवतु मदायरसोऽअच्युतः।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, चन्दनकुंकुमञ्च समर्पयामि।

अक्षताः --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर अक्षत चढावे)

ऊँ अक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्प्रियाऽ अधूषत।

अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठयामती योजान्विन्द्रते हरी।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, अलङ्करणार्थम् अक्षतान् समपर्यामि।

पुष्पाणि (पुष्पमालां) --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर पुष्पमाला अथवा पुष्प चढावे)

ऊँ ओषधिः प्रतिमोदद्ध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।

अश्वाऽ इव सजित्वरीर्व्वीरुधः पारयिष्णवः।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, पुष्पाणि समर्पयामि।

दुर्वाङ्कुरम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर दूर्वा चढावे)

ऊँ काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।

एवा नो दूर्व्वे प्प्रतनु सहस्रेण शतेन च।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, दूर्वाङ्कुराणि समर्पयामि।

बिल्वपत्रम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर बिल्वपत्र चढावे)

ऊँ नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो व्वर्मिणे च वथिने च नमः

श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुब्भ्याय चाहनन्याय च।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, बिल्वपत्राणि समर्पयामि।

सुगन्धितद्रव्यम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर इत्र चढावे)

ऊँ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम्।

उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्म्मुक्षीयमामृतात्।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, सुगन्धितद्रव्यं समर्पयामि।

सिन्दूरम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर सिन्दूर चढावे)

ऊँ सिन्धोरिव प्प्राद्ध्वने शूघनासो व्वातप्प्रमियः पतयन्ति ह्यवाः।

घृतस्य धारा ऽ अरुषो न व्वाजी काष्ठाभिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, सिन्दूरं समर्पयामि।

नानापरिमलद्रव्याणि --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर अवीर चढावे)

ऊँ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्याया हेतिं परिबाधमानः।

हस्तघ्नो व्विश्वाव्वयुनानि व्विद्वान्पुमान्पुमा œ सम्परिपातुव्विश्वतः।।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, परिमलद्रव्याणि समर्पयामि।

धूपम् --(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर धूप दिखावे)

धूरसि धूर्व्वधूर्व्वन्तं धूर्व्व तंयोस्म्मान् धूर्वतितन्धूर्व्वयं व्वयं धूर्व्वामः।

देवानामसि व्वह्नितम œ सस्निनतमं पप्प्रितमं जुष्टतमं देवहूतम्।

ऊँ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, धूपम् आघ्रापयामि।

दीपम् ---(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर दीप दिखावे)

ऊँ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्योज्योतिर्ज्योति: सूर्यः स्वाहा।

अग्निर्व्वर्चाेज्ज्योतिर्व्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चाेज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा।

ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, दीपकं दर्शयामि।

हस्तौ प्रक्षाल्य। (इसके बाद हाथ धोये)

नैवेद्यम् ---(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी को भोग लगावे)

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष œ शीर्ष्णाे द्यौः समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन्।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, नैवेद्यं निवेदयामि। मध्ये जलं निवेदयामि। (इसके बाद पॉच बार जल चढावे)

ऋतुफलम् ---(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए गणेश जी और गौरी लक्ष्मी जी के उपर फल चढावे)

ॐ याः फलनीर्या ऽ अफला ऽ अपुष्पायाश्च पुष्पिणीः।

बृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्व œ हसः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, फलं निवेदयामि। पुनः आचमनीयं निवेदयामि।(इसके बाद पुनः जल चढावे)

ताम्बूल-मन्त्र बोलते हुए लवंग,इलायची, सोपारी सहित पान का पत्ता लक्ष्मी जी के उपर चढावे।

ॐयत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।

वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मःशरद्धविः।।

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः। मुखवासार्थं एलालवंगपूगीफलसहितं ताम्बूलं समर्पयामि। (इलायची,लौंग-सुपारी सहित ताम्बूल को चढाये)

दक्षिणा-(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी के उपर दक्षिणा चढ़ावे)

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातःपतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः ,कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्यदक्षिणां समर्पयामि।(द्रव्य दक्षिणा समर्पित करें।)

आरती-(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी को कर्पूर की आरती करे)

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम् ।

आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य में वरदो भव।।

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, आरार्तिकं समर्पयामि। आरती के बाद जल गिरा दे।

पुष्पाञ्जलि - (हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर लक्ष्मी जी की प्रार्थना करे):-

ॐयज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, पुष्पांजलिं समर्पयामि।(पुष्पांजलि अर्पित करे।)

प्रदक्षिणा--(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी को प्रदक्षिणा करे)

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।

तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, प्रदक्षिणा समर्पयामि।(प्रदक्षिणा करे।)

प्रार्थना- मन्त्र बोलते हुए हाथ में फूल लेकर लक्ष्मी जी की पुष्पांजलि अर्थात् प्रार्थना करना।

सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकै

युक्तं सदा यत्तव पादपंकजम्।

परावरं पातु वरं सुमंगलं

नमामि भक्त्याखिलकामसिद्धये।।

भवानि त्वं महालक्ष्मी सर्वकामप्रदायिनी।

सुपूजिता प्रशन्ना स्यात् महालक्ष्मि! नमोस्तुते ।।

नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।

या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्।।

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय

लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय

गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।

भक्तार्ति नाशनपराय गणेश्वराय

सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।

विद्याधराय विकटाय च वामनाय

भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, प्रार्थना पूर्वक नमस्कारान् समर्पयामि। (साष्टांग नमस्कार करे।

नोटः- श्रीसूक्त से भी अभिषेक अथवा यथोपचार पूजन किया जा सकता है।

विनियोग-हाथ में जल लेकर अधोलिखित मन्त्र को पढते हुए जल को गीरावें

ऊँ हिरण्य वर्णामिति पंचदशर्चस्य श्री सूक्तस्य श्री आनन्द कर्दम चिक्लीतेन्दिरा सुता महर्षयः श्री अग्निर्देवता आद्यास्तिस्त्रो अनुष्टुपः । चतुर्थी वृहती, पंचमीषष्ठयो त्रिष्टुभौ ततो अष्टावनुष्टुभः अन्त्या प्रस्तार पंक्तिः छन्दसि । हिरण्य वर्णामिति बीजम् ताम आवह जातवेद इति शक्तिः। कीर्तिमृद्धिं ददातु मे इति कीलकम्। ममसकल विधि धनधान्य यशः श्रीः पौत्रादि प्राप्त मे श्री महालक्ष्मी वरप्रसादात् सिद्ध्यर्थे न्यासे पाठे विनियोगः।। (जल को गीरावें)

कर शुद्धिः- श्री बीज का उच्चारण करते हुए तीन बार हाथ धोवे।

ऋष्यादिन्यासः -ऊँ आँ ह्रीं क्रों ऐं श्रीं क्लीं ब्लूं यौं रं बं श्रीं ऊँ

(प्रत्येक ऋचा से पहले इनी बीज मन्त्रों को लगाये)

ऊँ हिरण्यवर्णामिति शिरसि (दाहिने हाथ से शिर को स्पर्श करे)।

तम् आवह जातवेदेति नेत्रयोः (दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों को स्पर्श करे)।

अश्वपूर्वामिति कर्णयोः(दाहिने हाथ से दोनो कानों को स्पर्श करे)।

कांसोस्मितामिति नासिकायाम् (दाहिने हाथ से नासिका को स्पर्श करे)।

चन्द्रप्रभासामिति मुखे (दाहिने हाथ से मुख को स्पर्श करे)।

आदित्यवर्णामिति कण्ठे (दाहिने हाथ से कण्ठ को स्पर्श करे)।

उपेतुमामिति बाह्यौ(दाहिने हाथ से पुरे शरीर को स्पर्श करे)।

क्षुत्पिपासामिति हृदये (दाहिने हाथ से हृदय को स्पर्श करे)।

गन्धद्वारामिति नाभौ (दाहिने हाथ से नाभी को स्पर्श करे)।

मनसः काममिति गुह्ये दाहिने हाथ से गुदा को स्पर्श करे)।

कर्दमेनेति वायौ (दाहिने हाथ से वायु को स्पर्श करे)।

आपः सृजन्तमिति उच्चै (दाहिने हाथ से उपर करे)।

आर्दा पुष्करिणी पुष्टिमिति जाह्नवौः। (दाहिने हाथ से जानु को स्पर्श करे)।

आर्दा यः करिणीमिति जंघयोः। (दाहिने हाथ से जंघा को स्पर्श करे)

तां म आवह जातवेदो इति पादयोः। (दाहिने हाथ से दोनों पैरों को स्पर्श करे)

करन्यासः - ऊँ श्रां नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हरिण्यवर्णाय अंगुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से दोनों अंगूठों का स्पर्श करे) ।

ऊँ श्रीं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हरिण्यै तर्जनीभ्याँ नमः (दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों तर्जनी अंगुलियों का स्पर्श करे) ।

ऊँ श्रुं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै स्वर्ण रजत स्रजायै मध्यमाभ्याँ नमः(अंगूठों से मध्यमा अंगुलियों का स्पर्शकरे)।

ऊँ श्रैं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै चन्द्रायै अनामिकाभ्याँ नमः (अंगूठों से अनामिका अंगुलियों का स्पर्श करे)

ऊँ श्रौं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हिरण्मयै कनिष्ठिकाभ्याँ नमः (अंगूठों से कनिष्ठिका अंगुलियों का स्पर्श करे)

ऊँ श्रः नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै लक्ष्म्यै करतलकरपृष्ठाभ्याँ नमः(हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का परस्पर स्पर्श करे) ।

षडङ्गन्यासः

ॐ श्रां नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हरिण्यवर्णाय हृदयाय नमः (दाहिने हाथ से हृदय को स्पर्श करे)
ॐ श्रीं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हरिण्यै शिरसे स्वाहा (दाहिने हाथ से शिर को स्पर्श करे)।
ॐ श्रुं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै स्वर्ण रजत स्रजायै शिखायै वषट् (दाहिने हाथ से शिखा को स्पर्श करे
ॐ श्रैं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै चन्द्रायै कवचाय हुँ (दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें कन्धे का और बायें हाथ की अंगुलियों से दाहिने कन्धे का साथ ही स्पर्श करे)।
ॐ श्रौं नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै हिरण्मयै नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों और ललाट के मध्य भाग को स्पर्श करे)।
ॐ श्रः नमो भगवत्यै महालक्ष्म्यै लक्ष्म्यै अस्त्रायफट् यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के उपर से बायी ओर से पीछे की ओर लेजाकर दाहिनी ओर से आगे की ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये)।
हाथों में पुष्प लेकर अधोलिखित श्लोक को पढ़ते हुए गणेश जी का प्रार्थना करे
या सा पद्मासनस्थ विपुल कटि तटि पद्म पत्रायताक्षी
गम्भीरा वर्तनाभिः स्तनभरनमितांशुभ्र वस्त्रोत्तरीया।
लक्ष्मीर्दिव्यैर्गजेन्द्रैर्मणिगणा खचितैः स्नापिता हेमकुम्भै
र्नित्यं सा पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमांगल्ययुक्ता।।
पाठ करना प्रारम्भ करे।

अथ श्रीसूक्तम् -

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह ।। १ ।।

अर्थ-हे अग्ने! जिनका वर्ण सुवर्ण के समान उज्ज्वल है जो हरिणी के समान रूपवाली हैं, जिनके कण्ठ में सुवर्ण और चॉदी के फूलों की माला शोभा पाती है, जो चन्द्रमा के समान प्रकाशमान है, जिनकी माला देह सुवर्णमय है उन्हीं लक्ष्मीदेवी का हमारे निमित्त आवाहन करो। हे हुताशन! तुम्ही देवताओं के होता हो, लक्ष्मी देवी का आवाहन करके बुलाने में केवल तुम्हारी ही सामर्थ्य है।।१।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ।। २ ।।

अर्थ-हे अग्ने! जिनके प्रसन्न होकर आने सुवर्ण, भूमि , अश्व (घोड़ा) पुत्रपौत्रादि सबकुछ प्राप्त हो जाता है, उन्हीं अनुगामी (उन्हीं के पीछे जानेवाली) लक्ष्मी को हमारे लिये आवाहन करों । ।। २ ।।

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ।। ३ ।।

अर्थ- घोडे जिनके आगे चलते हैं, सम्पूर्ण रथ जिनके मध्य में स्थिर है , जो हाथियों की चग्घाण से सबको जगाती है , जो एकमात्र देवी और आश्रय है , उन्हीं लक्ष्मी का आवाहन करता हूँ वह आकर

हमारी सेवा को स्वीकार करें ।।३।।

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम् ।। ४ ।।

अर्थ-जिनका शरीर विकसित कमल के समान हॅसता हुआ विराजित है, जिनका वर्ण सुवर्ण के समान सुन्दर है,जो क्षीर सागर के निकलने से सदा गीली है जिनकी सदा उज्ज्वल कान्ती है,सदा परितृप्त और जो प्रसन्न हो मनोरथ देकर आश्रित भक्त जनों को तृप्त करती हैं जो कमल के आसन पर विराजमान और कमल के समान वर्णवाली है, मै उन्हीं श्रीलक्ष्मी देवी का आवाहन करता हूॅ ।।। ४।।

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्रपद्ये ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे ।। ५ ।।

अर्थ- जो चन्द्रमा के समान प्रभायुक्त है जो परम दीप्तिमान है, जो यश के समूह से प्रकाशमान है सुरपुर में सदा देवता लोग जिनकी आराधना करते हैं, जो उदारचित्तवालीहै, कमल के समान रूपवाली और ईकारस्वरूपिणी है, मै उन्हीं लक्ष्मी देवी की शसण होता हूँ। हे देवी! मैं तुम्हे प्रणाम कर प्रार्थना करता हूँ कि तुम हमारी दरिद्रता को दूर करो।।। ५ ।।

आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः।।६।।

अर्थ-हे देवी! तुम्हारा वर्ण सूर्य के समान उज्ज्वल है तुम्हारी तपस्या के प्रभाव से ही फलवान् बिल्ववृक्षादि उत्पन्न होते हैं। हे शरण्ये!उन्हीं बिल्ववृक्षों के पके हुए फलसमूह हमारे अन्तस्थ और बाहर की अलक्ष्मी को दूर करें। ।।६।।

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धि ददातु मे ।। ७ ।।

अर्थ-हे देवि! तुम्हारे अनुग्रह से शिाव का मित्र कुबेर और कीर्ति देवी मणिरत्नादि सहित हमारे निकट उपस्थित हों, मैने इस संसार में देह धारण किया है, वहा आकर ऋद्धि और सिद्धि प्रदान करें ।।७।।

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्।।८।।

अर्थ-मै क्षुधा और तृष्णा से मल परिपूर्ण और अलक्ष्मी का विनाश करूँगा हे देवि! तुम हमारे घर से सम्पूर्ण अभूति को और असमृद्धि को दूर करो। ।।८।।

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ।।९।।

अर्थ- गन्ध ही जिसका लक्षण है, जिसको काई भी परस्त करने में समर्थनहीं है, जो सदा गौ इत्यादि पशुओं से युक्त है, जो सम्पूर्ण जीवों की ईश्वरी है,मैं उन्हीं लक्ष्मी देवी का आवाहन करता हूॅ ।।९।।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।

पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः।।१०।।

अर्थ-हे देवि! प्रसन्न होकर आशीर्वाद दो , तुम्हारे प्रसाद से हमारा मनोरथ पूर्ण, संकल्प सिद्ध हो सदा सत्यवचन बोलने में वृद्धि रहे , मुझे गाय का दूध बहुत सा प्राप्त हो, चारों ओर हमारे घर में आवश्यकतानुसार अन्न विद्यमान रहे और समृद्धि व यश हमेशा मेरा आश्रय करे। ।।१०।।

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।

श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्।।११।।

अर्थ- कर्दम जी से ही सम्पूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई है। इस कारण हे कर्दम! तुम हमारे स्थान में स्थिति करो और अपनी जननी पद्ममालिनी लक्ष्मी देवी को हमारे वंश में स्थापित करो ।।११।।

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।

नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले।।१२।।

अर्थ-हे कर्दम जलदेवतागण चिकना द्रव्य उत्पन्न करें, तुम सदा मेरे स्थान में स्थित रहो, अपनी जननी लक्ष्मी देवी को हमारे कुल में स्थापित करो।।१२।।

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिंगलां पद्ममालिनीम्।

चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१३।।

अर्थ- हे अग्ने! जो गीले देहवाली है, जिनके हाथ में शोभायमान लकड़ी विराजमान है, जो पुष्टि युक्त है, जो पीले वर्णवाली है, जो पद्मचारिणी,पद्ममालिनी और जिनका वर्ण सुवर्ण के समान देदीप्यमान है, उन्हीं लक्ष्मी देवी का हमारे लिये यहा आवाहन करो।।१३।।

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।

सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह।।१४।।

अर्थ- हे अनल! जो गीले देहवाली है, जिनके हाथ में शोभायमान लकड़ी विराजमान है, जो सुवर्ण के समान वर्णवाली और हममालिनी है ,जिनी कान्ति सूर्य के समान देदीप्यमान है, उन्हीं लक्ष्मी देवी को हमारे लिये यहा आवाहन करो।।१४।।

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।

यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम्।।१५।।

अर्थ- हे अग्ने! जिसकी अनुग्रह से वहुत सा सुवर्ण, गौ, अश्व, दास-दासी, पुत्र-पौत्र इत्यादि प्रप्त कर सकें, तुम उन्हीं अनपगामिनी लक्ष्मी देवी का हमारे यहा आवाहन करो।।१५।।

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।

सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।।१६।।

अर्थ- जो मनुष्य लक्ष्मी की कामना करता हो वह पवित्र और सावधान होकर प्रतिदिन अग्नि में गौघृत का हवन और साथ ही श्री सूक्त की पन्द्रह ऋचाओं का प्रतिदिन पाठ करे ।।१६।।

2 **माता महालक्ष्मी की आरती**

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मी
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धि।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

ऊँ जय लक्ष्मीमाता, (मैय्या) जय लक्ष्मी माता।
तुमको निशिदिन ध्यावत, हर विष्णु धाता॥ ऊँ जय॥
उमा, रमा, ब्रह्माणी, तुम ही जग-माता।
सूर्य-चन्द्रमा ध्यावत, नारद ऋषि गाता॥ ऊँ जय॥
दुर्गारूप निरञ्जनी, सुख-सम्पत्ति-दाता।
जो कोई तुमको ध्यावत, ऋद्धि-सिद्धि धन पाता॥ ऊँ जय॥
तुम पाताल-निवासिनी, तुम ही शुभदाता।
कर्म-प्रभाव-प्रकाशिनी, भवनिधि की त्राता॥ ऊँ जय॥
जिस घर तुम रहती, तहँ सब सदड्ढ्गुण आता।
सब सम्भव हो जाता, मन नहीं घबराता॥ ऊँ जय॥
तुमबिन यज्ञ न होते, वस्त्र न हो पाता।
खान-पान का वैभव सब तुमसे आता॥ ऊँ जय॥
शुभ-गुण-मन्दिर सुन्दर, क्षीरोदधि-जाता।
रत्न चतुर्दश तुम बिन कोई नहीं पाता॥ ऊँ जय॥
या आरती लक्ष्मीजी की जो कोई नर गाता,
उर आनन्द अति उमगे पाप उतर जाता॥ ऊँ जय॥

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, आरार्तिकं समर्पयामि। आरती के बाद जल गिरा दे।

पुष्पाञ्जलि - (हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर लक्ष्मी जी की प्रार्थना करे):-

ॐयज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, पुष्पांजलिं समर्पयामि।(पुष्पांजलि अर्पित करे।)

प्रदक्षिणा--(अधोलिखित मन्त्र पढते हुए लक्ष्मी जी को प्रदक्षिणा करे)

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणा पदे पदे॥

ॐ भूभुर्वः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, प्रदक्षिणा समर्पयामि।(प्रदक्षिणा करे।)

प्रार्थना- मन्त्र बोलते हुए हाथ में फूल लेकर लक्ष्मी जी की पुष्पांजलि अर्थात् प्रार्थना करना।

सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकै

र्युक्तं सदा यत्तव पादपंकजम्।
परावरं पातु वरं सुमंगलं
नमामि भक्त्याखिलकामसिद्धये।।
भवानि त्वं महालक्ष्मी सर्वकामप्रदायिनी।
सुपूजिता प्रशन्ना स्यात् महालक्ष्मि! नमोस्तुते ।।
नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्चनात्।।
विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते।।
भक्तार्ति नाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्तप्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते।।

ॐ भूर्भुवः स्वः श्री महालक्ष्म्यै नमः, प्रार्थना पूर्वक नमस्कारान् समर्पयामि। (साष्टांग नमस्कार करे।)

समर्पण-पूजन के अन्त में -कृतार्चनेन पूजनेन भगवती महालक्ष्मीदेवी प्रीयताम्, न मम। (यह वाक्य बोलकर समस्त पूजन-कर्म भगवती महालक्ष्मी को समर्पित करे तथा जल गिराये।)

2.4 सारांश:-

इस इकाई में श्रीसूक्त का पाठ किया गया है जिसमें सोलह मन्त्र पढ़े गये है। इन सूक्तों में लक्ष्मी जी के स्वरूप का वर्णन किया गया है प्रथम सूक्त में लक्ष्मी जी के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते है कि जिनका वर्ण सुवर्ण के समान उज्ज्वल है जो हरिणी के समान रूपवाली हैं, जिनके कण्ठ में सुवर्ण और चॉदी के फूलों की माला शोभा पाती है, जो चन्द्रमा के समान प्रकाशमान है, जिनकी माला देह सुवर्णमय है उन्हीं लक्ष्मीदेवी का हमारे निमित्त आवाहन करो। हे हुताशन! तुम्ही देवताओं के होता हो, लक्ष्मी देवी का आवाहन करके बुलाने में केवल तुम्हारी ही सामर्थ्य है।

घोड़े जिनके आगे चलते हैं, सम्पूर्ण रथ जिनके मध्य में स्थिर है , जो हाथियों की चग्घाण से सबको जगाती है , जो एकमात्र देवी और आश्रय है , उन्हीं लक्ष्मी का आवाहन करता हूॅ वह आकर हमारी सेवा को स्वीकार करें इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

2.5 शब्दावली -

शब्द	**अर्थ**
ताम्	उसको
आवह	अवाहन करते है
जातवेदो	प्रसन्न होकर
लक्ष्मीमनपगामिनीम्	उन्हीं अनुगामी (उन्हीं के पीछे जानेवाली) लक्ष्मी को
यस्यां	जिनके
हिरण्यं	त्रसुवर्ण,
विन्देयं	प्राप्त हो जाता है,
गामश्वं	अश्व
अश्वपूर्वां	घोड़े जिनके आगे चलते हैं,
रथमध्यां	रथ जिनके मध्य में स्थिर है ,
हस्तिनाद	हाथियों की चग्घाण से
प्रमोदिनीम्।	सबको जगाती है
श्रियम्	आश्रय है ,
देवीमुपह्वये	उन्हीं लक्ष्मी का आवाहन करता हूँ
श्रीर्मा देवी	एकमात्र देवी
जुषताम्	सेवा को स्वीकार करें

2.6 -अभ्यासार्थ प्रश्न -उत्तर

1-प्रश्न- श्रीसूक्त में कितने मन्त्र है?

उत्तर- श्रीसूक्त में सोलह मन्त्र है।

2-प्रश्न- किसकी उपासना के लिये श्री सूक्त का पाठ किया जाता है?

उत्तर- लक्ष्मी की उपासना के लिये श्री सूक्त का पाठ किया जाता है।

3-प्रश्न-पाठ का उच्चारण कहॉ से बाहर आना चाहिये है?

उत्तर- पाठ का उच्चारण होंठों से बाहर आना चाहिये है?

4-प्रश्न-श्रीसूक्त में किसके स्वरूप का वर्णन किया गया है?

उत्तर- श्रीसूक्त में लक्ष्मी के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

5-प्रश्न- पाठ काल में मन को किससे मिलायें।

उत्तर-- पाठ काल में मन को पाठ से मिलायें।

2.7-सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1 पुस्तक का नाम - रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम - शिवदत्त मिश्र
प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2 पुस्तक का नाम-सर्वदेव पूजापद्धति
लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र
प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

3 धर्मशास्त्र का इतिहास
लेखक - डॉ. पाण्डुरङ्ग वामन काणे
प्रकाशक:- उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान।

4 नित्यकर्म पूजा प्रकाश,
लेखक:- पं. बिहारी लाल मिश्र,
प्रकाशक:- गीताप्रेस, गोरखपुर।

5 अमृतवर्षा, नित्यकर्म, प्रभुसेवा
संकलन ग्रन्थ
प्रकाशक:- मल्होत्रा प्रकाशन, दिल्ली।

6 कर्मठगुरुः
लेखक - मुकुन्द वल्लभ ज्योतिषाचार्य
प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

7 हवनात्मक दुर्गासप्तशती
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर।

8 शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टध्यायी
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - अखिल भारतीय प्राच्य ज्योतिष शोध संस्थान, जयपुर।

9 विवाह संस्कार
सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा
प्रकाशक - हंसा प्रकाशन, जयपुर

2.8- उपयोगी पुस्तकें

4 नित्यकर्म पूजा प्रकाश,
लेखक:- पं. बिहारी लाल मिश्र,
प्रकाशक:- गीताप्रेस, गोरखपुर।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्।।१६।। इस मन्त्र का वर्णन कीजिये।

इकाई - 3 रूद्र सूक्त

इकाई की रुप रेखा

3.1-प्रस्तावना

3.2-उद्देश्य

3.3 रूद्र सूक्त

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 उपयोगी पुस्तके

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित यह खण्ड एक की **तीसरी इकाई** है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि रूद्रसूक्त की उत्पति किस प्रकार से हुई है ? रूद्रसूक्त की उत्पति अनादि काल से हुई है तथा इन्हीं सूक्तों के माध्यम से आज सनातन धर्म की रक्षा हो रही है।
कर्मकाण्ड को जानते हुए आप रूद्रसूक्त के विषय में परिचित होंगे कि रूद्रसूक्त का प्रयोजन क्या है एवं उसका महत्त्व क्या है इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है

नमक चमक के द्वारा शिवलिंग के आभिषेक की पुरानी परम्परा है। रुद्राष्टाध्यायी का पंचम अध्याय शतरूद्रिय माना जाता है। इसे भगवान् रूद्रके सौ से अधिक नाम गिनाएँ गए हैं। शतरूद्रिय पाठ समस्त वेदों के पारायण के तुल्य माना जाता है। इसको ही रूद्राध्याय भी कहते है। शतरूद्रिय परम पवित्र तथा धन, यश और आयु की वृद्धि करने वाला है। इसके पाठ से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है। इसका पाठ परम पवित्र एवं पापों का नाश करने वाला होता है। ये मनोरथ की सिद्धि इसी से प्राप्त होती है, दुःख और भय को दूर करने वाला होता है। जो कोई इसके परम पवित्र पाठ का श्रवण करता है, वह उत्तम कामनाओं को प्राप्त करता है।

1.2- उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप वेदशास्त्र से वर्णित रूद्रसूक्त का अध्ययन करेंगे।

1. रूद्र सूक्त के विषय में आप परिचित होंगे-
2. रूद्रसूक्त के महत्त्व के विषय में आप परिचित होंगे
3. शिवलिंग के प्रकार के विषय में आप परिचित होंगे
4. शिवलिंग के इतिहास के विषय में आप परिचित होंगे
5. रूद्रसूक्त की समाज में उपयोगिता क्या है। इसके विषय में आप परिचित होंगे

3.3 रुद्र सूक्तः-

विभिन पदार्थो द्वारा निर्मित शिवलिंग -

अपने देश में प्रायः सभी स्थानों पर पार्थिव-पूजा का प्रचलन व मान्यता है। लिंग मात्र की पूजा में पार्वती व शिव दोनों की पूजा हो जाती है। लिंग के मूल ब्रह्म, मध्यभाग में श्री विष्णु और ऊपर ओंकार रूप महादेव विराजमान है। वेदी महादेवी और लिंग महादेव है। गरूडपुराण में अनेक पदार्थो के शिवलिंग निर्माण करके, अनेक अभीष्ट कार्यो की सिद्धि हेतु पूजन करने का प्रकरण विस्तार से है, जिसमें सवार्धिक महत्व पारद निर्मित शिवलिंग का बताया गया है। शास्त्रों में अनुसार शिवलिंग अनन्त स्वरूप और निर्माण-विधियों का वर्णन भी मिलता है। विभिन्न कामना सिद्धि हेतु अनेक पदार्थो के शिवलिंग निर्माण किए जाते है, जिनमें कुछ इस प्रकार है -

गन्धलिंग:- यह लिंग दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन तथा तीन भाग कुंकुम द्वारा निर्मित किया जाता हैं। इसकी पूजा शिव का सायुजय प्राप्त करने के लिए की जाती है।

पुष्पलिंग:- इसका निर्माण विभिन्न रंगों के फूलों द्वारा किया जाता है, पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त करने के लिए इसकी पूजा की जाती है।

रजोमयलिंग:- यह मिट्टी (बालूका) द्वारा बनाया जाता है। इसका अर्चन करने से विद्या की प्राप्ति होती है।

यवगोधूमशालिजलिंग:- जौ, गेहूँ, चावल इन तीनों का आटा समान भाग लेकर इसका निर्माण किया जाता है। इसकी पूजा सौन्द्रर्य, स्वास्थ्य और पुत्र-प्राप्ति के लिए करनी चाहिए।

सिताखंडमयलिंग:- यह मिश्री के बने हुए सिट्टे का बनाया जाता है। रोगों से मुक्ति पाने तथा स्वास्थ्य के लिए इसका पूजन सार्थक माना गया है।

लवणजलिंग:- हरताल त्रिकूट (सोंठ, मिर्च, पीपल) को नमक में मिलाकर इसका निर्माण करते हैं। वशीकरण के अर्थ में इसका पूजन तत्काल फलदायक है।

तिलपिष्टोन्थलिंग:- तिलो को पीसने के बाद उसका लिंग बनावे। इसका पूजन सभी प्रकार की इच्छापूर्ति हेतु किया जाता है।

गुडोत्थलिंग:- यज्ञकुन्ड से लेकर बनाए गए लिंग को भस्मलिंग कहा जाता है। इसका पूजन अनेक प्रकार से फलदायक है।

शर्करामयशिवलिंग:- चीनी (शर्करा) द्वारा निर्मित लिंग के पूजन से सुख-शान्ति प्राप्त होती है।

वशांकुरमयलिंग:- बांस के कोमल अंकुर द्वारा बनाए गए शिवलिंग की पूजा करने से वंश की वृद्धि होती है।

दधिदुग्धोवलिंग:- कच्चे दूध को लेकर उसमें दही मिलावें। इस प्रकार दूध और दही के बने हुए शिवलिंग की पूजा करने से यश और लक्ष्मी, दोनों की प्राप्ति होत है।

धान्यजशिवलिंग:- कई प्रकार के धान्य (अनाज) गुड़ के साथ मिलकर उसका लिंग पूजन करने से धन (अनाज) की वृद्धि होती है।

फलोत्थालिंग:- फलों को धागे में पिरोकर लिंगरूप बनाया जाता है। ऐसे लिंग के अर्चन से फलसिद्धि होती है।

धात्रीफलमयलिंग:- आँवले को पीसकर बनाया गया शिवलिंग मुक्ति देने वाला होता है।

नवनीतजलिंग:- वृक्षों के कोमल पत्तों को पीसकर बनाए गए लिंग पूजन से यश और सौभाग्य प्राप्त होता है।

कर्पूरजलिंग:- कपूर से बनाया गया लिंग भक्ति का प्रेरक कहलाता है।

अयस्यान्तकमणिजलिंग:- लोहे (धातु) द्वारा बनाया गया शिवलिंग सिद्धिदायक है।

मौक्तिशिवलिंग:- मोतियों द्वारा बनाया गया लिंग स्त्रियों को सौभाग्य प्रदान करता है। पुरूष इसकी पूजा करे तो भाग्य-वृद्धि होती है।

स्वर्णनिर्मितलिंग:- सोने के शिवलिंग का पूजन करने से धनधन्य और सुख-समृद्धि प्राप्त होते है। अनन्तः मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होताहै।

रजमयशिवलिंग:- चाँदी के लिंग का पूजन भी सभी प्रकार की सुख-समृद्धि को देने वाला है।

वैदूर्यंजमणिलिंग:- लहसुनिया से निर्मित लिंग शत्रुनाश करने वाला सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाला है।

स्फटिकमणिलिंग:- स्फटिकमणि से निर्मित लिंग का पूजन इच्छाओं की पूर्ति हेतु सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसके दर्शन मात्र से ही पापों का नाश हो जाता है। इसके पूजन से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती है।

इसके अलावा भी अन्य कई प्रकार के लिंगो का निर्माण और उनकी पूजा का विधन बताया गया है। गरूड़पुराण में लिंगो का महत्व उनका आकार-प्रकार और उनके प्रकार की फल प्राप्तियो का विस्तार पूर्वक उल्लेख मिल जाता है।

।। हरिः ओम।

पाँचवाँ अध्याय

भूर्भुवः स्वः **नमस्ते रुद्द्र मन्यवऽउतोतऽइषवे नमः । बाहुभ्यामुततेनमः** ।।1।।

दुःख दूर करने वाले (अथवा ज्ञान प्रदान करने वाले) हे रूद्र! आपके क्रोध के लिये नमस्कार है, आपके बाणों के लिये नमस्कार है और आपकी दोनों भुजाओं के लिये नमस्कार है ।।1।।

यातेरुद्द्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ।।2।।

कैलास पर रहकर संसार का कल्याण करने वाले (अथवा वाणी में स्थित होकर लोगों को सुख देने वाले) हे रूद्र! आपका जो मंगलदायक, सौम्य, केवल पुण्यप्रकाशक शरीर है, उस अनन्त सुखकारक शरीर से हमारी ओर देखिये अर्थात् हमारी रक्षा कीजिये ।।2।।

यामिषुंगिरिशन्त हस्त्ते बिभर्ष्यस्त्तवे।

शिवांगिरित्त्र तांकुरुमा हिः सीः पुरुषंजगत् ।।3।।

कैलास पर रहकर संसार का कल्याण करने वाले तथा मेघों में स्थित होकर वृष्टि के द्वारा जगत् की रक्षा करने वाले है सर्वज्ञ रूद्र! शत्रुओं का नाश करने के लिये जिस बाण को आप अपने हाथ में धारण करते हैं वह कल्याणकारक हो और आप मेरे पुत्र-पौत्र तथा गो, अश्व आदिका नाश मत कीजिये ।।3।।

शिवेन व्वचसा त्त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि।

यथा नः सर्व्व मिज्जगदयक्ष्मः गुं सुमनाऽअसत् ।।4।।

हे कैलास पर शयन करने वाले! आपको प्राप्त करने के लिये हम मंगलमय वचन से आपकी स्तुति करते हैं। हमारे समस्त पुत्र-पौत्र तथा पशु आदि जैसे भी नीरोग तथा निर्मल मनवाले हों, वैसा आप करें ।।4।।

अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्प्रथमो दैव्व्यों भिषक्।

अहींश्च सर्व्वांजम्भयन्त्सर्व्वाश्च्च यातुधान्योधराचीः परासुव ।।5।।

अत्यधिक वन्दनशील, समस्त देवताओं में मुख्य, देवगणों के हितकारी तथा रोगों का नाश करने वाले रूद्र का मुझसे सबसे अधिक बोलें, जिससे मैं सर्वश्रेष्ठ हो जाऊँ। हे रूद्र ! समस्त सर्प, व्याघ्र आदि हिंसकों का नाश करते हुए आप अधोगमन कराने वाली राक्षसियों को हमसे दूर कर दें ।।5।।

असौ यस्ताम्म्रोऽअरुणऽउत बब्भ्रुः सुमंगलः ।

ये चैनः रुद्द्राऽअभितो दिक्क्षु श्रिश्रताः सहस्त्रशोवैषाः हेडऽईमहे ।।6।।

उदय के समय ताम्र वर्ण (अत्यन्त रक्त)अस्त काल में अरूण वर्ण (रक्त)अन्य समय में वभ्रू (पिंगल)वर्ण तथा शुभ मंगलोंवाला जो यह सूर्यरूप है, वह रूद्र ही है। किरण रूप में ये जो हजारों रूद्र इन आदित्य के सभी ओर स्थित हैं, इनके क्रोध का हम अपनी भक्ति मय उपासना से निवारण करते हैं ।।6।।

असौ योवसर्प्पति नीलग्ग्रीवो व्विलोहितः।

उतैनंगोपाऽअदृ श्श्रन्नदृश्श्रन्नुदहार्य्यः स दृष्ट्टो मृडयाति नः ।।7।।

जिन्हें अज्ञानी गोप तथा जल भरने वाली दासियाँ भी प्रत्यक्ष देख सकती हैं, विष धारण करने से जिनका कण्ठ नीलवर्णका हो गया है, तथापि विशेषतः रक्तवर्ण होकर जो सर्वदा उदय और अस्तको प्राप्त होकर गमन करते हैं, वे रविमण्डल-स्थित रूद्र हमें सुखी कर दें ।।7।।

नमोस्तु नीलग्ग्रीवाय सहस्त्राक्षाय मीढुषे।

यथो येऽअस्य सत्त्वानो हन्तेब्भ्यो करन्नमः ।।8।।

नीलकण्ठ, सहस्त्रनेत्रवाले, इन्द्रस्वरूप और वृष्टि करने वाले रूद्र के लिये मेरा नमस्कार है। उस रूद्र के जो भृत्य हैं, उनके लिये भी मैं नमस्कार करता हूँ ।।8।।

प्रमुंच धन्नवनस्त्वमुभयोरात्क्न्योंज्ज्याम्।

याश्च्चते हस्त्तऽइषवः परा ता भगवो व्वप ।।9।।

हे भगवान्! आप धनुष की दोनों कोटियों के मध्य स्थित प्रत्यंचका त्याग कर दें और अपने हाथ में स्थित बाणों को भी दूर फेंक दें ।।9।।

व्विज्जयन्धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवा२ँ।।ऽउत।

अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषंगधिः ।।10।।

जटाजूट धारण करने वाले रूद्रका धनुष प्रत्यंचा रहित रहे, तूणीर में स्थित बाणों के नोंकदार अग्रभाग नष्ट हो जायँ, इन रूद्रके जो बाण हैं, वे भी नष्ट हो जायँ तथा इनके खड्ग रखने का कोश भी खड्गरहित हो जाय अर्थात् वे रूद्र हमारे प्रति सर्वथा शस्त्ररहित हो जायँ ।।10।।

या ते हेतिर्म्मीढुष्ट्टम हस्त्ते बभूव ते धनुः ।

तयास्म्मा न्विश्श्वत स्त्वमयक्ष्मया परिभुज ।।11।।

अत्यधिक वृष्टि करने वाले हे रूद्र! आपके हाथ में जो धनुष रूप आयुध है, उस सुदृढ़ तथा अनुपद्रवकारी धनुष से हमारी सब ओर से रक्षा कीजिये।।11।।

परि ते धन्न्वनो हेतिरस्म्मान्वृणक्त्तु व्विश्श्वतः।

अथो यऽइषुधिस्त्तवारेऽ अस्म्मन्निधेहि तम् ।।12।।

हे रूद्र ! आपका धनुष रूप आयुध सब ओर से हमारा त्याग करे अर्थात् हमें न मारे और आपका जो बाणों से भरा तरकश है, उसे हमसे दूर रखिये ।।12।।

अवतत्त्य धनुष्ट्वः सहस्स्राक्ष शतेषुधे।

निशीर्य्य शल्ल्या नाम्मुख शिवो नः सुमना भव।।13।।

सौ तूणीर और सहस्त्र नेत्र धारण करने वाले हे रूद्र! धनुष की प्रत्यंचा दूर करके और बाणों के अग्र भागों को तोड़कर आप हमारे प्रति शान्त और शुद्ध मनवाले हो जायँ।।13।।

नमस्तऽआयुधायानातताय धृष्ण्णवे।

उभाब्भ्यामुत ते नमो बाहुब्भ्यान्तव धन्न्वने ।।14।।

हे रूद्र ! शत्रुओं को मारने में प्रगल्भ और धनुषपर न चढ़ाये गये आपके बाण के लिये हमारा प्रणाम है। आपकी दोनों बाहुओं और धनुष के लिये भी हमारा प्रणाम है ।।14।।

मा नो महान्तुमुतमानोऽ अर्ब्भकम्मा नऽउक्षन्तमुत मानऽक्षितम्।

मा नो व्वधीः पितरम्मोत मातरम्मा नः प्प्रियास्त्तन्वो रुद्द्र रीरिषः।।15।।

हे रूद्र! हमारे गुरू, पितृव्य आदि वृद्धजनों को मत मारिये, हमारे बालक की हिंसा मत कीजिये, हमारे तरूण को मत मारिये, हमारे गर्भस्थ शिशु का नाश मत कीजिये, हमारे माता-पिता को मत मारिये तथा हमारे प्रिय पुत्र-पौत्र आदिकी हिंसा मत कीजिये ।।15।।

मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मानोऽअश्श्वे षुरीरिषः।

मा नो व्वीरान्नुद्द्र भामिनो व्वधीर्हविष्म्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।।16।।

हे रूद्र! हमारे पुत्र-पौत्र आदि का विनाश मत कीजिये, हमारी आयु को नष्ट मत कीजिये, हमारी गौओं को मत मारिये, हमारे घोड़ों का नाश मत कीजिये, हमारे क्रोधयुक्त वीरों की हिंसा मत कीजिये। हवि से युक्त होकर हम सब सदा आपका आवाहन करते हैं।।16।।

नमो हिरण्ण्यबाहवे सेनान्न्ये दिशांच पतये नमो नमोव्वृक्षेब्भ्यो हरिकेशेब्भ्यः पशूनाम्पतये नमो नमः शष्पिंजराय त्त्विषीमते पथीनाम्पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्ट्टानाम्पतये

नमो नमो बब्भ्लुशाय।।17।।

भुजाओं में सुवर्ण धारण करने वाले सेनानायक रूद्र के लिये नमस्कार है, दिशाओं के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, पूर्ण रूप् हरे केशों वाले वृक्ष रूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, जीवों का पालन करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, कान्तिमान् बालतृण के समान पीत वर्णवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, मार्गों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, नीलवर्ण-केश से युक्त तथा मंगल के लिये यज्ञोपवीत धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, गुणों से परिपूर्ण मनुष्यों के स्वामी रूद्र के लिये नमस्कार है।।17।।

नमो बब्भ्लुशाय व्याधिनेन्नाम्पतये नमो नमो भवस्य हेत्त्यै जगताम्पतये नमो रुद्द्रायाततायिने क्क्षेत्त्राणाम्पतये नमो नम: सूतायाहन्त्यै व्वनानाम्पतये नमो नमोरोहिताय।।18।।

कपिल (वर्णवाले अथवा वृषभपर आरूढ़ होने वाले) तथा शत्रुओं को बेधने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, अन्नों पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, संसार के आयुधरूप (अथवा जगन्निवर्तक) रूद्र के लिये नमस्कार है, जगत् का पाल करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, उद्यत आयुध वाले रूद्र के लिये नमस्कार है देवों के पालन करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है न मारने वाले सारथी रूद्र के लिये नमस्कार है, तथा वनों के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है।।18।।

नमो रोहिताय स्त्थपतये व्वृक्षाणाम्पतये नमो नमो भुवन्तये व्वारिवस्कृतायौषधीनाम्पतये नमो नमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्क्षाणाम्पतये नमो नमऽउच्चैर्ग्घोषायाक्क्रन्दयते पत्तीनाम्पतये नमो नम: कृत्स्नायतया ।।19।।

लोहितवर्णवाले तथा गृह आदि के निर्माता विश्वकर्मारूप रूद्र के लिये नमस्कार है, वृक्षों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, भुवन का विस्तार करने वाले तथा समृद्धि कारक रूद्र के लिये नमस्कार है, ओषधियों के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, आलोचकुशल व्यापारकर्त्तारूप रूद्र के लिये नमस्कार है, वन के लतावृक्ष आदि के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, युद्ध में उग्र शब्द करने वाले तथा शत्रुओं को रूलाने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, (हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल आदि) सेनाओं के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है ।।19।।

नम: कृत्स्नायतयाधावते सत्त्वनाम्पतये नमो नमः सह मानाय निव्व्याधिनऽ आव्व्याधिनीनाम्पतये नमो नमो निषंगिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्ण्या नाम्पतये नमो नमो व्वंचले।।20।।

कर्णपर्यन्त प्रत्यंचा खींचकर युद्ध में शीघ्रता पूर्वक दौड़ने वाले (अथवा सम्पूर्ण लाभ की प्राप्ति कराने वाले) रूद्र के लिये नमस्कार है, शरणागत प्राणियों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले तथा शुत्रओं को बेधने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सब प्रकार से प्रहार करने वाली शूर सेनाओं के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, खड्ग चलाने वाले महान् रूद्र के लिये

नमस्कार है, गुप्त चोरों के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, अपहार की बुद्धि से निरन्तर गतिशील तथा हरण की इच्छा से आपण (बाजार)-वाटिका आदि में विचरण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है तथा वनों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है ।।20।।

नमो व्वंचते परिवंचते स्त्तायूनाम्पतये नमो नमो निषंगिणऽइषुधिमते तस्क्कराणाम्पतये नमो नमः सृकायिब्भ्यो जिघाः सद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमो नमो सिमद्भ्यो नक्तंचरद्भ्यो व्विकृन्तानाम्पतये नमः।।21।।

वंचना करने वाले तथा अपने स्वामी को विश्वास दिलाकर धन हरण करके उसे ठगने वाले रूद्र रूप के लिये नमस्कार है, गुप्त धन चुराने वालों के पालक रूद्रके लिये नमस्कार है, बाण तथा तूणीर धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, प्रकटरूप में चोरी करने वालों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है, वज्र धारण करने वाले तथा शत्रुओं को मारने की इच्छावाले रूद्रके लिये नमस्कार है, खेतों में धान्य आदि चुराने वालों के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, प्राणियों पर घात करने के लिये खड्ग धारण कर रात्रि में विचरण करने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है तथा दूसरों को काटकर उनका धन हरण करने वालों के पालक रूद्र के लिये नमस्कार है।।21।।

नमऽ उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुंचानाम्पतये नमो नमऽइषुमद्भ्यो धन्वायिब्भ्यश्च्च वो नमो नमऽ आतन्वानेब्भ्यः प्प्रतिदधाने ब्भ्यश्च्च वो नमो नमऽ आयच्छद्भ्योस्यद्भ्यश्च्च वो नमो नमोव्विसृजद्भ्य» ।।22।।

सिर पर पगड़ी धारण करके पर्वतादि दुर्गम स्थानों में विचरने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, छलपूर्वक दूसरों के क्षेत्र, गृह आदिका हरण करने वालों के पालक रूद्र रूप के लिये नमस्कार है, लोगों को भयभीत करने के लिये बाण धारण करने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, धनुष धारण करने वाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, धनुष पर बाण का संधान करने वाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, धनुष को भली भाँति खींचने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, बाणों को सम्यक् छोड़ने वाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है।।22।।

नमो व्विसृजद्भ्यो व्विद्ध्यद्भ्यश्च्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च्च वो नमो नमः शयानेब्भ्यऽ आसीनेब्भ्यश्च्च वो नमो नमस्त्तिष्ठ्द्भ्यो धावद्भ्यश्च्च वो नमा नमः सभाब्भ्यः।।23।।

पापियों के दमन के लिये बाण चलाने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, शत्रुओं को बेधने वाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, स्वप्नावस्था का अनुभव करने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, जाग्रत् अवस्था वाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, सुषुप्ति अवस्था वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, बैठे हुए आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, स्थित रहने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, वेगवान् गतिवाले आप रूद्रों के लिये नमस्कार है।।23।।

नमः सभाब्भ्यः सभापतिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो श्श्वेब्भ्यो श्श्वपतिब्भ्यश्च्च वो नमो

नमऽआव्व्याधिनीब्भ्यो व्विविद्ध्यन्तीब्भ्यश्च्च वो नमो नमऽ उगाणाब्भ्यस्तृ: गं हतीब्भ्यश्च्च वो नमो नमो गणेब्भ्य: ।।24।।

सभारूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, सभापतिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, अश्वरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, अश्वपतिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, सब प्रकार से बेधन करने वाले देवसेनारूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, विशेषरूप से बेधन करने वाले देवसेनारूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, उत्कृष्ट भृत्यसमूहों वाली ब्राह्मी आदि मातास्वरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है और मारने में समर्थ दुर्गा आदि माता स्वरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है ।।24।।

नमो गणेब्भ्यो गणपतिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो व्व्रतेब्भ्यो व्व्रातपतिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो गृत्त्सेब्भ्यो गृत्त्सपतिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो व्विरूपेब्भ्यो व्विश्श्वरूपेब्भ्यश्च्च वो नमो नमः सेनाब्भ्यः।।25।।

देवानुचर भूतगणरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, भूतगणों अधिपतिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, भिन्न-भिन्न जाति समूहरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, विभिन्न जाति समूहों के अधिपतिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, मेधावी ब्रह्मजिज्ञासुरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, निकृष्ट रूपवाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, नानाविध रूपों वाले विश्वरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है।।25।।

नमः सेनाब्भ्यः सेनानिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो रथिब्भ्योऽअर थेब्भ्यश्च्च वो नमो नम: क्क्षतृब्भ्य: सड्ग्रहीतृब्भ्यश्च्च वो नमो महद्भ्यो ऽ अब्र्भकेब्भ्यश्च्च वो नम:।।26।।

सेनारूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, सेनापतिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, रथीरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, रथविहीन आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, रथों के अधिष्ठातारूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, सारथिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, जाति तथा विद्या आदि से उत्कृष्ट प्राणिरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, प्रमाण आदि से अल्परूप रूद्रों के लिये नमस्कार है ।।26।।

नमस्त्तक्क्षब्भ्यों रथकारेब्भ्यश्च्च वो नमो नमः कुलालेब्भ्यः कम्मारेब्भ्यश्च्च वो नमो नमो निषादेब्भ्य: पुंजिष्ट्ब्भ्यश्च्च वो नमो नम: श्श्वनिब्भ्यो मृगयुब्भ्यश्च्च वो नमो नमः श्श्वब्भ्य:।।27।।

शिल्पकाररूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, रथ निर्मातारूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, कुम्भकाररूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, लौहकाररूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, वन-पर्वतादि में विचरने वाले निषादरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, पक्षियों को मारने वाले पुल्कसादिरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, श्वानों के गले में बँधी रस्सी धारण करने वाले रूद्र रूपों के लिये नमस्कार है और मृगों की कामना करने वाले व्याधरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है।।27।।

नमः श्श्वब्भ्यः श्श्वपतिब्भ्यश्च्च वो नमो नमो भवाय च रुद्द्राय च नम:शर्व्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्ग्रीवाय च शिति कण्ठाय च म: कपर्द्दिने।।28।।

श्वानरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, श्वानों के स्वामीरूप आप रूद्रों के लिये नमस्कार है, प्राणियों के

उत्पत्तिकर्त्ता रूद्र के लिये नमस्कार है, दुःखों के विनाशक रूद्र के लिये नमस्कार है, पापों का नाश करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, पशुओं के रक्षक रूद्र के लिये नमस्कार है, हलाहलपान के फलस्वरूप नीलवर्ण के कण्ठवाले रूद्र के लिये नमस्कार है और श्वेत कण्ठवाले रूद्र के लिये नमस्कार है ।।28।।

नमः कपर्द्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च नमो ह्रस्वाय।।29।।

जटाजूट धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, मुण्डित केशवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, हजारों नेत्र वाले इन्द्ररूप रूद्र के लिये नमस्कार है, सैकड़ों धनुष धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, कैलास पर्वतपर शयन करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सभी प्राणियों के अन्तर्यामी विष्णुरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, अत्यधिक सेचन करने वाले मेघरूप रूद्र के लिये नमस्कार है और बाण धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।29।।

नमः ह्रस्वाय च व्वामनाय च नमो बृहते च व्वर्षीयसे च नमो व्वृद्धाय च सवृधे च नमोग्याय च प्प्रथमाय च नमऽआशवे।।30।।

अल्प देहवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, संकुचित अंगों वाले वामनरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, बृहत्काय रूद्र के लिये नमस्कार है, अत्यन्त वृद्धावस्था वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, अधिक आयुवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, विद्याविनयादिगुणों से सम्पन्न विद्वानों के साथीरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, जगत् के आदिभूत रूद्र के लिये नमस्कार है और सर्वत्र मुख्यस्वरूप रूद्रके लिये नमस्कार है।।30।।

नमऽआशवे चाजिराय च नमः शीग्घ्रयाय च शीब्भ्याय च नमऽ-ऊर्म्म्याय चावस्वन्न्याय च नमो नादेयाय च द्द्वीप्प्याय च।।31।।

जगद्व्यापी रूद्र के लिये नमस्कार है, गतिशील रूद्र के लिये नमस्कार है, वेगवाली वस्तुओं में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, जलप्रवाह में विद्यमान आत्मश्लाघी रूद्र के लिये नमस्कार है, जलतरंगों में व्याप्त रूद्र के लिये नमस्कार है, स्थिर जलरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, नदियों में व्याप्त रूद्रके लिये नमस्कार है और द्वीपों में व्याप्त रूद्र के लिये नमस्कार है,।।31।।

नमो ज्ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्व्वजाय चापरजाय च नमो मद्ध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्न्याय च बुद्ध्न्याय च नमः सोब्भ्याय।।32।।

अति प्रशस्य ज्येष्ठरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, अत्यन्त युवा (अथवा कनिष्ठ)-रूप रूद्र के लिये नमस्कार है, जगत् के आदि में हिरण्यगर्भरूप से प्रादुर्भूत हुए रूद्र के लिये नमस्कार है, प्रलय के समय कालाग्निके सदृश रूप धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, अव्युत्पन्नेन्द्रिय रूद्र के लिये नमस्कार है अथवा विनीत रूद्र के लिये नमस्कार है, (गाय आदि के) जघनप्रदेश से उत्पन्न होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है और वृक्षादिकों के मूल में निवास करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।32।।

नमः सोब्भ्या प्प्रतिसर्य्याय च नमो याम्म्याय च क्षेम्मयाय च नमः श्लोक्याय चावसन्न्याय च

नमऽउर्व्वर्य्याय च खल्ल्याय च नमो व्वन्न्याय।।33।।

गन्धर्वनगर में होने वाले (अथवा पुण्य और पापों से युक्त मनुष्यलोक में उत्पन्न होने वाले) रूद्र के लिये नमस्कार है, प्रत्यभिचार में रहने वाले (अथवा विवाह के समय हस्त सूत्र में उत्पन्न होने वाले) रूद्र के लिये नमस्कार है, पापियों को नरक की वेदना देने वाले यम के अन्तर्यामी रूद्र के लिये नमस्कार है, कुशलकर्म में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, वेदके मन्त्र (अथवा यश)-द्वारा उत्पन्न हुए होने वाले धान्यरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, धान्यविवेचन-देश (खलिहान)-में उत्पन्न हुए रूद्र के लिये नमस्कार है।।33।।

नमो व्वन्न्याय च कक्ष्याय च नमः रवाय च प्प्रतिश्श्रवाय च नमऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च नमो बिल्म्मिने।।34।।

वनों में वृक्ष-लतादिरूप रूद्र अथवा वरूणस्वरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, शुष्क तृण अथवा गुल्मों में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, प्रतिध्वनिस्वरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, शीघ्रगामी सेनावाले रूद्रके लिये नमस्कार है, शीघ्रगामी रथवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, युद्ध में शूरता प्रदर्शित करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, तथा शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।34।।

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो व्वर्म्मिणे च व्वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुब्भ्याय चाहनन्न्यायच नमो धृष्णवे।।35।।

शिरस्त्राण धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है कपास-निर्मित देहरक्षक (अंगरखा) धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, लोहे का बख्तर धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, गुंबदयुक्त रथवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, संसार में प्रसिद्ध रूद्रके लिये नमस्कार है, प्रसिद्ध सेनावाले रूद्र के लिये नमस्कार है, दुन्दुभी (भेरी)-में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, भेरी आदि वाद्यों को बजाने में प्रयुक्त होने वाले दण्ड आदि में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है।।35।।

नमो धृष्णवे च प्प्रमृशाय च नमो निषंगिणे चेषुधिमते च नमस्त्ती-क्ष्णेषवे चायुधिने च नमःस्वायुधाय च सुधन्वने च।।36।।

प्रगल्भ स्वभाव वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सत्-असत्का विवेकपूर्वक विचार करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, खड्ग धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, तूणीर (तरकश) धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, तीक्ष्ण बाणोंवाले रूद्र के लिये नमस्कार है, नानाविध आयुधों को धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, उत्तम त्रिशूलरूप आयुध धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है और श्रेष्ठ पिनाक धनुष धारण करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।36।।

नमः स्रुत्त्याय च पत्थ्याय च नमः काट्ट्याय च नीप्प्याय च नमः कुल्ल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च व्वैशन्ताय च नमः कूप्प्याय।।37।।

क्षुद्रमार्ग में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, रथ-गज-अश्व आदि के योग्य विस्तृत मार्ग में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, दुर्गम मार्गों में स्थित रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, जहाँ झरनों का जल गिरता है, उस भूप्रदेश में उत्पन्न हुए अथवा पर्वतों के अधोभाग में

विद्यमान रूद्रके लिये नमस्कार है, नहर के मार्ग में स्थित अथवा शरीरों में अन्तर्यामी रूप से विराजमान रूद्र के लिये नमस्कार है, अल्प सरोवर में रहनेवाले रूद्र के लिये नमस्कार है,।। 37।।

नमः कूप्प्याय चावट्टयाय च नमो व्वीध्रयाय चातप्पयाय च नमो मेग्घ्याय च व्विद्द्युत्त्याय च नमो व्वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो व्वात्त्याय।।38।।

कुपों में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, गर्त स्थानों में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, शरद्-ऋतु के बादलों अथवा चन्द्र-नक्षत्रादि-मण्डल में विद्यमान विशुद्ध स्वभाव वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, आतप (धूप)-में उत्पन्न होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, मेघों में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, विद्युत् में होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, वृष्टि में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है तथा अवर्षण में स्थित रूद्र के लिये नमस्कार है।।38।।

नमो व्वात्त्याय च रेष्म्मयाय च नमो व्वास्तव्व्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रूद्द्राय च नमस्ताम्प्राय चारूणाय च नम: शंगवे।।39।।

वायु में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, प्रलयकाल में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, गृह-भूमि में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है अथवा सर्वशरीरवासी रूद्र के लिये नमस्कार है, गृहभूमि के रक्षक रूप रूद्र के लिये नमस्कार है, चन्द्रमा में स्थित अथवा ब्रह्मविद्या महाशक्ति उमासहित विराजमान सदाशिव रूद्र के लिये नमस्कार है, सर्वविध अनिष्ट के विनाशक रूद्र के लिये नमस्कार है, उदित होने वाले सूर्य के रूप में ताम्रवर्णके रूद्र के लिये नमस्कार है और उदय के पश्चात् अरूण (कुछ-कुछ रक्त) वर्ण वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।39।।

नम: शंगवे च पशुपतये च नमऽ उग्राय च भीमाय च नमोग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो व्वृक्षेब्भ्यो हरिकेशेब्भ्यो नमस्ताराय।।40।।

भक्तों को सुख की प्राप्ति कराने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, जीवों के अधिपतिस्वरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, संहार-काल में प्रचण्ड स्वरूपवाले रूद्रके लिये नमस्कार है, अपने भयानक रूप में शत्रुओं को भयभीत करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सामने खड़े होकर वध करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, दूर स्थित रहकर संहार करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, हनन करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है प्रलय काल में सर्वहन्ता रूप रूद्र के लिये नमस्कार है हरित वर्ण के पत्र रूप केशों वाले कल्पत स्वरूप् रूद्र के लिये नमस्कार है और ज्ञानोपदेश के द्वारा अधिकारी जनों को तारनेवाले रूद्रके लिये नमस्कार है।।40।।

नम:शम्भवाय च मयोभवाय च नम: शंकराय च मयस्क्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च।।41।।

सुख के उत्पत्ति स्थान रूप रूद्र के लिये नमस्कार है, भोग तथा मोक्ष का सुख प्रदान करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, लौकिक सुख देने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, वेदान्त शास्त्र में होने वाले ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार स्वरूप् रूद्र के लिये नमस्कार है, कल्याणरूप निष्पाप रूद्र के लिये नमस्कार

है और अपने भक्तों को भी निष्पाप बनाकर कल्याणरूप कर देने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है।।41।।

नमः पार्य्याय चावार्य्याय च नम प्प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्त्थ्याय च कूल्ल्याय च नमः शष्प्प्याय च फेन्न्याय च नमः सिकत्त्याय।।42।।

संसार समुद्र के अपर तीर पर रहने वाले अथवा संसारातीत जीवन्मुक्त विष्णुरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, संसार व्यापी रूद्र के लिये नमस्कार है, दुःख-पापादि से प्रकृष्ट रूप से तारने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, उत्कृष्ट ब्रह्म साक्षात्कार कराकर संसार से तारने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है ,तीर्थस्थलों में प्रतिष्ठित रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है,गग्ङा आदि नदियों के तटपर उत्पन्न रहने वाले कुशाङ्कुरादि बालतृणरूप रूद्र के लिये नमस्कार है और जलके विकार स्वरूप फेन में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है ।।42।।

नमः सिकत्त्या च प्रवाह्य्याय च नमः किः शिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्द्दिने च पुलस्तये च नमऽइरिण्ण्यायच प्प्रपत्थ्याय च नमो व्व्रज्ज्याय।।43।।

नदियों की बालुकाओं में होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, नदी आदि के प्रवाह में होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, क्षुद्र पाषाणों वाले प्रदेश के रूप में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, स्थिर जल से परिपूर्ण प्रदेशरूप रूद्र के लिये नमस्कार है जटामुकुटधारी रूद्र के लिये नमस्कार है, शुभाशुभ देखने की इच्छा से सदा सामने खड़े रहने वाले अथवा सर्वान्तर्यामीस्वरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, उसर भूमि रूप रूद्र के लिये नमस्कार है और अनेक जनों से संसेवित मार्ग में होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है,।।43।।

नमो व्व्रज्ज्याय च गोष्ठ्याय नमस्तल्प्प्याय च गेह्य्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गव्हरेष्ठ्याय च नमः शुष्क्क्याय ।।44।।

गो समूह में विद्यमान अथवा व्रज में गोपेश्वर के रूप में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है , गोशालाओं में रहने वाले गोष्ठ्य रूप रूद्र के लिये नमस्कार है शय्या में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, गृह में विद्यमान रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है , हृदय में रहने वाले जीव रूपी रूद्र के लिये नमस्कार है, जल के भवर में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है दुर्ग-अरण्य अदि स्थानों में रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है और विषम गिरि गुहा आदि अथवा गम्भिर जल में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है ।।44।।

नमः शुष्क्याय च हरित्यायच नमः पा गं सव्व्यायच रजस्यायचनमो लोप्यायचलोप्याय च नम उव्व्र्याय च सूर्व्याय च नमः पर्ण्णाय।।45।।

काष्ठ आदि शुष्क पदार्थों में भी सत्तारूप से विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, आर्द्र काष्ठ आदि में सत्तारूप से विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है, धूलि आदि में विराजमान पांसव्यरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, रजोगुण अथवा प्रलय में भी साक्षी बनकर रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सम्पूर्ण इन्द्रियों के व्यापार की शान्ति होने पर भी अथवा प्रलय में भी साक्षी में रहने वाले रूद्र के लिये

नमस्कार है, बल्वजादि तृणविशेषों में होने वाले उलप्यरूपी रूद्र के लिये नमस्कार है, बडवानल में विराजमान रूद्र के लिये नमस्कार है और प्रलयाग्नि में विद्यमान रूद्र के लिये नमस्कार है।।45।।

नम: पर्ण्णाय च पर्ण्णशदाय च मनऽउद्गुरमाणाय चाभिग्घ्नते च नमऽआखिदते च प्प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च्च वो नमो नमो वः किरिकेब्भ्यो देवानाः हृदयेब्भ्यो नमो व्विचिन्वत्त्केब्भ्यो नमो व्विक्षिणत्त्केब्भ्यों नमऽआनिर्हतेब्भ्य»।।46।।

वृक्षों के पत्र रूप रूद्र के लिये नमस्कार है, वृक्ष-पर्णों के स्वतः शीर्ण होने के काल-वसन्त-ऋतुरूप रूद्र के लिये नमस्कार है, पुरूषार्थपरायण रहने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सब ओर शत्रुओं का हनन करने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, सब ओर से अभक्तों को दीन-दुःखी बना देने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, अपने भक्तों के दुःखों से दुःखी होने के कारण दया से आर्द्रहृदय होने वाले रूद्र के लिये नमस्कार है, बाणों का निर्माण करने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, ध्नुषों का निर्माण करने वाले रूद्रों के लिये नमस्कार है, वृष्टि आदि के द्वारा जगत् का पालन करने वाले देवताओं के हृदयभूत अग्नि-वायु-आदित्यरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है, धर्मात्मा तथा पापियों का भेद करने वाले अग्नि आदि रूद्रों के लिये नमस्कार है, भक्तों पाप-रोग-अमंगलको दूर करने वाले तथा पाप-पुण्य के साक्षीस्वरूप अग्नि आदि रूद्रों के लिये नमस्कार है और सृष्टि के आदि में मुख्यतया इन लोकों से निर्गत हुए अग्नि-वायु-सूर्यरूप रूद्रों के लिये नमस्कार है।।46।।

द्रापेऽ अन्धसस्प्ते दरिद्द्र नीललोहित।

आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्मा भेर्म्मारोङ्ङ्मोचनः किंचनाममत्।।47।।

हे द्रापे (दुराचारियों को कुत्सित गति प्राप्त कराने वाले)! हे अन्धसस्पते (सोमपालक)! हे दरिद्र (निष्परिग्रह)! हे नीललोहित! हमारी पुत्रादि प्रजाओं तथा गो आदि पशुओं को भयभीत मत कीजिये, उन्हें नष्ट मत कीजिये और उन्हें किसी भी प्रकार के रोग से ग्रसित मत कीजिये।।47।।

इमा रूद्द्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्द्वीराय प्प्रभरामे मती।

यथा शमसद्द्विपदे चतुष्प्पदे विश्श्वम्पुष्ट्टङ्ग्रामेऽ अस्मिन्ननातुरम।।48।।

जिस प्रकार से मेरे पुत्रादि तथा गौ आदि पशुओं को कल्याण की प्राप्ति हो तथा इस ग्राम में सम्पूर्ण प्राणी पुष्ट तथा उपद्रवरहित हों, इसके निमित्त हम अपनी इन बुद्धियों को महाबली, जटाजूटधारी तथा शूरवीरों के निवासभूत रूद्र के लिये समर्पित करते हैं।।48।।

या ते रूद्द्र शिवा तनूः शिवा व्विश्श्वाहा भेषजी।

शिवा रूतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।।49।।

हे रूद्र ! आपका जो शान्त, निरन्तर कल्याणकारक, संसार की व्याधि निवृत्त करने वाला तथा शारीरिक व्याधि दूर करने का परम औषधिरूप शरीर है, उससे हमारे जीवन को सुखी कीजिये।।49।।

परि नो रूद्द्रस्य हेतिर्व्वृणक्त्तु परि त्त्वेषस्य दुर्म्मतिरघायोः।

अव स्त्थिरा मघवद्भ्यस्त्तनुष्ष्व मीढ्स्तोकाय तनयाय मृड।।50।।

रूद्र के आयुध हमारा परित्याग करें और क्रुद्ध हुए द्वेषी पुरूषों की दुर्बुद्धि हम लोगों को वर्जित कर दे (अर्थात् उनसे हमलोगों को किसी प्रकार की पीड़ा न होने पावे)। अभिलषित वस्तुओं की वृष्टि करने वाले हे रूद्र ! आप अपने धनुष को प्रत्यंचारहित करके यजमान-पुरूषों के भयको दूर कीजिये और उनके पुत्र-पौत्रों को सुखी बनाइये।।50।।

मीढुष्ट्म शिवतम शिवो नःसुमना भव।

परमे वृक्षऽआयु धन्निधाय कृत्तिँव्वसनऽआचार पिनाकम्बिब्भ्रदागहि।।51।।

अभीष्ट फल और कल्याणों की अत्यधिक वृष्टि करने वाले हे रूद्र ! आप हम पर प्रसन्न रहें, अपने त्रिशूल आदि आयुधों को कहीं दूरस्थित वृक्षों पर रख दीजिये, गजचर्म का परिधान धारण करके तप कीजिये और केवल शोभा के लिये धनुष धारण करके आइये।।51।।

व्विकिरद्द्र व्विलोहित नमस्त्तेऽ अस्त्तु भगवः।

यास्त्ते सहस्त्रः हेतयोन्नयमस्म्मान्निवपन्तु ताः।।52।।

विविध प्रकार के उपद्रवों का विनाश करने वाले तथा शुद्धस्वरूप वाले हे रूद्र ! आपको हमारा प्रणाम है, आपके जो असंख्य आयुध हैं, वे हमसे अतिरिक्त दूसरों पर जाकर गिरें।।52।।

सहस्त्राणि सहस्त्रशो बाह्वोस्त्तव हेतय।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि।।53।।

गुण तथा ऐश्वर्यों से सम्पन्न हे जगत्पति रूद्र ! आपके हाथों में हजारों प्रकार के जो असंख्य आयुध है, उनके अग्रभागों (मुखों)- को हमसे विपरीत दिशाओं की ओर कर दीजिये (अर्थात् हम पर आयुधों का प्रयोग मत कीजिये)।।53।।

असङ्ख्याता सहस्त्राणि ये रूद्द्राऽअधि भम्म्याम्।

तेषाः सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि।।54।।

पृथ्वी पर जो असंख्य रूद्र निवास करते है, उनके असंख्य धनुषों को प्रत्यंचारहित करके हम लोग हजारों कोसों के पार जो मार्ग है, उस पर ले जाकर डाल देते हैं।।54।।

अस्म्मिन्न्महत्त्यर्णवेन्तरिक्क्षे भवाऽअधि।

तेषाः सहस्त्रयोजनेव धन्वाति तन्मसि।।55।।

मेघ मण्डल से भरे हुए इस महान् अन्तरिक्ष में जो रूद्र रहते है, उनके असंख्य धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोसों के पारस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।55।।

नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा दिवः रूद्द्राऽउपश्रिताः।

तेषाः गं सहस्त्रयो जनेवधन्वानि तन्मसि।।56।।

जिनके कण्ठका कुछ भाग नीलवर्णका है और कुछ भाग श्वेतवर्ण का है तथा जो द्युतोक में निवास करते हैं, उन रूद्रों के असंख्य धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोस दूरस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।56।।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्व्वाऽ अधः क्षमाचरा।

तेषाः सहस्त्रयो जनेव धन्वानि तन्मसि।।57।।

कुछ भाग में नीलवर्ण और कुछ भाग में शुक्लवर्ण के कण्ठवाले तथा भूमि के अधोभाग में स्थित पाताल लोक में निवास करने वाले रूद्रों के असंख्य धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोस दूरस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।57।।

ये व्वृक्षेषु शष्प्पिंजरा नीलग्रीवा व्विलोहिताः

तेषाः गुं सहस्त्रयो जनेव धन्वानि तन्मसि।।58।।

बाल तृण के समान हरित वर्ण के तथा कुछ भाग में नील वर्ण एवं कुछ भाग में शुक्लवर्ण के कण्ठवाले, जो रूधिररहित रूद्र (तेजोमय शरीर रहने से उन शरीरों में रक्त और मांस नहीं रहता) हैं, वे अश्वत्थ आदि के वृक्षों पर रहते हैं। उन रूद्रों के धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोसों के पारस्थित मार्ग पर डाल देते हैं।।58।।

ये भूतानामधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः।

तेषाः गुं सहस्त्रयो जनेवा धन्वानि तन्मसि।।59।।

जिनके सिर पर केश नहीं हैं, जिन्होंने जटाजूट धारण कर रखा है और जो पिशाचों के अधिपति है, उन रूद्रों के धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोसों के पारस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।59।।

ये पथाम्पथिरक्षयऽ ऐलबृदाऽ आयुर्य्युधः।

तेषाः गुं सहस्त्रयो जनेवा धन्वानि तन्मसि।।60।।

अन्न देकर प्राणियों का पोषण करने वाले, आजीवन युद्ध करने वाले, लौकिक-वैदिक मार्ग का रक्षण करने वाले तथा अधिपति कहलाने वाले जो रूद्र हैं, उनके धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हमलोग हजारों कोसों के पारस्थित मार्ग पर जाकर डाल देते हैं।।60।।

ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्त्ता निषंगिणः।

तेषाः गुं सहस्त्रयो जनेवा धन्वानि तन्मसि।।61।।

वज्र और खड्ग आदि आयुधों को हाथ में धारण कर जो रूद्र तीर्थों पर जाते हैं, उनके धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोसों के पारस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।61।।

येन्नेषु व्विविद्ध्यन्ति पात्त्रेषु पिबतो जनान्।

तेषाःगुं सहस्त्रयो जनेवा धन्वानि तन्मसि।।62।।

खाये जाने वाले अन्नों में स्थित जो रूद्र अन्नभोक्ता प्राणियों को पीड़ित करते हैं (अर्थात् धातु वैषम्य के द्वारा उनमें रोग उत्पन्न करते हैं) और पात्रों में स्थित दुग्ध आदि में विराजमान जो रूद्र, उनका पान करने वाले लोगों को (व्याधि आदि के द्वारा) कष्ट देते हैं, उनके धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम

लोग हजारों कोस दूरस्थित मार्ग पर जाकर डाल देते हैं।।62।।

यऽएतावन्तश्च्च भूयाः गुं सश्च्च दिशो रूद्द्रा व्वितस्त्थिरे।

तेषाः गुं सहस्स्रयो जनेवा धन्वानि तन्म्मसि।।63।।

दसों दिशाओं में व्याप्त रहने वाले अनेक रूद्र हैं, उनके धनुषों को प्रत्यंच्चारहित करके हम लोग हजारों कोस दूरस्थित मार्ग पर ले जाकर डाल देते हैं।।63।।

नमोस्त्तु रूद्द्रेब्भ्यो ये दिवि येषाँव्वर्षमिषवः।

तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणादश प्प्रतीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः।

तेब्भ्यो नमोऽअस्त्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो द्वेष्ट्टि

तमेषांजम्भे दद्ध्मः।।64।।

जो रूद्र द्युलोक में विद्यमान हैं तथा जिन रूद्रों के बाण वृष्टि रूप हैं, उन रूद्रों के लिये नमस्कार है। उन रूद्रों के लिये पूर्व दिशा की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, दक्षिण की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, पश्चिम की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, उत्तर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ और ऊपर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ (अर्थात् हाथ जोड़कर सभी दिशाओं में उन रूद्रों के लिये प्रणाम करता हूँ)। वे रूद्र हमारी रक्षा करें और वे हमें सुखी बनायें। वे रूद्र जिस मनुष्य से द्वेष करते हैं, हमलोग जिससे द्वेष करते हैं और जो हम से द्वेष करता है, उस पुरूष को हम लो उन रूद्रों के भयंकर दाँतों वाले मुख में डालते हैं (अर्थात् वे रूद्र हमसे द्वेष करने वाले मनुष्य का भक्षण कर जायँ)।।64।।

नमोस्त्तु रूद्द्रेब्भ्यो येन्तरिक्षे येषाँव्वातऽइषवः।

तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः।

तेब्भ्यो नमोऽअस्त्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो

द्वेष्ट्टि तमेषांजम्भे दद्ध्मः।।65।।

जो रूद्र अन्तरिक्षमें विद्यमान हैं तथा जिन रूद्रों के बाण पवनरूप हैं, उनरूद्रों के लिये नमस्कार है। उन रूद्रों के लिये पूर्व दिशा की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, दक्षिण की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, पश्चिम की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, उत्तर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ और ऊपर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ (अर्थात् हाथ जोड़कर सभी दिशाओं में उन रूद्रों के लिये प्रणाम करता हूँ)। वे रूद्र हमारी रक्षा करें और वे हमें सुखी बनायें। वे रूद्र जिस मनुष्य से द्वेष करते हैं, हम लोग जिससे द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उस पुरूष को हम लोग उन रूद्रों के भयंकर दाँतों वाले मुख में डालते हैं (अर्थात् वे रूद्र हम से द्वेष करने वाले मनुष्य का भक्षण कर जायँ)।।65।।

नमोस्त्तु रूद्द्रेब्भ्यो ये पृथिव्वयाँ य्येषामन्नमिषवः।

तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः।

तेब्भ्यो नमोऽअस्त्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो

द्वेष्ट्टि तमेषांजम्भेदद्ध्यः।।66।।

जो रूद्र पृथ्वीलोक में स्थित हैं तथा जिनके बाण अन्नरूप हैं, उन रूद्रों के लिये नमस्कार है। उन रूद्रों के लिये पूर्व दिशा की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, दक्षिण दिशा की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, पश्चिम की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ, उत्तर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ और ऊपर की ओर दसों अंगुलियाँ करता हूँ (अर्थात् हाथ जोड़कर सभी दिशाओं में उन रूद्रों के लिये प्रणाम करता हूँ)। वे रूद्र हमारी रक्षा करें और वे हमें सुखी बनावें। वे रूद्र जिस मनुष्य से द्वेष करते हैं, हमलोग जिससे द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उस पुरूष को हम लोग उन रूद्रों के भयंकर दाँतों वाले मुख में डालते हैं (अर्थात् वे रूद्र हमसे द्वेष करने वाले मनुष्य का भक्षण कर जायँ)।।66।।

इस प्रकार रूद्रपाठ (रूद्राष्टाध्यायी)-का पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।।5।

3.4-सारांश

इस इकाई में महर्षि याज्ञवल्क्य ने शतरूद्रिय पाठ को अमृतत्व का साधन माना है। शतरूद्रिय पाठ करने वाला, पूत होता है, वायुपूत होता है, आत्मपूत होता है, सुरापान या मदिरापान दोष से छूटता है, ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है। शुभाशुभ कर्मों से उद्धार पाठ करता है। सदाशिव आश्रित हो जाता है। इस प्रकार उसे मोक्ष जन्म मरण विमुक्त होकर कैवल्य प्राप्त होता है।

3.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
नमोस्तु	नमस्कार है
रूद्रेभ्यो	उन रूद्रों के लिये
ये पृथ्वियाँ	जो रूद्र पृथ्वीलोक में स्थित हैं
येषामन्नमिषवः	जिनके बाण अन्नरूप हैं
तेभ्यो दश	उन रूद्रों के लिये दसों
प्राचीर्दश	पूर्व दिशा की ओर
दक्षिणा,	अंगुलियाँ करता हूँ
तेभ्यो	उन के लिये
नमोऽअस्तु	उन रूद्रों के लिये
ते नोवन्तु	प्रणाम करता हूँ
ते नो मृडयन्तु	दसों अंगुलियाँ करता हूँ,
ते यन्द्विष्म्मो	वे हमें सुखी बनावें।
यश्च्च नो	हमलोग जिससे द्वेष करते हैं

3.6 -अभ्यासार्थ प्रश्न -उत्तर

1-प्रश्न- जौ, गेहूँ, चावल इन तीनों का आटा समान भाग लेकर इसका निर्माण किया जाता है। इसकी पूजा किसकी प्राप्ति के लिए करनी चाहिए?

उत्तर- जौ, गेहूँ, चावल इन तीनों का आटा समान भाग लेकर इसका निर्माण किया जाता है। इसकी पूजा सौन्द्रर्य, स्वास्थ्य और पुत्र-प्राप्ति के लिए करनी चाहिए।

2-प्रश्न-तिलो को पीसने के बाद उसका लिंग बनावे। इसका पूजन से किसकी पूर्ति हेतु किया जाता है?

उत्तर- तिलो को पीसने के बाद उसका लिंग बनावे। इसका पूजन सभी प्रकार की इच्छापूर्ति हेतु किया जाता है।

3-प्रश्न-रुद्राष्टाध्यायी का पंचम अध्याय किस नाम से जाना जाता है।

उत्तर-रुद्राष्टाध्यायी का पंचम अध्याय शतरूद्रिय नाम से माना जाता है।

4-प्रश्न-रुद्राष्टाध्यायी के पंचम अध्याय में कितने मन्त्र है?

उत्तर-रुद्राष्टाध्यायी के पंचम अध्याय में छाछठ मन्त्र है?

5-प्रश्न-शतरूद्रिय पाठ किसके तुल्य माना जाता है।

उत्तर-शतरूद्रिय पाठ समस्त वेदों के पारायण के तुल्य माना जाता है।

3.7-सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1-पुस्तक का नाम-रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2-पुस्तक का नाम-सर्वदेव पूजापद्धति

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

3 धर्मशास्त्र का इतिहास

लेखक - डॉ. पाण्डुरङ्ग वामन काणे

प्रकाशक:- उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान।

4 नित्यकर्म पूजा प्रकाश,

लेखक:- पं. बिहारी लाल मिश्र,

प्रकाशक:- गीताप्रेस, गोरखपुर।

5 अमृतवर्षा, नित्यकर्म, प्रभुसेवा

संकलन ग्रन्थ

प्रकाशक:- मल्होत्रा प्रकाशन, दिल्ली।

6 कर्मठगुरुः

लेखक - मुकुन्द वल्लभ ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

7 हवनात्मक दुर्गासप्तशती

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर।

8 शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टध्यायी

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - अखिल भारतीय प्राच्य ज्योतिष शोध संस्थान, जयपुर।

9 विवाह संस्कार

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - हंसा प्रकाशन, जयपुर

3.8-उपयोगी पुस्तकें

1-पुस्तक का नाम- रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- नमोस्तु रूद्र्द्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषाँव्वातऽइषवः।

तेभ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः।

तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो

द्वेष्ट्टि तमेषांजम्भे दद्ध्मः। इस मन्त्र का हिन्दी में व्याख्या कीजिये।

इकाई - 4 शिव संकल्प सूक्त

इकाई की रुप रेखा

4.1-प्रस्तावना

4.2-उद्देश्य

4.3 शिव संकल्प सूक्त

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 अभ्यासार्थ प्रश्न उतर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 उपयोगी पुस्तके

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना:-

कर्मकाण्ड से सम्बन्धित यह खण्ड एक की चौथी इकाई है इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि शिवसंकल्प सूक्त की उत्पति किस प्रकार से हुई है? शिवसंकल्प सूक्त की उत्पति अनादि काल से हुई है। तथा इन्हीं सूक्तों के माध्यम से आज सनातन धर्म की रक्षा हो रही है। इस देश मे जितने प्रकार के उपवास व्रत पूजन अथवा होम-नियम प्रचलित है उनमे शिवरात्रि-व्रत के समान अन्य किसी का प्रचार नही देखा जाता। इस विशाल भारत में स्त्री-पुरूष, बाल-वृद्ध ,प्रौढ - युवा प्रायः किसी न किसी रूप मे इसके अनुष्ठान मे रत देख जाते है। बहुत से लोग पूजा आदि न करते हुए भी उपवास कर लेते है। जिनकी उपवास मे रूचि नही होती ,वे रात्रि - जागरण करके ही इस व्रत का पुण्य प्राप्त करते है।

4.2 उद्देश्य:-

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप वेदशास्त्र से वर्णित शिवसंकल्प सूक्त का अध्ययन करेंगे।

1. शिव के विभिन्न वैशिष्ट्यो का ज्ञान करा सकेगे।
2. साम्ब सदाशिव की आराधना से चतुर्वर्ग फलाप्ति का अमोघ वैदिक उपाय है। इसका ज्ञान करा सकेगे।
3. शिव और रूद्र ब्रह्म के ही पर्यायवाची शब्द है। इसका ज्ञान करा सकेगे।
4. संक्षिप्त अभिषेक विधि को बता सकेगें।
5. इस इकाई के माध्यम से यजुर्वेद के वैशिस्ट्य को समझा सकेगें।

4.3 शिवसंकल्पसूक्त:-

मनुष्य के शरीर मे सभी कुछ महत्वपूर्ण है। हाथ की छोटी से छोटी अगुंली भी अपना महत्व रखती है , परन्तु मन का महत्व सर्वाधिक है। इसमे विलक्षण शक्ति निहित है। मनुष्य के सुख-दुःख तथा बन्धन और मोक्ष मन के ही अधीन है। संसार में ऐसा कोई स्थल नही जो मन के लिए अगम्य हो, मन सर्वत्र जा सकता है, एक पल मे जा सकता है। चक्षुरादि इन्द्रियाँ जहाँ नही पहुँच सकती , जिसे नही देख सकती , मन वहाँ जा सकता है , उसे ग्रहण कर सकता है। जिस आत्म ज्ञान से शोकसागर को पार कर नित्य निरतिशय सुख का अनुभव किया जा सकता है , वह मन के ही अधीन है। मन ही आत्म आक्षात्कार के लिए नेत्रवत् है। श्रुति भी कहती है -'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' संसार मे हम जो भी उत्कर्ष प्राप्त करते है, उनकी मुख्य हेतु है -हमारी स्वस्थ और सक्षम ज्ञानेन्द्रियाँ। कानो से सुनायी न देता हो, आँखो से दिखायी न देता हो तो कोई कितना भी कुशाग्रबुद्धि क्यो न हो , कैसे विद्या प्राप्त करेगा ? विज्ञान एवं कला के मे कैसे व क्या वैशिष्ट्य सम्पादन करेगा ? अर्थोपार्जन भी

कैसे करेगा ? ऐसा व्यक्ति तो संसार मे दीन-हीन रहेगा। अपनी जीवनयात्रा के लिए भी वह दूसरो पर आधारित होकर भारभूत ही होगा। अतः इस सत्य से कोई इन्कार नही कर सकता कि हमारे उत्कर्ष प्रथम एवं महत्वपूर्ण साधन है - हमारी स्वस्थ और सक्षम ज्ञानेन्द्रियाँ। परन्तु यह नही भूलना चाहिए कि इन्द्रियो का प्रवर्तक है मन । यदि मन असहयोग कर दे तो स्वस्थ तथा सक्षम इन्द्रियाँ भी अपने विषय को ग्रहण करने मे समर्थ नही रह जायेगी। जब इन्द्रियो का प्रवर्तन-निवर्तन मन पर आधारित है और स्पष्ट हो जाता है कि हमारा अभ्युदय की प्राप्ति सम्यक् कर्म सम्पादन पर आधारित है , तब यह आपने आप स्पष्ट हो जाता है कि हमारा अभ्युदय मन के शुभ संकल्प युक्त होने पर निर्भर है इसीलिए मन्त्रद्रष्टा ऋषि इस शिवसंकल्प सूक्त के माध्यम से प्रार्थना करते है।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति देवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेक तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (शुक्लयजुर्वेद, 34/1)

मेरा वह मन धर्मविषयक सकंल्पवाला (शिवसंकल्प) हो , मन में कभी पापभाव न हो , जाग्रदवस्था में देखे-सुने दूर से दूर स्थल तक दौड़ है-(दूरमुदैति) और सुषुप्तावस्था में पुनः अपने स्थान पर लग जाता है। जो ज्योतिः स्वरूप (देव) आत्मा को ग्रहण करने का एकमात्र साधन है (दूर मम्) , दूरगामी तथा विषयों को प्रकाशित करने वाली इन्द्रियों-ज्योतियों-का एकपात्र प्रकाशक (ज्योतिरेकं) अर्थात् प्रवर्तक हैं। वह मेरा मन शुभ सकल्पों वाला हो।

मन के ही निर्मल , उत्साहयुक्त और श्रद्धावान् होने पर बुद्धिमान् यज्ञ-विधि-विधानज्ञ कर्मपरायणजन यज्ञों की सब क्रियाओ को सम्पन्न करते है । मेधावी पुरूष बुद्धि के सम्यक् प्रयोग से वेदादि सच्छास्त्रो का प्रामाण्य समझ सकते है । न्याय और मीमांसा आदि दर्शनशास्त्रो की प्रक्रिया का गूढ़ अनुशीलन कर अप्रामाण्य की सब शंकाओ को दूर कर अपने हृदय में दृढतापूर्वक यह निश्चय कर सकते है। वेदादि - शास्त्र अपने विषय मे (धर्म और ब्रह्म के विषय में) निर्विवाद प्रमाण है। अकोसहित वेदो का अध्ययन करके विविध फलों का सम्पादन करने वाले के विधि-विधान और अनुष्ठान की सम्पूर्ण तभी हो सकता है, जब मन निर्मल ,श्रद्धोपेत तथा उत्साहयुक्त हो । वैदिक क्रियाओ कालप मन की अनुकूलता पर निर्भर है। हम एक-आध बार भले ही मन की उपेक्षा कर दें , परन्तु हम सदा ऐसा नही कर सकते हैं, मन को सदा खिन्न रखकर हम अपना जीवन भी नही चला सकते हैं, मन को भगवान स्वयं अपनी 'विभूति' बतलाते है-'इन्द्रियाणां मनश्रचास्मि' (गीता, 10/12) -' इन्द्रियो मे मैं मन हूँ।' अतः मन पूज्य है। हमे उसकी पूजा करनी ही पडेगी, उसका रूख देखना ही पडेगा इसलिए ऋषि दूसरी ऋचा में प्रार्थना करते है-

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्षमन्त प्रजानां तन्मे मनः शिवसकंल्पमस्तु।।

जिस मन के स्वस्थ और निर्मल होने पर मेधावी पुरूष (मनीषिणः) यज्ञ में कार्य करते है- (कर्माणि कृण्वन्ति), मेधावी जो कर्मपरायण है (अपसः) तथा यज्ञसम्बन्धी विधि-विधान (विदथेषु) मे बड़े दक्ष (धीराः) है तथा जो मन संकल्प विकल्पों से रहित हुआ साक्षात् आत्मरूप ही है। 'यदपूर्वं' इत्यादि श्रुति इन लक्षणों से आत्म का ही लक्ष्य कराती है और पूज्य (यक्षम्) है, जो प्राणियो के शरीर के अन्दर ही स्थित है (अन्तः प्रजानाम्), वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

प्रत्यक्षादि प्रमाणो के माध्यम से उत्पन्न होने वाली ज्ञानवस्तु मन के द्वारा ही उत्पन्न होता है। सामान्य तथा विशेष दोनो प्रकार के ज्ञानों का जनक मन ही है। क्षुधा और पिपासा इत्यादि की पीडा से मन जब अत्यन्त व्यथित हो जाता है , तब बुद्धि मे कुछ भी ज्ञान स्फुरित नही हो पाता। ज्ञान ही मनुष्य की विशेषता है। ज्ञान के बल से ही वह मर्त्यलोक के अन्य जीवों से श्रेष्ठ बना , उनका सिरमौर बना। ज्ञान की वृद्धि करके उसने अतुल सुख और सम्पत्ति प्राप्त की। ज्ञान के ही द्वारा उसने पशुओ की अपेक्षा अपने जीवन को मधुर बनाया। मोक्ष भी आत्मज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है । उस ज्ञान का जनक यह मन ही है।

हमारी जीवनयात्रा निष्कण्टक नहीं। अनेक विघ्न-बाधायं े इसमे उपस्थित होती है । अभ्युदय और उत्कर्ष का कोई मार्ग अपनाओ , वह निरापद नहीं होगा। कठिनाइयाँ और क्लेश हमारे सामने आयेगे ही । यदि हम उन कठिनाईयो को जीतने में समर्थ नही तो मार्गपर आगे प्रगति नही कर सकते है। यदि प्रगति अभीष्ट है तो कठिनाईयो से सघर्ष करके उन पर विजय प्राप्त करना होगा। । इसके लिए धैर्य चाहिए । थोडी-थोडी कठिनाईयों में अधीर हो जाने वाले व्यक्ति तो कोई भी उद्यम नही कर सकते। कार्य उद्यम करने से सिद्ध होते है , मनोरथमात्र से नहीं। अतः सफलतारूप प्रसाद का एक मुख्य स्तम्भ धैर्य है। धैर्य मन मे ही अभिव्यक्त होता है , अतः धैर्य का उत्पादक होने से जल को जीवन कहने की भाँति मन को ही धैर्य मन में ही अभिव्यक्त होता है, अतः धैर्य का उत्पादक होने से जल को जीवन कहने की भाँति मन को ही धैर्यरूप कहा गया है। मन के बिना कोई भी लौकिक-वैदिक कर्म सम्पादित नहीं किया जा सकता है। अतः तीसरी ऋचा से ऋषि कामना करते है-

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।

(शुक्लयजुर्वेद,34/3)

जो मन प्रज्ञान अर्थात् विशेषरूप से ज्ञान उत्पन्न करने वाला है तथा पदार्थो को प्रकाशित करने वाला (चेतः) सामान्य ज्ञानजनक है जो धैर्यरूप है, सभी प्राणियो में (प्रजासु) स्थित होकर अन्तज्योर्ति अर्थात् इन्द्रियादि को अथवा आभ्यन्तर पदार्थो को प्रकाशित करने वाला है एवं जिसकी सहायता और अनुकूलता के बिना कोई कार्य सम्पन्न नही हो सकता , मेरा वह मन शुभसंकल्प वाला हो ।

चक्षुरादि इन्द्रियाँ केवल उन पदार्थो को ग्रहण कर सकती है , जिनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध

हो , पर उन अप्रत्यक्ष पदार्थो को भी ग्रहण करने मे समर्थ है। चतुर्थ ऋचा से ऋषि यही भाव व्यक्त करते है-

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। - (शुक्लयजुर्वेद, 34/4)

जिस मन के द्वारा यह सब भलीप्रकार जाना जाता है ,ग्रहण किया जाता है (परिगृहीतम्) , भूत , भविष्यत् और वर्तमान सम्बन्धी सभी बातो को परिज्ञान होता है (भूतं भुवनं भविष्यत्) जो मन शाश्रवत है- संकल्प- विकल्प से रहित हुआ आत्मरूप (अमृतेन) ही है जिस श्रद्धायुक्त और स्वस्थ मन से सप्त होताओ वाला (अग्निष्टोम यज्ञ में सप्त होता है।) किया जाता है (तायते), वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

हमारा जितना भी ज्ञान है , वह सब शब्द-राशि में ओतप्रोत है। शब्दानुगम से रहित लोक मे कोई भी ज्ञान उपलब्ध नहीं होता । जैसे आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर मे होती है , वैसे ही ज्ञान की अभिव्यक्ति शब्दरूप कलेवर मे ही होती है। वे शब्द मन में ही प्रतिष्ठित होते है । मन के स्वस्थ होने पर उनकी स्फूर्ति होगी और मन के व्यग्र होने पर वे स्फुरित नहीं होगें । छन्दोग्योपनिषद् मे कहा गया है - ‘ अन्नमयं हि सोम्य मनः ‘ - ‘ हे सोम्य ! मन अन्नमय है। ‘ इस सत्य का अनुभव कराने के लिए शिष्य को कुछ दिनों तक भोजन नही दिया गया। भोजन न मिलने से जब वह बहुत कृश हो गया , तब उसे पढे हुए वेद को सुनाने के लिए कहा गया । वह बोला कि ‘ इस समय वह पढ हुआ कुछ भी मन में स्फुरित नही हो रहा है ।‘ अनन्तर उसे भोजन कराया गया है । भोजन से तृप्त होने पर उसके मन में वह पढा हुआ वेद स्फुरित हो गया । इस अन्वय और व्यातिरेक से यह भी सिद्ध होता है कि ज्ञान की प्रतिष्ठा तथा स्फुर्ति मन मे ही होती है। यदि मन प्रसन्न है तो ज्ञान-सम्पादन और विचार-विमर्श सफल होगें। यदि वह व्यग्र एवं अधीर हो रहा है तो कोई भी कार्य सफल न होगा। अतः मन का निर्मल और प्रसन्न होना सबसे अधिक महत्व का है इसलिए पाँचवी ऋचा में ऋषि प्रार्थना करते है-

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।

यस्मिँश्चित्त सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। - (शुक्लयजुर्वेद , 34/5)

जिस मन मे ऋक्, यजुः और सामरूप वेदत्रयी ठीक उसी प्रकार प्रतिष्ठित है , जैसे रथचक्र नाभि मे चक्के-अरे, जिस मन मे प्राणियो का लोक विषयकज्ञान (चित्तम्) पट में तन्तु की भाँति ओतप्रोत है , वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो।

बुद्धिमान् सब जानते हैं कि मन ही मनुष्य को सब जगह भटकाता रहता है। यही आग्रह करके उन्हें किसी मार्ग में प्रवृत्त करता है अथवा उससे निवृत्त करता है। नयन और नियमन मन के ही अधीन हैं। यदि मन पवित्र संकल्प वाला होगा तो उत्तम स्थान पर लेजायेगा और सत्-प्रवृत्तियों से इसका नियमन करेगा। यदि मन पाप संकल्पों से आक्रान्त होगा तो मनुष्य को बुरे मार्ग में लगाकर उसके विनाश दुर्गति का कारण बन जाएगा। छटी ऋचा में ऋषि ने यही बात कहकर मन के पवित्र

होने की प्रार्थना की है।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनव इव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।- (शुक्लजयुर्वेद, 34/6)

जैसे कुशल सारथि (सुषारथिः) चाबुक हाथ में लेकर (अश्वान्) घोडों को जिधर चाहता है, ले जाता है (नेनीयते), वैसे ही जो मन मनुष्यों को (मनुष्यान्) जिधर चाहता है, ले जाता है तथा जिस प्रकार सुसारथि बागडोर हाथ में लेकर (अभीशुभिः) घोड़ों का अपने मनचाहे स्थान पर ले जाता है (वाजिनः नेनीयते), वैसे ही जो मन मनुष्य को ले जाता हैं, जो प्राणियों के हृदय में प्रतिष्ठित है (हृत्प्रतिष्ठम्), शरीर के वृद्ध होने पर भी जो वृद्ध नहीं होता, जो अत्यन्त वेगवान् है (जविष्ठम्), मेरा वह मन शुभसंकल्पवाला हो।

दो दृष्टान्त देकर बतलाया कि 'मन शरीर का नयन और नियमन दोनों करता है। शरीर के शिथिल होने पर भी मन का वेग कम नहीं होता। अत्यन्त वेगवान् होने से जल्दी वश में नहीं आता है।' बिगड़ उठे तो बलवान् होने से व्यक्ति बुरी तरह झकझारे देता है। यदि मन शुद्ध और पवित्र बन जाये तो हमारे जीवन की धारा बदल जाएगी और हमारी समस्त शक्तियाँ मंगलमय कार्यों में ही लगेगी।

4.4-सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके है कि समस्त वेदादि शास्त्रों में शिवसंकल्प सूक्त मानव के लिये परम धर्म और परम कर्त्तव्य कहा है। साम्ब सदाशिव की आराधना से चतुर्वर्ग फलाप्ति का अमोघ वैदिक उपाय है ''रूद्राभिषेक''। शिव और रूद्र ब्रह्म के ही पर्यायवाची शब्द है। 'वेदः शिवः शिवो वेदः' वेद शिव है और शिव ही वेद है अर्थात् शिव वेदस्वरूप है। ' वेदो नारायणः साक्षात् ' भी कहा गया है । वास्तव मे श्रीमद्भागवतोक्त वचनानुसार '' परः पुरूष एक एवास्य धत्ते स्थित्यादये हरिविरचिहरेति संज्ञाम्'' यही सनातन धर्म का संस्थापित सिद्धान्त है। आशुतोष शिव की अर्चना सर्वदेवार्चनमयी है । '' सर्वदेवात्मको रूद्रः सर्वे देवाः शिवात्मकाः '' तथा '' ब्रह्मविष्णुमयो रूद्र अग्नि सोमात्मकं जगत्'' आदि से यही सिद्ध होता है।

शिवसंकल्प सूक्त में कहा गया है कि इसका पाठ करने सुख की प्राप्ति होती है तथा दुःख और शोक दूर हो जाता है। इससे धन-धान्य में वृद्धि होती है तथा सौभाग्य व संतान की प्राप्ति होती है। प्राणी को चारों दिशाओं में विजयश्री दिलाने वाले इस पाठ को व्यक्ति किसी भी दिन पूर्ण श्रद्धा व भक्ति से कर सकता है।

जिस भाँति ,दुग्ध से नवनीत निकाल लिया जाता है,उसी भाँति मानव कल्याणार्थ शुक्लयजुर्वेद से रूद्राष्टध्यायी का संग्रह किया गया है। इस मन्त्रो मे गृहस्थ - धर्म ,राजधर्म, ज्ञान- वैराग्य, ईश्वर -स्तवन

आदि विषयो का वर्णन किया गया है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
यस्मिन्नृचः	जिस मन मे ऋक्,
सम	सामरूप
यजूषि	यजुः
यस्मिन्	ठीक उसी प्रकार
प्रतिष्ठिता	प्रतिष्ठित है
रथनाभाविवाराः	रथचक्र नाभि मे
यस्मिँश्चित्त	जिस मन मे प्राणियो का लोक विषयकज्ञान
सर्वमोतं	तन्तु की भाँति ओतप्रोत है ,
प्रजानां	प्रजाओं का
तन्मे मनः	वह मेरा मन
शिवसंकल्पमस्तु	शुभसंकल्प वाला हो।
सुषारथिः	कुशल सारथि
अश्वान्	घोडों को जिधर चाहता है,
नेनीयते	लेकर ले जाता है
मनुष्यान्	मनुष्यों को
अभीशुभिः	घोड़ों का अपने मनचाहे स्थान पर ले जाता है
वाजिनः नेनीयते	मनुष्य को ले जाता हैं,

4.6 -अभ्यासार्थ प्रश्न -उत्तर

1-प्रश्न-मनुष्य के शरीर मे सभी अंग क्या है?

उत्तर- मनुष्य के शरीर मे सभी अंग महत्वपूर्ण है।

2-प्रश्न- मनुष्य के सुख-दुःख तथा बन्धन और मोक्ष किसके अधीन है ?

उत्तर- मनुष्य के सुख-दुःख तथा बन्धन और मोक्ष मन के ही अधीन है।

3-प्रश्न- मन आत्म आक्षात्कार के लिए क्या है?

उत्तर- मन आत्म आक्षात्कार के लिए नेत्रवत् है।

4-प्रश्न- शिव और रूद्र ब्रह्म के क्या है?

उत्तर- शिव और रूद्र ब्रह्म के ही पर्यायवाची शब्द है।

5-प्रश्न-मानव कल्याणार्थ शुक्लयजुर्वेद से किसका संग्रह किया गया है?

उत्तर- मानव कल्याणार्थ शुक्लयजुर्वेद से रूद्राष्टध्यायी का संग्रह किया गया है।

4.7-सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1-पुस्तक का नाम-रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

2-पुस्तक का नाम-सर्वदेव पूजापद्धति

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाषन वाराणसी

3 धर्मशास्त्र का इतिहास

लेखक - डॉ. पाण्डुरङ्ग वामन काणे

प्रकाशक:- उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान।

4 नित्यकर्म पूजा प्रकाश,

लेखक:- पं. बिहारी लाल मिश्र,

प्रकाशक:- गीताप्रेस, गोरखपुर।

5 अमृतवर्षा, नित्यकर्म, प्रभुसेवा

संकलन ग्रन्थ

प्रकाशक:- मल्होत्रा प्रकाशन, दिल्ली।

6 कर्मठगुरुः

लेखक - मुकुन्द वल्लभ ज्योतिषाचार्य

प्रकाशक - मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

7 हवनात्मक दुर्गासप्तशती

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर।

8 शुक्लयजुर्वेदीय रुद्राष्टध्यायी

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - अखिल भारतीय प्राच्य ज्योतिष शोध संस्थान, जयपुर।

9 विवाह संस्कार

सम्पादक - डॉ. रवि शर्मा

प्रकाशक - हंसा प्रकाशन, जयपुर

4.8-उपयोगी पुस्तकें

1-पुस्तक का नाम- रुद्रष्टाध्यायी

लेखक का नाम- शिवदत्त मिश्र

प्रकाशक का नाम- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1- सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। इस मन्त्र का हिन्दी में व्याख्या कीजिये।

खण्ड – 2

स्तोत्र पाठ

इकाई – 1 आदित्य हृदय स्तोत्र

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आदित्य हृदय स्तोत्र का परिचय एवं महत्व

1.4 मुख्य स्तोत्र पाठ : आदित्य हृदय स्तोत्र

1.5 आदित्यस्वरूप

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व की अनुष्ठान या पूजन विधियों से आप अच्छी तरह अवगत हो गये हैं, यह हमें विश्वास है। इन्हीं विधियों से सम्बद्ध यह स्तोत्र पाठ विधि भी है। क्योंकि प्रत्येक पूजन के अन्त में तत्सम्बद्ध देवता की स्तुति अवश्य की जाती है। यह शास्त्रीय मान्यता है।

प्रस्तुत इस इकाई में प्रसिद्ध ''आदित्यहृदयस्तोत्र'' के विषय में आपको जानकारी दी जायेगी। इसके साथ ही इस स्तोत्र का अर्थ एवं न्यासादि-विधि का भी ज्ञान आपको कराया जायेगा।

1.2 उद्देश्य

वैसे तो यह स्तोत्र सभी लोगों के लिए है। परन्तु विशेष रूप से जो आरोग्य सुख प्राप्त करना चाहते हैं, अर्थात् जिन्हें शारीरिक या मानसिक कोई भी रोग हो तो इस स्तोत्र के पाठ से वे अपने रोग को सदा के लिए नष्ट कर सकते हैं। ऐसी शास्त्रीय मान्यता है। इसके पाठ से पुराना से पुराना कुष्ठरोग भी निश्चित ही दूर हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि जिस किसी की कुंडली में सूर्यग्रह प्रतिकूल हों उन्हें भी इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। उन्हें भी लाभ प्राप्त होता है। न केवल आरोग्य ही अपितु इस स्तोत्र के पाठ से सभी जगह विजय भी प्राप्त हो जाता है। क्योंकि इसके फलश्रुति में लिखा है - ''सर्वत्र विजय-प्रदम्''। इसमें भगवान् आदित्य (सूर्य) की प्रार्थना की गई है। इससे सम्बद्ध विशेष विवरण आपको आगे बताया जायेगा।

इस स्तोत्र के पाठ से आप भी स्वस्थ रहेंगे एवं आपका परिवार भी। साथ ही जिसके लिए आप इसका पाठ करेंगे वह भी स्वस्थ हो जायेगा। अतः यह आरोग्य प्रदान करने वाला प्रसिद्ध स्तोत्र है। शास्त्रों में भी कहा गया है कि ''आरोग्यं भास्करादिच्छेत् धनमिच्छेद्धुताशनात्'' अर्थात् आरोग्य की कामना से सूर्य की उपासना एवं धन की कामना के लिए अग्नि की उपासना करनी चाहिए।

1.3 आदित्य हृदय स्तोत्र का परिचय एवं महत्त्व

यह स्तोत्र श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण के युद्धकाण्ड के 105वें सर्ग से लिया गया है। जब भगवान् श्रीराम के साथ रावण का युद्ध हो रहा था तब विविध अस्त्र शस्त्रों के प्रयोग करने पर भी जब रावण की मृत्यु नहीं हो पा रही थी, तब श्रीराम जी को कुछ चिन्ता होने लगी। उसी समय भगवत्कृपा से अगस्त्य ऋषि का आगमन हुआ तथा वे श्रीराम जी को चिन्तातुर देखकर इस आदित्य-हृदय-स्तोत्र का उपदेश किये जिसके प्रभाव से सूर्य के प्रसन्न होने पर भगवान् श्रीराम रावण को मारकर विजय को प्राप्त किये। इसमें कुल 31 श्लोक हैं।

एक जिज्ञासा यहाँ स्वाभाविक होती है कि देवताओं का स्तोत्र या स्तुति से क्या सम्बन्ध हैं? हम स्तोत्र पाठ आदि क्यों करते हैं? तथा इससे लाभ क्या होता है? क्या स्तोत्र पाठ से देवता प्रसन्न होते हैं? इत्यादि।

इन प्रश्नों के समाधान में आप भी कुछ न कुछ अवश्य ही जानते हैं, फिर भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ शास्त्रीय विचार आपके सामने रखे जा रहे हैं। यदि रुचिकर लगे तो लेखक का प्रयास सार्थक होगा।

देखिये! सामान्यतः देवता की परिभाषा - जो दान देने वाला है, प्रकाशरूप (तेजोमय) एवं द्युलोक (स्वर्ग) में निवास करने वाला है उसे ही देवता कहते हैं। निरुक्तशास्त्र के अनुसार वैदिक देवता 33 होते हैं, जिनमें 11 पृथिवीस्थानीय, 11 अन्तरिक्षस्थानीय एवं 11 द्युस्थानीय देवता है। इन्हीं वैदिक देवताओं का विकास पुराणों में शिव, विष्णु आदि के रूप में हुआ है। मुख्यरूप से वैदिक देवता 33 ही होते हैं। जैसा कि निरुक्तग्रन्थ में लिखा है ''देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा''। मनुष्य का सम्बन्ध देवताओं से सनातन से है क्योंकि सृष्टि के समय ब्रह्मा जी ने स्पष्ट रूप से मनुष्यों को कहा कि तुम यज्ञ में प्रदत्त हवि एवं स्तुति आदि के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करो, देवता प्रसन्न होकर तुम्हारे सभी मनोरथों को पूर्ण करेंगे। इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को सुखी सम्पन्न बनाते हुए परम कल्याण को प्राप्त करो। जैसा कि गीता में लिखा है-

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।

इसीलिए मनुष्य अन्यान्य लौकिक आश्रयों को छोड़कर देवता की शरण में जाता है। साक्षात् श्रुति भी इसी बात का समर्थन करते हुए कहती है-

देहि मे ददामि ते निमेधे हि नितेदधे।

इस मन्त्र में इन्द्र मनुष्यों से कहते हैं कि हे मनुष्यों! तुम सर्वप्रथम मुझे हवि प्रदान करो, फिर मैं तुम्हारे सभी मनोरथों को पूर्ण कर दूँगा। इसमें सर्वप्रथम मनुष्य ही देवताओं को यज्ञ या स्तुति आदि से प्रसन्न करता है। इसके बाद प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर देवता उसके सारे अभिमत फल को प्रदान करते हैं।

एक बात और भी यहाँ ध्यान देने की है - सामान्यतया लोकव्यवहार में देवता दो प्रकार के होते हैं। (क) वैदिक देवता एवं (ख) पौराणिक देवता। सामान्य रूप से तो विचार करने पर वैदिक देवताओं का विकास ही पौराणिक देवता है। जैसे - वैदिक देवता रुद्र है जिन्हें पुराणादि में शिव, महेश्वर आदि नामों से कहा गया है। फिर भी इतना अन्तर अवश्य है कि वैदिक देवताओं के लिए त्रेता आदि युगों में नाना प्रकार के श्रौतानुष्ठानों से यागों में हवि प्रदान करके उन्हें प्रत्यक्षरूप से सन्तुष्ट किया जाता था, परन्तु युगानुसार आज पौराणिक देवताओं को उनकी स्तुति प्रार्थना आदि करके ही उन्हें प्रसन्न किया जाता है क्योंकि द्रव्यादि के शुचिता का अभाव सर्वत्र है। इस प्रकारं उनसे अभिलषित पदार्थों की कामना की जाती है। देवता भी प्रसन्न होकर भक्त की इच्छा को पूर्ण करते हैं। इस प्रकार मनुष्य के फल प्राप्ति का साधन स्तुति या स्तोत्र है। जो देवताओं की प्रसन्नता द्वारा प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष रूप से हमारे यहाँ पुराणों में वर्णित स्तुति या स्तोत्र आदि विपुल मात्रा में अत्यन्त

प्रसिद्ध है। जिनके आधार ग्रन्थ हमारे पुराण है। इनमें तो प्रायः हवि आदि देने का वैदिक विधान प्राप्त नहीं है, केवल स्तोत्र या स्तुति पाठ से ही उनकी प्रसन्नता स्वयं हो जाती है। हविः प्रदान तो चरु पुरोडाश आदि के रूप में दिया जाता है जो अत्यन्त श्रमसाध्य है। परन्तु आज श्रुतियोगों का सर्वथा अभाव दिखाई देता है।

बात यह है कि अन्य युगों में मन्त्रों से आवाहन करने पर देवता स्वयं उपस्थित होकर अपनी हवि ग्रहण करते थे। परन्तु अब तो देवताओं का प्रत्यक्ष होना संभव नहीं है। अतः हम उन्हें स्तुति आदि से ही प्रसन्न करते हैं।

इन देवताओं के स्वभाव एवं प्रसन्नता के साधन की चर्चा करते हुए आचार्य यास्क कहते हैं कि कुछ देवता हविप्रिय होते हैं, कुछ स्तुतिप्रिय होते हैं एवं कुछ हवि एवं स्तुति दोनों की अभिलाषा रखते हैं।

एषु केचन स्तुतिभाजः, केचन हविर्भाजः केचन च उभयप्रिया भवन्ति।

अतः मनुष्यों को देवताओं के स्वभाववश अपनी अपनी कामना के अनुसार उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए एवं उनकी प्रसन्नता से अभिलषित फल पुरुष को प्राप्त करना चाहिए।

इस प्रकार दानशील स्वभाव होने के कारण देवता हमारे स्तुतियों से प्रसन्न होते हैं एवं हमें अभिलषित फल प्रदान करते हैं। यही परस्पर में आदान-प्रदान का क्रम स्तुति के माध्यम से होता है। अच्छे मनुष्य का एक स्वभाव है कि अपने सामर्थ्य पर विश्वास करता है और उसे अपने प्रयास से पाने की चेष्टा भी करता है, परन्तु जहाँ अपना सामर्थ्य (शक्ति) काम नहीं आता तब वह देवताओं की शरण में जाता है एवं श्रद्धा विश्वास पूर्वक देवाराधन से फल को प्राप्त करता है।

हाँ एक बात अवश्य ध्यान देना चाहिए कि स्तुति पाठ में श्रद्धा एवं विश्वास दोनों का होना नितान्त आवश्यक है। इसके बिना कार्य सफल नही होता है। आराधना जितना ही सात्विक भाव से की जायेगी उसके अनुसार ही फल की प्राप्ति होगी। कदाचित् फलप्राप्ति में समय (देर) भी लग सकता है, परन्तु फलप्राप्ति अवश्य ही होती है, क्योंकि श्रौतसूत्रकार कहते हैं - ''फलयुक्तानि कर्माणि'' अर्थात् संसार में ऐसा कोई भी कर्म नहीं है जिसका फल न हो। अतः पाप कर्म हो या पुण्य कर्म दोनों का फल अवश्य ही मिलता है और यह भी ध्यान रखें। कर्म का फल मनुष्य को अवश्य ही भोगना पड़ता है। चाहे वह पाप हो या पुण्य हो। जैसा कि-

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।।

एक बात और मन में आ रही है कि, अपने उत्कर्ष की कामना मनुष्य योनि में ही रहती है, अन्य योनियों में नहीं। क्योंकि ''ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत्'' इस वाक्य में स्वर्ग की कामना वाला मनुष्य ज्योतिष्टोम याग करे, यह कहा गया है। इससे यह बात सामने आती है कि मनुष्य को ही स्वर्ग की अभिलाषा या कामना हो सकती है पशुओं को नहीं। क्योंकि मनुष्य ही पूर्ण रूप से तत्तत्कर्मों का

अनुष्ठान अच्छी तरह से कर सकता है जिससे उसे फलप्राप्ति हो सकती है। एक वाक्य में यदि कहा जाय तो मनुष्य का उत्कर्ष (प्रमोशन) ही देवता भाव है, एवं पतन (डिमोशन) ही दानव भाव है। अब जिसको जहाँ जाना हो या जो चुनना हो वह समर्थ एवं स्वतन्त्र है। अर्थात् हमें दानव बनना है या देवता, निर्णय हमारे हाथ में है। अस्तु।

इसी देवभाव या देवतारूप की प्राप्ति के लिए लौकिक एवं पारलौकिक फल की कामना मनुष्य करता है जो देवताओं की स्तुति से प्राप्त होती है। यही देवताओं का स्तुति या स्तोत्र से मुख्य सम्बन्ध है।

स्तुति, स्तोत्र, स्तवन आदि शब्द अपर पर्याय रूप हैं। उनके अर्थ में कोई भेद नहीं है। अतः श्रद्धा एवं विश्वास के साथ स्तुति पाठ करने से हमारी मनोकामनायें पूर्ण होती है।

निष्कर्ष रूप से यदि कहा जाय तो यही स्तुतिपाठ का महत्त्व एवं देवताओं का मनुष्य से शाश्वत-सम्बन्ध सामान्यतया है। अस्तु।

अब आपके सामने आदित्य-हृदय-स्तोत्र पाठ की विधि, श्लोक एवं उनके अर्थ भी नीचे दिये जा रहे हैं।

देखिये! शास्त्रीय विधि से हीनकर्म फलप्रद नहीं होते हैं क्योंकि गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।

अतः शास्त्र विधि का भी होना नितान्त आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि संस्कृत के श्लोक कुछ कठिन तो अवश्य ही होते हैं, जिनके उच्चारण बिना गुरु के संभव नहीं होता। उच्चारण के बाद उन श्लोकों का अर्थ करना और कठिन है। क्योंकि पाठक को अर्थपूर्वक पाठ करने से ही श्रद्धा की अभिवृद्धि देवता में आती है। अर्थ न जानने पर मात्र एक रोंटिंग वर्क होकर रह जाता है। अन्य कार्यो की तरह उसे भी करना है ऐसा सोचकर आदमी गलती सही कुछ भी पढने लगता है, जो ठीक नहीं होता है। अतः अर्थानुसन्धान पूर्वक श्रद्धा के साथ स्तोत्र का पाठ करना चाहिए इस दृष्टि से ही यहाँ प्रत्येक श्लोक के अन्त में उसका अर्थ दिया गया है। अस्तु।

1.4 मुख्यस्तोत्रपाठ

अथ आदित्यहृदयस्तोत्रम्

विनियोग

ॐ अस्य आदित्यहृदयस्तोत्रस्यागस्त्य ऋषिरनुष्टुप् छन्दः, आदित्यहृदयभूतो भगवान्ब्रह्मा देवता निरस्ताशेषविघ्नतया ब्रह्मविद्यासिद्धौ सर्वत्र जयसिद्धौ च विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ॐ अगस्त्यऋषये नमः, शिरसि। अनुष्टुप्छन्दसे नमः, मुखे। आदित्य-हृदयभूत-ब्रह्मदेवतायै नमः, हृदि। ॐ बीजाय नमः, गुह्ये। रश्मिमते शक्तये नमः, पादयोः। ॐ तत्सवितुरित्यादिगायत्रीकीलकाय नमः, नाभौ।

करन्यासः

इस स्तोत्र के अंगन्यास और करन्यास तीन प्रकार से किये जाते हैं। केवल प्रणव से, गायत्री मन्त्र से अथवा 'रश्मिमते नमः' इत्यादि छः नाम-मन्त्रों से। यहाँ नाम-मन्त्रों से किये जाने वाले न्यास का प्रकार बताया जाता है।

ॐ रश्मिमते अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ समुद्यते तर्जनीभ्यां नमः। ॐ देवासुरनमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ विवस्वते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भास्कराय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ भुवनेश्वराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि-अङ्गन्यास

ॐ रश्मिमते हृदयाय नमः। ॐ समुद्यते शिरसे स्वाहा। ॐ देवासुरनमस्कृताय शिखायै वषट्। ॐ विवस्वते कवचाय हुम्। ॐ भास्कराय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ भुवनेश्वराय अस्त्राय फट्।

इस प्रकार न्यास करके निम्नांकित मन्त्र से भगवान सूर्य का ध्यान एवं नमस्कार करना चाहिये-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

तत्पश्चात् 'आदित्य हृदय' स्तोत्र का पाठ करना चाहिए।

स्तोत्र

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम्।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्।।1।।
दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम्।
उपगम्याब्रवीद्रामगस्त्यो भगवांस्तदा।।2।।

उधर श्रीरामचन्द्र जी युद्ध से थककर चिन्ता करते हुए रण भूमि में खड़े थे। इतने में रावण भी युद्ध के लिये उनके सामने उपस्थित हो गया। यह देख भगवान अगस्त्य मुनि, जो देवताओं के साथ युद्ध देखने के लिये आये थे, श्रीराम के पास जाकर बोले।

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम्।
येन सर्वानरीन् वत्स! समरे विजयिष्यसे।।3।।
आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम्।
जयावहं जपं नित्यमक्षयं परमं शिवम्।।4।।
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ।।5।।

सबके हृदय में रमण करने वाले महाबाहो राम! यह सनातन गोपनीय स्तोत्र सुनो। वत्स! इसके जप से तुम युद्ध में अपने समस्त शत्रुओं पर विजय पा जाओगे। इस गोपनीय स्तोत्र का नाम है 'आदित्य हृदय'। यह परम पवित्र और सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश करने वाला है। इसके जपसे सदा विजय की प्राप्ति होती है। यह नित्य अक्षय और परम कल्याणमय स्तोत्र है। सम्पूर्ण मंगलों का भी मंगल है। इसमें सब पापों का नाश हो जाता है। यह चिन्ता और शोक को मिटाने तथा आयु को बढ़ाने वाला उत्तम साधन है।

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम्।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम्।।6।।
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः।
एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः।।7।।
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपाम्पतिः।।8।।
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः।।9।।
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान्।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः।।10।।
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान्।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोंऽशुमान्।।11।।
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः।।12।।
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुः सामपारगः।
घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथीप्लवङ्गमः।।13।।
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः।।14।।
नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन् नमोऽस्तु ते।।15।।

भगवान सूर्य अपनी अनन्त किरणों से सुशोभित (रश्मिमान्) हैं। ये नित्य उदय होने वाले (समुद्यन्), देवता और असुरों से नमस्कृत, विवस्वान् नाम से प्रसिद्ध प्रभा का विस्तार करने वाले (भास्कर) और संसार के स्वामी (भुवनेश्वर) हैं। तुम इनका (रश्मिमते नमः, समुद्यते नमः, देवासुरनमस्कृताय नमः, विवस्वते नमः, भास्कराय नमः, भुवनेश्वराय नमः-इन नाम मन्त्रों के द्वारा) पूजन करो। सम्पूर्ण देवता इन्हीं के स्वरूप हैं। ये तेज की राशि तथा अपनी किरणों से जगत् को सत्ता

एवं स्फूर्ति प्रदान करने वाले हैं। ये ही अपनी रश्मियों का प्रसार करके देवता और असुरों सहित सम्पूर्ण लोकों का पालन करते हैं। ये ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, स्कन्द, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर, काल, यम, चन्द्रमा, वरुण, पितर, वसु, साध्य, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, मनु, वायु, अग्नि, प्रजा, प्राण, ऋतुओं को प्रकट करने वाले तथा प्रभा के पुंज हैं। इन्हीं के नाम आदित्य (अदितिपुत्र), सविता (जगत् को उत्पन्न करने वाले), सूर्य (सर्वव्यापक), खग (आकाश में विचरने वाले), पूषा (पोषण करने वाले), गभस्तिमान् (प्रकाशमान), सुवर्णसदृश, भानु (प्रकाशक), हिरण्यरेता (ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के बीज), दिवाकर (रात्रि का अन्धकार दूर करके दिन का प्रकाश फैलाने वाले), हरिदश्व (दिशाओं में व्यापक अथवा हरे रंग के घोड़े वाले), सहस्रार्चि (हजारों किरणों से सुशोभित), सप्तसप्ति (सात घोड़ों वाले), मरीचिमान् (किरणों से सुशोभित), तिमिरोन्मथन (अन्धकारा का नाश करने वाले), शम्भु (कल्याण के उदगम स्थान), त्वष्टा (भक्तों का दुःख दूर करने अथवा जगत् का संहार करने वाले), मार्तण्डक (ब्रह्माण्ड को जीवन प्रदान करने वाले), अंशुमान् (किरण धारण करने वाले), हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा), शिशिर (स्वभाव से ही सुख देने वाले), तपन (गर्मी पैदा करने वाले), अहस्कर (दिनकर), रवि (सबकी स्तुति के पात्र), अग्निगर्भ (अग्नि को गर्भ में धारण करने वाले), अदिति पुत्र, शंख (आनन्द स्वरूप एवं व्यापक), शिशिरनाशन (शीत का नाश करने वाले), व्योम नाथ (आकाश के स्वामी), तमोभेदी (अन्धकार को नष्ट करने वाले), ऋग् यजुः और सामवेद के पारगामी, घनवृष्टि (घनी वृष्टि के कारण), अपां मित्र (जल को उत्पन्न करने वाले), विन्ध्यवीथीप्लवंगम (आकाश में तीव्र वेग से चलने वाले), आतपी (घाम उत्पन्न करने वाले), मण्डली (किरण-समूह को धारण करने वाले), मृत्यु (मौत के कारण), पिंगल (भूरे रंग वाले), सर्वतापन (सबको ताप देने वाले), कवि (त्रिकालदर्शी), विश्व (सर्वस्वरूप), महातेजस्वी, रक्त (लाल रंग वाले), सर्वभवोद्भव (उत्पत्ति के कारण), नक्षत्र, ग्रह और तारों के स्वामी, विश्वभावन (जगत् की रक्षा करने वाले), तेजस्वियों में भी अति तेजस्वी तथा द्वादशात्मा (बारह स्वरूपों में अभिव्यक्त) है। (इन सभी नामों से प्रसिद्ध सूर्यदेव!) आपको नमस्कार है।

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः।।16।।
जयाय जय भद्राय हर्यश्वाय नमो नमः।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः।।17।।
नमः उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते।।18।।
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः।।19।।
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने।

कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः।।20।।

तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे।

नमस्तमोऽभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे।।21।।

पूर्वगिरि-उदयाचल तथा पश्चिमगिरि-अस्ताचल के रूप में आपको नमस्कार है। ज्योतिर्गणों (ग्रहों और तारों) के स्वामी तथा दिन के अधिपति आपको प्रणाम है। आप जय स्वरूप तथा विजय और कल्याण के दाता है। आपके हाथ में हरे रंग के घोड़े जुते रहते हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। सहस्रों किरणों से सुशोभित भगवान सूर्य! आपको बारम्बार प्रणाम है। आप अदिति के पुत्र होने के कारण आदित्य नाम से प्रसिद्ध है, आपको नमस्कार है। उग्र (अभक्तों के लिये भयंकर), वीर (शक्ति-सम्पन्न) और सारंग (शीघ्रगामी) सूर्य देव को नमसकार है। कमलों को विकसित करने वाले प्रचण्ड तेजधारी मार्तण्ड को प्रणाम है। (परात्पर रूप में) आप ब्रह्मा, शिव और विष्णु के भी स्वामी हैं। सूर आप की संज्ञा है, यह सूर्यमण्डल आपका ही तेज है, आप प्रकाश से परिपूर्ण हैं, सबको स्वाहा कर देने वाला अग्नि आपका ही स्वरूप है, आप रौद्र रूप धारण करने वाले हैं, आपको नमस्कार है। आप अज्ञान और अन्धकार के नाशक, जड़ता एवं शीत के निवारक तथा शत्रु का नाश करने वाले हैं, आपका स्वरूप अप्रमेय है। आप कृतघ्नों का नाश करने वाले सम्पूर्ण ज्योतियों के स्वामी और देवस्वरूप है, आपको नमस्कार है। आपकी प्रभा तपाये हुए सुवर्ण के समान है, आप हरि (अज्ञान का हरण करने वाले) और विश्वकर्मा (संसार की सृष्टि करने वाले) हैं, तम के नाशक, प्रकाश स्वरूप और जगत् के साक्षी हैं, आपको नमस्कार है।

नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः।

पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः।।22।।

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः।

एष चैवाग्निहोरात्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम्।।23।।

देवाश्च क्रतवश्चैव क्रतूनां फलमेव च।

यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः।।24।।

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च।

कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव।।25।।

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।

एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि।।26।।

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि।

एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम्।।27।।

रघुनन्दन! ये भगवान सूर्य ही सम्पूर्ण भूतों का संहार, सृष्टि और पालन करते हैं। ये ही अपनी किरणों से गर्मी पहुँचाते और वर्षा करते हैं। ये सब भूतों में अन्तर्यामी रूप से स्थित होकर उनके सो

जाने पर भी जागते रहते हैं। ये ही अग्निहोत्र तथा अग्निहोत्री पुरुषों को मिलने वाले फल हैं। (यज्ञ में भाग ग्रहण करने वाले) देवता, यज्ञ और यज्ञों के फल भी ये ही हैं। सम्पूर्ण लोकों में जितनी क्रियाएँ होती हैं, उन सबका फल देने में ये ही पूर्ण समर्थ हैं। राघव! विपत्ति में, कष्ट में, दुर्गम मार्ग में तथा और किसी भय के अवसर पर जो कोई पुरुष इन सूर्यदेवता का कीर्तन करता है, उसे दुःख नहीं भोगना पड़ता। इसलिये तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वर की पूजा करो। इस आदित्यहृदय का तीन बार जप करने से कोई भी युद्ध में विजय प्राप्त कर सकता है। महाबाहो! तुम इसी क्षण रावण का वध कर सकोगे। यह कहकर अगस्त्य जी जैसे आये थे, उसी प्रकार चले गये।

एतच्छ्रुत्वा महातेजाः नष्टशोकोऽभवत् तदा।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान्।।28।।
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान्।।29।।
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमतम्।
सर्व यत्नेन महता वृतस्तस्य वधेऽभवत्।।30।।
अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति।।31।।

उनका उपदेश सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी का शोक दूर हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर शुद्ध चित्त से आदित्य हृदय को धारण किया और तीन बार आचमन करके शुद्ध हो भगवान् सूर्य की ओर देखते हुए इसका तीन बार जाप किया। इससे उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। फिर परम पराक्रमी रघुनाथ जी ने धनुष उठाकर रावण की ओर देखा और उत्साहपूर्वक विजय पाने के लिये वे आगे बढ़े। उन्होंने पूरा प्रयत्न करके रावण के वध का निश्चय किया। उस समय देवताओं के मध्य में खड़े हुए भगवान सूर्य ने प्रसन्न होकर श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखा और निशाचरराज रावण के विनाश का समय निकट जानकर हर्षपूर्वक कहा - 'रघुनन्दन! अब जल्दी करो'।

1. बोधप्रश्न

क. आदित्य के माता का नाम क्या है?

ख. आरोग्यसुख के लिए किसकी आराधना करनी चाहिए?

ग. आदित्य हृदय स्तोत्र का उपदेश श्रीराम को किसने किया?

घ. यह आदित्य हृदय स्तोत्र कहाँ से उद्धृत है?

ङ. आदित्य हृदय स्तोत्र में कितने श्लोक हैं?

च. अदिति के पति कौन थे?

1.5 आदित्य स्वरूप

आदित्य का ही अपर पर्याय सूर्य शब्द है। भगवान सूर्य चराचरजगत् की आत्मा है। इसीलिए वेदों में कहा गया है-सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ब्राह्मणग्रन्थों में इन्हें साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। असौ वा आदित्यो ब्रह्म, यो हि अहरहः पुरस्ताज्जायते'।

ये सूर्यदेव पृथिवी के सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण है - प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

सूर्य के बिना संसार की स्थिति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता है। वे ही सच्चिदानन्दमय परमात्मा है। वेदों एवं उपनिषदों में इनकी अनन्त महिमा का वर्णन मिलता है। हमारे सभी धर्म (सम्प्रदाय) किसी न किसी रूप अवश्य ही इनका आश्रय ग्रहण करते हैं।

ये वैदिक देवताओं में द्युस्थानीय देवता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान सूर्य का अवतार कश्यप ऋषि की पत्नी अदिति के गर्भ से हुआ था। इसीलिए इन्हें आदित्य भी कहा जाता है। भगवान सूर्य ही समस्त सृष्टि के आदि कारण हैं।

हम देखते हैं कि लोक में एक प्रसिद्धि है कि द्वादश आदित्य होते हैं। यही नहीं बारह महीनों के भिन्न-भिन्न सूर्यों का नाम भी शास्त्रों में देखा जाता है। तथा इनके साथ कुछ गण भी रहते हैं। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं वैदिक द्वादश आदित्य ही पुराणों के अनुसार चैत्रादि 12 मासों के अधिपति है। जिनका संक्षेप में वर्णन आपके सामने रखा जा रहा है।

1. धाता सूर्य

धाता कृतस्थली हेतर्वासुकी रथकृन्मुने।
पुलस्त्यस्तुम्बरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी।।
धाता शुभस्य मे दाता भूयो भूयोऽपि भूयसः।
रश्मिजालसमाश्लिष्टस्तमस्तोमविनाशनः ।।

जो भगवान् सूर्य चैत्र मास में धाता नाम से कृतस्थली अप्सरा, पुलस्त्य ऋषि, वासुकी सर्प, रथकृत् यक्ष, हेति राक्षस तथा तुम्बुरु गन्धर्व के साथ अपने रथ पर रहते हैं, उन्हें हम बार-बार नमस्कार करते हैं। वे रश्मि जाल से आवृत होकर हमारे अन्धकार को दूर करें तथा हमारा पुनः पुनः कल्याण करें। धाता सूर्य आठ हजार किरणों के साथ तपते हैं तथा उनका रक्त वर्ण है।

भगवान् सूर्य चराचर जगत् की आत्मा है। पुराणों में सूर्य की अनन्त कथाएँ हैं। सूर्य के बिना संसार की स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। वे ही सत्-चित्-आनन्द स्वरूप परमात्मा हैं। वेदों और उपनिषदों में उनकी अनन्त महिमा का वर्णन मिलता है। सभी धर्म इनको किसी-न-किसी रूप में मान्यता देते हैं। भगवान् सूर्य का अवतार कश्यप ऋषि की पत्नी अदिति के गर्भ से हुआ था। इसलिए उनको आदित्य कहा जाता है। कश्यप के पुत्र होने के

कारण उन्हें काश्यप भी कहते हैं। भगवान् सूर्य ही समस्त सृष्टि के आदि कारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी उन्हीं के रूप है। चैत्र मास में तपने वाले सूर्य का नाम धाता है। वही प्रजापति के रूप में सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं। धाता भगवान् सूर्य के बारह स्वरूपों में दूसरे स्वरूप हैं। जब भगवान् विष्णु के नाभि कमल से धाता (ब्रह्मा का) प्राकट्य हुआ तो सर्वप्रथम उनके मुख से ऊँ की ध्वनि निकलकर सारे जगत् में व्याप्त हो गई। वह ऊँ के रूप में समस्त जगत् का कारण ज्योतिर्मय स्तम्भ ही सूर्य है। वही सूर्य धाता (ब्रह्मा) के रूप में सृष्टि करते हैं तथा विष्णु रूप में पालन और शिव रूप में संहार करते हैं। चैत्र मास में रविवार के दिन धाता की पूजा करने, अर्घ्य देने तथा नैवेद्य में घृत, पूरी तथा अनार चढ़ाने से भगवान् सूर्य भक्तों का सभी तरह कल्याण करते हैं। 'भानवे नमः' इस मन्त्र से सूर्य की पूजा करनी चाहिये तथा स्वयं चैत्र में रविवार को केवल दूध पीकर व्रत करना चाहिए।

2. अर्यमा सूर्य

अर्यमा पुलहोऽथोर्जः प्रहेतिः पुंजिकस्थली।
नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम्।।
मेरुशृंगान्तरचरः कमलाकरबान्धवः।
अर्यमा तु सदा भूत्यै भूयस्यै प्रणतस्य मे।।

वैशाख मास में सूर्य अर्यमा नाम से विख्यात है तथा पुलह ऋषि, उर्ज, यक्ष, पुंजिकस्थली अप्सरा, प्रहेति राक्षस, कच्छनीर सर्प और नारद नामक गन्धर्व के साथ अपने रथ पर निवास करते हैं। मेरु पर्वत के शिखर पर भ्रमण करने वाले तथा कमलों के वन को विकसित करने वाले भगवान् अर्यमा मुझ प्रणाम करने वाले का सदा कल्याण करें। अर्यमा सूर्य दस सहस्र किरणों के साथ तपते हैं तथा पीतवर्ण है।

भगवान् सूर्य के छठे अवतार का नाम अर्यमा है। यह वैशाख मास में तपते हैं। वायु रूप में चराचर के अधिपति हैं। श्राद्ध में पितरों की तुष्टि इन्हीं की तृप्ति से होती है। यज्ञ में मित्र और वरुण के साथ ये 'स्वाहा' तथा श्राद्ध में 'स्वधा' का दिया हव्य-कव्य दोनों स्वीकार करते हैं। अर्यमा मित्रता के अधिष्ठाता हैं। मित्र की प्राप्ति, मित्रता का निर्वाह आदि इन्हीं की कृपा से सम्भव होता है। वंश परम्परा की रक्षा के लिये भी इनकी आराधना का विधान है। किसी भी प्रकार की पैतृक व्याधि की शान्ति अर्यमा की पूजा से सहज ही हो जाती है। वैशाख मास के प्रत्येक रविवार को 'तपनाय नमः' कहकर सूर्य की पूजा करें। नैवेद्य में उड़द, घृत तथा अर्घ्य में अँगूर या मुनक्का दें। ब्राह्मण को भोजन और दक्षिणा दें।

3. मित्र सूर्य

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहा।
रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी।।
निशानिवारणपटुरुदयाद्रिकृताश्रयः ।

मित्रोस्तु मम मोदाय तमस्तोमविनाशनः।।

जो भगवान् सूर्य ज्येष्ठ मास में मित्र नाम से जाने जाते हैं तथा जिनके साथ अत्रि ऋषि, तक्षक सर्प, पौरुषेय राक्षस, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन नामक यक्ष निवास करते हैं। वे रात्रि के निवारण में अत्यन्त पटु, उदय पर्वत पर निवास करने वाले और अन्धकार राशि का विनाश करने वाले भगवान् मित्र हमें आनन्द प्रदान करें। मित्र आदित्य सात सहस्र किरणों से तपते हैं तथा उनका अरुण वर्ण हैं।

मित्र आदित्य भगवान् सूर्य के बारहवें अवतार हैं। समस्त ब्रह्माण्डों के हित के लिये चन्द्रभागा नदी के तट पर कठोर तपस्या करने के कारण इनका मित्र नाम प्रसिद्ध हुआ। ज्येष्ठ मास में इनकी उपासना का विशेष महत्त्व है। ज्येष्ठ में प्रत्येक रविवार को 'मित्राय नमः' कहकर इनको अर्घ्य देना चाहिये। नैवेद्य में सत्तू, दही और दलिया चढ़ाना चाहिये। दान में ब्राह्मण को दही, चावल, आम और दक्षिणा देनी चाहिये। मित्र आदित्य की उपासना और कृपा से कुष्ठ जैसे भयानक रोग दूर हो जाते हैं।

4. वरुण सूर्य

वसिष्ठो ह्यरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः।
शुकश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्यमी।।
सूर्यस्यन्दनमारूढ अर्चिर्मालीप्रतापवान्।
कालभूतः कामरूपो ह्यरुणस्सेव्यते मया।।

आषाढ़ मास में तपने वाले सूर्य का नाम अरुण (वरुण) है। उनके साथ वसिष्ठ ऋषि, सहजन्य नाग, रम्भा अप्सरा, हूहू गन्धर्व, शुक राक्षस तथा चित्रस्वन नामक यक्ष रहते हैं। रथ पर आरूढ़ तथा किरण जाल से समाविष्ट, काल के स्वामी, परम प्रतापी और इच्छानुसार रूप धारण करने वाले भगवान् अरुण (वरुण) की मैं उपासना करता हूँ। अरुण (वरुण) आदित्य पाँच सहस्र किरणों से तपते हैं तथा उनका वर्ण श्याम है।

सूर्य देव के ग्यारहवें लीला मूर्ति का नाम वरुण है। यह जल में रहकर प्रजा को पोषण करते हैं। आषाढ़ मास में प्रत्येक रविवार को 'रवये नमः' कहकर सूर्य की पूजा करनी चाहिये। नैवेद्य में चिउड़ा तथा अर्घ्य में जायफल देना चाहिए। ब्राह्मण को दही-भात का भोजन तथा दक्षिणा देनी चाहिये। स्वयं केवल तीन दाना मरिच खाकर व्रत करना चाहिए। वरुण आदित्य का उपासक कभी दरिद्रता का कष्ट नहीं भोगता।

इनकी उपासना से पुत्र प्राप्ति होती है। वरुण आदित्य ही जल के अधिष्ठाता हैं। वे समुद्रों के स्वामी हैं। वे अपनी आराधना करने वाले के समस्त कल्याणों का विधान करके उसका पालन-पोषण करते हैं। वे शत्रुओं के नाशक, अर्यमा और मित्र के सहचर तथा संसार के साक्षी हैं। ऋग्वेद के अनुसार वे भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले तथा धन देने वाले हैं। वे पश्चिम दिशा के स्वामी तथा

कश्यप-अदिति के पुत्र हैं।

5. इन्द्र सूर्य

इन्द्रो विश्वावसुश्श्रोता चेलापुत्रस्तथाङ्गिराः।
प्रम्लोचा राक्षसश्शर्यो नभोमासं नयन्त्यमी॥
सहस्ररश्मिसंवीतमिन्द्रं वरदमाश्रये।
शिरसाप्रणमाम्यद्य श्रेयो वृद्धिप्रदायकम्॥

श्रावण मास के अधिपति सूर्य का नाम इन्द्र आदित्य है। वे अपने रथ पर अंगिरा ऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, प्रम्लोचा अप्सरा, एलापुत्र नाग, श्रोता यक्ष तथा शर्य राक्षस के साथ चलते हैं। मैं सहस्र रश्मियों से आवृत ऐसे वरदाता इन्द्र आदित्य की शरण ग्रहण करता हूँ। शिर से प्रणाम करता हूँ। वे मुझे कल्याण व वृद्धि प्रदान करें। इन्द्र आदित्य सात सहस्र रश्मियों से तपते हैं तथा उनका वर्ण श्वेत हैं।

भगवान् सूर्य का प्रथम लीला-विग्रह इन्द्र नाम से प्रसिद्ध है। यह देवराज के पद पर आसीन हैं। ये देवताओं के रक्षक तथा वृष्टि के स्वामी हैं। वृष्टि से ही संसार का जीवन चलता है। वैदिक काल में इन्द्र के निमित्त अनेक यज्ञ होते थे। त्रेता में वानरराज वाली और द्वापर में अर्जुन इन्हीं के अंश से उत्पन्न हुए थे। द्वापर में जब भगवान् श्रीकृष्ण ने इनका यज्ञ बन्द करवा दिया, तब नाराज होकर ये सात दिन तक लगातार प्रलय-वृष्टि करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण के ग्वाल-बालों की इनके कोप से रक्षा करने के लिये गोवर्धन पर्वत उठाना पड़ा था। इन्होंने दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य पूर्वक रहकर ब्रह्मा जी से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। अध्यात्म ज्ञान मानव-जगत् में इन्हीं की कृपा से आया। इन्द्र आदित्य ही आयुर्वेद के आदि उपदेष्टा हैं। भगवान् धन्वन्तरि ने इन्हीं से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। इन्द्र आदित्य की प्रसन्नता के लिये श्रावण मास के प्रत्येक रविवार को व्रत करना चाहिये और बिना नमक के केवल एक समय भोजन करना चाहिये। श्रावण मास में 'इन्द्राय नमः' कहकर भगवान् सूर्य को अर्घ्य देने वाले पर भगवान् सूर्य परम प्रसन्न होकर उसे ऐश्वर्य और विद्या देते हैं। 'गभस्तयो नमः' कहकर श्रावण के सूर्य की करवीर पुष्प से पूजा करनी चाहिये। नैवेद्य में सत्तू, पूरी तथा खीरा चढ़ाना चाहिये। ब्राह्मण को रविवार के दिन भोजन तथा दक्षिणा देनी चाहिए।

6. विवस्वान् सूर्य

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः।
अनुम्लोचाश्शंखपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी॥
जगन्निर्माणकर्त्तारं सर्वदिग्व्याप्ततेजसम्।
नभोग्रहमहादीपं विवस्वन्तं नमाम्यहम्॥

भाद्रपद मास में विवस्वान् नामक आदित्य (सूर्य) भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा, उग्रसेन गन्धर्व, शंखपाल नाग, आसारण यक्ष तथा व्याघ्र राक्षस के साथ अपने रथ पर चलते हैं। मैं जगत् के

निर्माणकर्ता, सारी दिशाओं में व्याप्त तेज वाले आकाशचारी ग्रह, महादीप भगवान् विवस्वान् को प्रणाम करता हूँ। विवस्वान् सूर्य दस सहस्र रश्मियों से तपते हैं, उनका वर्ण वभ्रु है।

भगवान् सूर्य का आठवाँ स्वरूप साक्षात् अग्नि देव का है। अग्नि को ही विवस्वान् कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अग्नि में जो ताप या ऊष्मा है, वह विवस्वान् स्वरूप है। जल को शोषण, शीत-निवारण और प्राणियों के भोजन का पाचन यह सब अग्नि का कार्य है। वैसे तो विवस्वान् सूर्य भाद्रपद मास में सूर्य के रथ के अधिपति हैं। लेकिन जहाँ भी अग्नि है, वहाँ विवस्वान् देव की ही उपस्थिति मानी जाती है। अग्नि देव के रूप में भगवान् विवस्वान् ही दक्षिण और पूर्व दिशा के मध्य कोण के स्वामी हैं। प्राणियों के भीतर वही जठराग्नि रूप से अन्न का पाचन करते हैं। समुद्र में वडवाग्नि के रूप में भगवान् विवस्वान् ही प्रज्वलित रहते हैं। वन में दावाग्नि तथा सूर्य मण्डल में इन्हीं को दिव्याग्नि कहा जाता है। लोक में व्यक्त एवं अव्यक्त रूप में वही अग्नि है। वही ज्ञान के स्वरूप हैं। भाद्रपद मास में प्रत्येक रविवार को व्रत रखकर भगवान् विवस्वान् को अर्घ्य देना चाहिये तथा 'यमाय नमः' कहकर चावल, घृत और कुम्हड़ा चढ़ाना चाहिए। इनकी कृपा से बुद्धि और यश प्राप्त होता है।

7. पूषा सूर्य

पूषा धनंजयो धाता सुषेणस्सुरुचिस्तथा।
घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी।।
पूषा तोषाय मे भूयात्सर्वपापापनोदनात्।
सहस्रकरसंवीतस्समस्ताशान्तरान्तरः ।।

आश्विन मास में सूर्य के रथ पर पूषा नामक आदित्य, गौतम ऋषि, घृताची अप्सरा, सुरुचि गन्धर्व, धनंजय नाग, सुषेण यक्ष तथा धाता राक्षस के साथ परिभ्रमण करते हैं। सहस्र रश्मियों से आवृत भगवान् पूषा मेरे सभी पापों का नाश करके मुझे संतोष प्रदान करें। पूषा आदित्य छः सहस्र रश्मियों से तपते हैं तथा उनका अलक्तक वर्ण है।

भगवान् सूर्य के पाँचवें विग्रह का नाम पूषा है। ये अन्न में रहकर प्रजाजनों की पुष्टि करते हैं। यही आश्विन मास में सूर्य के रथ पर अपने सहचरों के साथ रहते हैं। पूषा आदित्य पशु सम्पत्ति की वृद्धि करते हैं। यही इन्द्रजाल क्रिया के मुख्य देवता हैं। आश्विन मास के प्रत्येक रविवार को 'हिरण्यरेतसे नमः' कहकर पूषा सूर्य की पूजा करनी चाहिए। नैवेद्य में चीनी तथा अनार चढ़ाना चाहिये। ब्राह्मण को भक्ति परायण होकर भोजन, चावल और चीनी देनी चाहिये।

8. पर्जन्य सूर्य

क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यस्सेनजित्तथा।
विश्वश्चैरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी।।
प्रपंचं प्रतपन्भूयो वृष्टिभिर्मादयन्पुनः।

जगदानन्दजनकः पर्जन्यः पूज्यते मया।।

कार्तिक मास में सूर्य के रथ पर पर्जन्य आदित्य (सूर्य) भारद्वाज ऋषि, वर्चा गन्धर्व, ऐरावत नाग, सेनजित् यक्ष तथा विश्व राक्षस के साथ संचरण करते हैं। जो समस्त सृष्टि को प्रतप्त करने के पश्चात् पुनः वृष्टि द्वारा आनन्द प्रदान करते हैं, उन भगवान् पर्जन्य की मैं पूजा करता हूँ। पर्जन्य आदित्य नौ हजार रश्मियों से तपते हैं तथा उनका वर्ण अरुण है।

सूर्य देव का तीसरा लीला-विग्रह पर्जन्य के नाम से विख्यात है। यह बादलों में स्थित होकर अपनी किरणों द्वारा वर्षा करते हैं। कार्तिक मास के प्रत्येक रविवार को अगस्त्य, पुष्प तथा अपराजित धूप के द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिये। नैवेद्य के स्थान पर गुड़ के बनाये हुए पूए तथा ईख का रस चढ़ाना चाहिए, उसी नैवेद्य के द्वारा ब्राह्मण को यथाशक्ति भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। कार्तिक मास में जो सूर्यदेव के मन्दिर में दीप दान करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त होता है और वह सूर्य के समान तेजस्वी होता है।

9. अंशुमान् सूर्य

अथांशुः काश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी।
विद्युच्छत्रुर्महाशंखस्सहोमासं नयन्त्यमी।।
सदा विद्रावणरतो जगन्मङ्गलदीपकः।
मुनींद्रनिवहस्तुल्यो भूतिदोंशुर्भवेन्मम।।

मार्गशीर्ष मास में अंशुमान् सूर्य (आदित्य) कश्यप ऋषि, उर्वशी अप्सरा, ऋतसेन गन्धर्व, महाशंख नाग, तार्क्ष्य यक्ष तथा विद्युच्छत्रु राक्षस के साथ अपने रथ पर संचरण करते हैं। अन्धकार का नाश तथा शत्रु दमन करने में समर्थ, सारे जगत् के मंगल-दीपक और मुनिवृंदों द्वारा नित्य वन्दनीय भगवान् अंशुमान् हमें सदा ऐश्वर्य प्रदान करें। अंशुमान् आदित्य नौ सहस्र किरणों से तपते हैं और उनका वर्ण हरा है।

भगवान् सूर्य के दसवें स्वरूप को अंशुमान् कहते हैं। ये मार्गशीर्ष मास के अधिपति हैं। यह वायुरूप में प्राण तत्त्व बनकर समस्त प्राणियों को सजग, सतेज तथा प्रसन्न बनाये रखते हैं। तात्पर्य यह है कि वायु में भी सूर्य का तत्त्व ही समाहित है। अंशु का एक अर्थ है, रश्मि, ऊष्मा। मार्गशीर्ष मास में भगवान् सूर्य अंशुमान् रूप से शीत के प्रभाव को कम करके प्राणियों को सुख देते हैं। पुराणों के अनुसार अंशुमान् सूर्य वायु रूप से कश्यप-अदिति के पुत्र हैं। ऐसी कथा है कि जब भगवान् विष्णु ने हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु को मार डाला तो दैत्य माता दिति अत्यन्त दुःखी थीं। दिति का रोष इन्द्र पर था। इन्द्र के लिये ही तो उनके पुत्र मारे गये। इसलिये उन्होंने बड़े संयम और प्रेम से महर्षि कश्यप को प्रसन्न किया। दिति ने सन्तुष्ट पति से इन्द्र का वध करने वाला पुत्र चाहा। महर्षि कश्यप ने दिति को पुंसवन-व्रत करने का आदेश दिया। जब इन्द्र को इस रहस्य का पता लगा तो वे चिन्तित हो गये। वे दिति की सेवा करने लगे। दिति व्रत-पालन में अत्यन्त सावधान रहती थीं, परन्तु एक दिन

प्रमादवश सन्ध्याकाल में सो गयीं। इन्द्र को मौका मिल गया और उन्होंने उनके गर्भ में घुसकर गर्भ को उनचास टुकड़ों में काट डाला, पर वे टुकड़े मरे नहीं। वे बस व्रत के प्रभाव से उनचास बालक हो गये। इन्द्र ने उनको देवता बना लिया। वायु के उनचास रूप हैं और वायु मूलरूप से अंशुमान् आदित्य ही हैं। इनकी आराधना से शरीर स्वस्थ रहता है तथा सिद्धि के साथ ऐश्वर्य भी प्राप्त होता है। मार्गशीर्ष में प्रत्येक रविवार को व्रत करना चाहिये तथा भगवान् सूर्य को नैवेद्य में चावल, घृत तथा गुड़ के साथ नारियल चढ़ाना चाहिये।

10. भग सूर्य

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः।
कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पौषमासंनयन्त्यमी।।
तिथिमांसऋतूनां च वत्सरायनयोरपि।
घटिकानां च यः कर्ता भगो भाग्य प्रदोऽस्तु मे।।

पौष मास में भग नामक आदित्य (सूर्य) अरिष्टनेमि ऋषि, पूर्वचित्ति अप्सरा, ऊर्ण गन्धर्व, कर्कोटक सर्प, आयु यक्ष तथा स्फूर्ज राक्षस के साथ अपने रथ पर संचरण करते हैं। तिथि, मास, संवत्सर, अयन, घटी आदि के अधिष्ठाता भगवान् भग मुझे सौभाग्य प्रदान करें। ग्यारह हजार रश्मियों से तपने वाले भगवान् भग का रक्त वर्ण है।

भगवान् सूर्य के सातवें विग्रह का नाम भग है। यह ऐश्वर्य रूप से समस्त सृष्टि में निवास करते हैं तथा पौष मास में सूर्य के रथ पर चलते हैं। भग का अर्थ - सूर्य, चन्द्रमा, शिव, सौभाग्य, प्रसन्नता, यश, सौन्दर्य, प्रेम, गुण-धर्म, प्रयत्न, मोक्ष तथा शक्ति है। पौष के भयंकर शीत में सूर्य चन्द्र की भाँति शैत्य बढ़ाकर, शिव की भाँति कल्याण कर प्रकृति में स्वर्गीय सुषमा की सृष्टि करते हैं तथा अपने उपासकों को ऐश्वर्य और मोक्ष प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य-ये छः भग कहे जाते हैं और इनके स्वामी विष्णु हैं, अतः पौष मास के प्रत्येक रविवार को 'विष्णवे नमः' कहकर सूर्य को अर्घ्य देना चाहिये। नैवेद्य में भगवान् सूर्य को तिल, चावल की खिचड़ी तथा अर्घ्य में बिजौरा नीबू देना चाहिये।

11. त्वष्टा सूर्य

त्वष्टा ऋचीको रक्षश्चकम्बलाख्यस्तिलोत्तमा।
ब्रह्मरातोऽथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभरा।।
त्वष्टा शुभाय मे भूयाच्छिष्टावलिनिषेवितः।
नानाशिल्पकरो नानाधातुरूपः प्रभाकरः।।

माघ मास में त्वष्टा नामक सूर्य (आदित्य) ब्रह्मरात ऋषि, तिलोत्तमा अप्सरा, धृतराष्ट्र गन्धर्व, कम्बल नाग, शतजित् यक्ष तथा ऋचीक राक्षस के साथ अपने रथ पर चलते हैं। वे शिष्टों द्वारा सेवित, नाना शिल्पों के आविष्कर्ता, विविध धातुमय, प्रभाकर भगवान् त्वष्टा मेरा शुभ करें। त्वष्टा

आठ हजार रश्मियों से तपते हैं, उनका चित्र वर्ण है।

भगवान् सूर्य के चौथे विग्रह का नाम त्वष्टा है। माघ मास में त्वष्टा नामक सूर्य तपते हैं। वे सम्पूर्ण वनस्पतियों तथा औषधियों में स्थित रहते हैं। त्वष्टा कहते हैं - देवशिल्पी विश्वकर्मा को। यह नाम भी सार्थक है, क्योंकि माघ मास में त्वष्टा प्रकृति के उपादानों को एक कुशल शिल्पी की भाँति तराशकर (काट-छाँटकर) सुन्दर स्वरूप प्रदान करते हैं। सर्वमेध के द्वारा इन्होंने जगत् की सृष्टि की और आत्म बलिदान करके निर्माण कार्य पूरा किया। ये समस्त शिल्प के अधिदेवता हैं। भगवान् श्रीराम के लिये समुद्र पर सेतु निर्माण करने वाले नल-नील इन्हीं के अंश से पैदा हुए थे। अपने शिल्प कर्म की उन्नति के लिये हिन्दू-शिल्पी भाद्रपद की संक्रान्ति को इन्हीं की आराधना करते हैं। उस दिन शिल्प का कोई उपकरण व्यवहार में नहीं आता। माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को उपवास करके गन्धादि उपचारों से भगवान् सूर्य की पूजा करनी चाहिये तथा रात्रि में उनके सम्मुख शयन करना चाहिये। इसके बाद प्रातःकाल सप्तमी को विधिपूर्वक पूजा करें और उदारतापूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करायें। इस प्रकार माघ से फाल्गुन मास पर्यन्त एक वर्ष तक सप्तमी का व्रत करना चाहिये तथा भगवान् सूर्य की रथ यात्रा निकालनी चाहिये। रथस्थ भगवान् सूर्य की भली-भाँति पूजा कर तथा सुवर्ण, रत्नादि से अलंकृत सूर्य नारायण की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर ब्राह्मण को दान कर दें। यह माघ सप्तमी बहुत उत्तम तिथि है। इस दिन भगवान् सूर्य के निमित्त की गयी पूजा और दान हजार गुना अधिक फलदायक हो जाते हैं। जो कोई भी इस व्रत को करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। रथ सप्तमी के माहात्म्य का श्रवण करने वाला व्यक्ति ब्रह्म हत्या जैसे महान् पाप से भी मुक्त हो जाता है।

12. विष्णु सूर्य

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित्।
विश्वामित्रो महाप्रेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी।।
भानुमण्डलमध्यस्थं वेदत्रयनिषेवितम्।
गायत्रीप्रतिपाद्यं तं विष्णुं भक्त्या नमाम्यहम्।।

फाल्गुन मास में विष्णु (आदित्य) सूर्य के साथ उनके रथ पर विश्वामित्र ऋषि, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, अश्वतर नाग तथा महाप्रेत राक्षस रहते हैं। ऐसे भानु मण्डल के मध्य में स्थित, तीनों वेदों द्वारा सेवित तथा गायत्री द्वारा प्रतिपाद्य विष्णु आदित्य को मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। विष्णु आदित्य छः सहस्र रश्मियों से तपते हैं, उनका वर्ण अरुण है।

फाल्गुन के सूर्य का नाम है - विष्णु। पराशर जी के अनुसार विष्णु का अर्थ है - रक्षक, विश्व व्यापक। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मा की शक्ति से ही व्याप्त है, अतः वे विष्णु कहलाते हैं, क्योंकि विश धातु का अर्थ - प्रवेश करना। फाल्गुन मास में पहुँचते-पहुँचते सूर्य शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं। वह ठण्ड से सिकुड़ी हुई सृष्टि में शक्ति का संचार करते हैं। उनकी उत्पादक शक्ति प्रखर हो जाती है। इस प्रकार एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति की भाँति विष्णु आदित्य सृष्टि के पालन की भूमिका को सम्पन्न करते हैं।

देवताओं के शत्रुओं का संहार करने वाले तथा समस्त सृष्टि का पालन करने वाले भगवान् विष्णु वास्तव में सूर्य के ही अवतार हैं। इन्हें ही द्वादशादित्यों में विष्णु कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु आदित्य का ही वामन नाम से उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद-संहिता में इसी विष्णु आदित्य के लिये 'उरुगाय नमः' तथा 'उरुक्रम' विशेषण का प्रयोग हुआ है। अतः सूर्यरूप विष्णु का अर्थ है-सर्वत्र गमनशील। ऋग्वेद में ही विष्णु के तीन पदों का प्रयोग बारह बार हुआ है। इसका अर्थ है कि तीन पदो के द्वारा विष्णु ने तीनों लोकों को व्याप्त कर लिया है। सायण के अनुसार द्युलोक या सत्यलोक विष्णु आदित्य का तृतीय पद है। इसी विष्णु आदित्य की उपासना देवमाता अदिति ने पयोव्रत के द्वारा किया था और यह वामन रूप में प्रकट होकर अपने तीन पदों से तीनों लोकों को नाप लिये थे। श्रीमद्भागवत में पयोव्रत की बड़ी महिमा बतायी गयी है। फाल्गुन मास में पयोव्रत द्वारा विष्णु रूपी आदित्य की उपासना करने से सूर्य के समान यशस्वी पुत्र की प्राप्ति होती है।

2. बोधात्मक प्रश्न

1. चैत्रमास के सूर्य का नाम क्या है?
2. काश्यप किसे कहा जाता है?
3. अर्यमा किस मास के सूर्य का नाम है?
4. श्रावण मास के अधिपति सूर्य का क्या नाम है?
5. फाल्गुन के सूर्य का नाम क्या है?
6. उरुगाय शब्द किसके लिए प्रयुक्त है?

1.6 सारांश

प्रस्तुत ''आदित्य हृदय स्तोत्र'' नामक इस इकाई में भगवान् आदित्य की प्रसन्नता एवं आरोग्य प्राप्ति के लिए आदित्य हृदय स्तोत्र का सविधि स्तोत्र पाठ अर्थ के साथ आपके सामने प्रस्तुत किया गया।

विशेष रूप से कुष्ठ आदि रोगों से ग्रस्त जीवों के लिए तथा स्वयं को स्वास्थ्य सुख की प्राप्ति की कामना से इस स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि उदीयमान सूर्य को देखते हुए इस स्तोत्र का तीन बार पाठ करना चाहिए। जो इस स्तोत्र के फलश्रुति में भी कहा गया है - एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यति'। अस्तु।

इसके साथ ही बारह महीनों के भिन्न-भिन्न नाम वाले 12 सूर्यों का वर्णन भी अर्थ के साथ किया गया है। जिसमें उनका ध्यान एवं उनके साथ में रहने वाले उनके गणों की भी चर्चा की गई है। जिसका आधारग्रन्थ शुक्लयजुर्वेदीय माध्यन्दिन संहिता है। जिसके 15वें अध्याय में इनका वर्णन प्राप्त होता है। प्रकारान्तर से वैदिक द्वादश आदित्य ही चैत्रादि बारह महीनों के अधिष्ठाता हैं। यह ज्ञानवर्धक होगा आपके लिए।

इस प्रकार ये दोनों स्तोत्र अर्थ सहित आपके लिए प्रस्तुत है। ये स्तोत्र केवल पठनीय ही नहीं है अपितु अनुकरणीय भी है। अस्तु।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

क. निरीक्ष्य = देखकर

ख. प्रहृष्यमाणः = प्रसन्न होकर

ग. कान्तारेषु = दुर्गम मार्ग में

घ. पूर्वगिरि = उदयाचल

ङ. उग्र = भयंकर

च. भुवनेश्वर = संसार के स्वामी

छ. तपोमास = आश्विन महीना

ज. तपस्य = कार्तिक महीना

झ. सहोमास = मार्गशीर्ष

´. दिति = दैत्यों की माता

बोध प्रश्न 1 के उत्तर

क. आदित्य के माता का नाम अदिति था।

ख. आरोग्य सुख के लिए भगवान् सूर्य की आराधना करनी चाहिए।

ग. आदित्य हृदय स्तोत्र का उपदेष अगस्त्य ऋषि ने श्रीराम को दिया था।

घ. यह स्तोत्र वाल्मीकीय रामायण के युद्धकाण्ड के 105वें सर्ग से उद्धृत है।

ङ. इस स्तोत्र में 31 श्लोक हैं।

च. अदिति के पति कश्यप थे।

बोध प्रश्न 2 के उत्तर

1. चैत्रमास के सूर्य का नाम धाता है।
2. काश्यप सूर्य को कहा गया है।
3. वैशाखमास के सूर्य का नाम अर्यमा है।
4. श्रावणमास के अधिपति सूर्य का नाम इन्द्र है।
5. फाल्गुन मास के सूर्य का नाम विष्णु है।
6. उरुगाय शब्द विष्णु के लिये प्रयुक्त है।

1.8 सन्दर्भग्रन्थूसची

क. वाल्मीकीय रामायणम् - युद्धकाण्डम्

ख. सूर्यपुराण

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. आदित्यहृदय स्तोत्र के पारंभिक 10 श्लोंको अर्थ सहित लिखें।

ख. बारह महीनों के 12 सूर्यों का नाम लिखें।

इकाई – 2 अन्नपूर्णा स्तोत्र

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अन्नपूर्णा स्तोत्र का परिचय

बोध प्रश्न - 1

2.4 अन्नपूर्णा स्तोत्र : पाठ एवं फल

बोध प्रश्न – 2

बोध प्रश्न – 3

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

इस इकाई से पूर्व की इकाई में आपको आदित्य हृदयस्तोत्र के पाठ की विधि विनियोग के साथ बता दी गई है । उसके साथ ही स्तोत्र पाठ का फल महत्व आदि भी आपको ज्ञात हो गया होगा ।

बारह महीनों के सूर्यो का नाम (जिन्हें द्वादशादित्यों के रूप में पुराणों के अनुसार जाना जाता है) भी श्लोको के साथ बताया जा चुका है। सरलता के लिए उसकी हिन्दी व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तुत इस इकाई में अन्नपूर्णा स्तोत्र के विषय में आप अध्ययन करेगें। इसके साथ ही पाठ की विधि एवं फल भी बताया जायेगा जो मानव जीवन की उपासना के क्रम में अनिवार्य है।

2.2 उद्देश्य-

यह अन्नपूर्णास्तोत्र, भगवती-अन्नपूर्णा की उपासना है। इसके पाठ से घर में सदा सुख एवं शान्ति बनी रहती है। साथ ही घर धन धान्य से पूर्ण एवं वैभव से सम्पन्न हो जाता है। जन्म-जन्मान्तर की दरिद्रता दूर हो जाती है। आज के समाज में समस्त लोग धन-धान्य से पूर्ण होना चाहते है। अतः वर्तमान समाज के लिए यह स्तोत्र-पाठ अत्यन्त लाभदायक है।

2.3 अन्नपूर्णास्तोत्र का परिचय

अन्नपूर्णा शब्द का अर्थ यह है कि जो, अन्न, धन, धान्यादि से स्वयं पूर्ण हो एवं अपने आश्रित जनों को भी धनादि से पूर्ण करें वही अन्नपूर्णा है। जैसा कि - संस्कृत-व्युत्पत्ति के अनुसार हम इसे इस प्रकार समझ सकते है - अन्नेन विविधभोग्यजातेन आश्रितजनान् या पूरयति सा अनपूर्णा। इसका भाव यह है कि विश्व के समस्त प्राणियों का जो भरण पोषण करें वही अन्नपूर्णा हैं। आप अनुभव करते होगें कि भरण पोषण की अत्यन्त उत्तम-क्षमता जितनी माताओं में होती हैं, उतनी क्षमता संसार के किसी भी मानव विशेष में नही होती हैं। इसीलिए यह भरण पोषण का कार्यभार यहाँ माता के लिए परमात्मा ने प्रदान किया। यहि नही पिता शिव स्वयं जिसके आश्रित हो वही माता अन्नपूर्णा है। यहां आप देखे साक्षात् भगवान्-शिव भी माता-अन्नपूर्णा से भिक्षा ग्रहण करते हुए कुछ चित्रों में दिखाई देते है। अतः विश्व का भरण पोषण करने में समर्थ माता अन्नपूर्णा के अलावा कोई भी नही होसकता। 'अन्नं सकलभोग्यं यस्या सा अन्नपूर्णा' अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्नकोषागार को जो पूर्ण करें एवं जो विविध भोग्यपदाथों को स्वामिनि हैं, वही अन्नपूर्णा है। यह परमात्मा की कृपाशक्ति के रूप में अवतार ग्रहण करके सम्पूर्ण प्रणियों का पालन करती हैं। आज भी काशी में एक प्रसिद्धि है कि काशी में रहने वाला कोई भी प्राणी रात्रि में विना भोजन के (भुखे) नही सो सकता है। दिन में आहार मिले या ना मिले परन्तु रात्रि में माता-अन्नपूर्णा उसे सोने से पहले अवश्य ही भोजन कराकर

शयन कराती है। अस्तु!

लोकव्यवहार में भी देखा जाय तो प्राचीन लोग पहले के जमाने में घर में उत्तम गृहिणियों को अन्नपूर्णा शब्द से व्यवहार करते थे। जिनके अभाव में उन्हें घर में उत्तम स्वादिष्ट एवं आरोग्य वर्धक भोज्य पदार्थ प्राप्त नही हो सकता था। शायद इसीलिए उन्हें अन्नपूर्णा कहा जाता रहा होगा। भाई! भोजन तो माता के हाथ से ही उत्तम रहता है। माँ के हाथ का भोजन अमृत तुल्य हो ता है। इसीलिए उत्तम - नारियों के लिए 'भोज्येषु माता' कहा गया है। पुरा श्लोक इस प्रकार से है-

कायेषु मन्त्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयने सुरम्भा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री भार्या च षाड्गुण्यवतीह दुर्लभा।।

इस प्रकार लोक में ये मातायें अन्नपूर्णा के रूप में ही देखी जाती हैं ओर देखा जाना भी चाहिए। इस प्रकार की दृष्टि हो जाने पर समाज में कहीं भी दोष नही आयेगा। यहाँ प्रसंगतः ही इसकी चर्चा हो गाई।

लोक में जो एक परिवार के भरणपोषण या विभिन्न-भोज्य पदार्थ-प्रदान की शक्ति से सम्पन्न है, यदि उसे अन्नपूर्णा की संज्ञा दी गई है तो विचार करें! जो विश्वका भरण-पोषण करता है उसे अन्नपूर्णा देवता मानने में भला सन्देह ही कहा है। इस प्रकार उसी अन्नपूर्णा माता की कृपा से धर में भी सुयोग्य अन्नपूर्णा प्राप्त होती है यह सर्वदा सत्य है।

यह अन्नपूर्णा-स्तोत्र आदिशंकराचार्यजी द्वारा विरचित है। इसमें 12 श्लोक हैं जो अत्यन्त सरल एवं भावपूर्ण है। इनके अर्थ भी सरल ही है। इसके श्रद्धा एवं विश्वास पूर्वक पाठ से व्यक्ति निश्चित ही धनधान्य एवं विविध वैभव से पूर्ण हो जाता है। इस स्तोत्र के प्रत्येक तीसरे चरण में 'काशीपुराधीश्वरी' इस पद का प्रयोग किया गया है आप जानते हैं शास्त्र प्रसिद्धि यही है कि काशी सप्तपूरीयों में एक है क्योंकि-

अयोघ्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिका।।

यहां के अधीश्वर (राजा) भगवान शिव है एवं अधीश्वरी (महारानी) भगवती-अन्नपूर्णा है। इसी लिए 'काशीपुराधीश्वरी' पद का प्रयोग भगवान् शंकराचार्य ने बार बार किया है। शंकराचार्य शिव के परम-भक्त थें जिन्हे आप लोग अच्छितरह जानते हैं। काशीवास के समय में इस पुनीत स्तोत्र की रचना उन्होंने की, जिससे भगवती-अन्नपूर्णा का साक्षात्कार उन्हें हुआ था। साक्षात्कार का तात्पर्य प्रत्यक्ष दर्शन से है। आप आश्चर्य न करें यह कोई विशेष बात तत् कालीन सन्तों, महात्माओं, एवं आचार्यों के लिए नहीं थी। आप देखें, लगभग 500 वर्ष पहले श्रीगोस्वामी-तुलसीदास जी को भी पवित्र चित्रकूट तीर्थ में भगवान श्रीराम के दर्शन हुए थे। जैसा कि लिखा गया है-

चित्रकूट के घाटपर भइ सन्तों की भीर। तुलसीदास चन्दन घिसे तिलक देत रघुवीर।।

यह प्रभु श्रीराम का दर्शन श्रीहनुमान जी की अहेतुकी कृपा से उन्हें हुआ था। अस्तु

यहां एक जिज्ञासा हो सकती है कि अन्नपूर्णा कोई दूसरी शक्ति (देवता) है या शिव की शक्तिरूपा पार्वती के रूप में ही काशी में विराजमान है। इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अन्नपूर्णा कोई दूसरी शक्ति नही है अपितु श्रीपार्वती जी ही है । क्योंकि भगवान् शिव के साथ अनादि रूप से या नित्यरूप से उनकी शक्ति के रूप में विराजमान हैं। उन्हें ही यहां अन्नपूर्णा के रूप में कहा गया है।

आप यह भी जानते हैं कि शक्ति ओर शक्तिमान में कोई भेद नही हैं । शक्तिमान सदा से ही शक्ति के आश्रय में विद्यमान रहता है। यहाँ शिव शक्तिमान हैं एवं शक्ति श्रीपार्वती हैं। आप इसे भी जानिये कि शिव शब्द में शकारोत्तर वर्ती इकार शक्ति का वाचक है। इस इकार रूपी के शक्तित्व विना शिव शव के समान है। इसीलिए शक्ति अर्थात् पार्वती की ही यहाँ प्रार्थना की गई है। भगवान् शिव तो संहार के देवता है फिरभी भगवती-पार्वती रूप अन्नपूर्णा से भिक्षा मांगते है। जो मेरे आराध्य ही भगवती से याचना करते हैं तब हमें याचना करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

प्रस्तुत स्तोत्र में प्रयुक्त पद 'काशीपुराधीश्वरी' का तात्पर्य यह भी है कि भगवान शिव नित्यरूप से भगवती अन्नपूर्णा के साथ ही काशी में विराजमान रहते है। वे कभी भी काशी-क्षेत्र का परित्याग नहीं करते है। इसीलिए काशी को अविमुक्त तीर्थ भी कहा गया है। भगवान् शिव को पूरी(काशी) अत्यन्त प्रिय है। इनके साथ अन्यान्य-देवता भी यहां नित्यरूप से विराजमान रहते है। दुसीर बात यह है कि अन्यान्य तीर्थो में सभी देवता अपने अपने एक एक कलाओं से विद्यमान रहते है परन्तु काशीपुरी में ये अपनी सम्पूर्ण कलाओं से निवास नित्य करते है। काशी की महिमा बताते हुए कहा गया है- 'काशते प्रकाशते ब्रह्मतत्त्वं या सा काशी' अर्थात् जहां ब्रह्मतत्त्व का ज्ञान होता है वही काशी है। क्योंकि 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' अतः काशी ज्ञानदायिनी एवं मुक्तिदायिनी नगरी है। जहां शरीर छोडने के बाद जीव कभी भी शरीर धारण नही करता। सदा के लिए मुक्त हो जाता है। इसीलिए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी कहते हैं-

मुक्तिजन्म महिजानि ज्ञानखानी अध हानि कर।
जहँ बस शम्भुभवानि, सो काशी सेइय कस न।।
जरत सकल सुरबृन्द विषम गरल जेहि पान किय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपाल शंकर सरिस।।

अर्थात् जहाँ भगवान् शिव एवं भवानी(अन्नपूर्णा) नित्य निवास करते हैं, ऐसी यह काशी पुरी मुक्ति की जन्मभूमि ज्ञान की खानी ओर पापों कों नाश करने वाली है। अतः इस पुरी का सेवन क्यों न तीर्थो की दृष्टि से किया जाय।

जिस भीषण हलाहल (विष) से देवतागण जल रहे थे, उसको जिन्होनें स्वयं पान कर लिया। रे मनमन्द! उन शंकरजी को क्यों नही भजता ? उनके समान कृपालु ओर कौन है? अर्थात् कोई नहीं है।

इस प्रकार काशीपुरी के अधीश्वरी भगवती अन्नपूर्णा के साथ काशी का यह संक्षिप्त वर्णन अप्रासांगिक नही हुआ होगा, एसा मै मानता हूं। अस्तु!

इसी अन्नपूर्णा पार्वती को इंगित करते हुए गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं-

भव भव विभव पराभव कारिनी। विश्व विमोहनि स्ववश विहारिनि।।

जयजय गिरिवरराज किशोरी। जय महेश मुखचन्द चकोरी।।

दीन्हि तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाव वेद नहि जाना।।

यह प्रसंग भगवती श्रीसीताजी के विवाह से सम्बद्ध है भगवती-सीता भगवान श्रीराम को प्राप्त करने के लिए अर्थात् अपने मनोरथ की भिक्षा माता से मांग रही है। माँ अन्नपूर्णा से आप कैसी है! तो आपका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है। आपके असीम-प्रभाव को वेद भी नही जानते है। आप संसार को उत्पन्न पालन और संहार करने वाली भी है। इस विश्व को मोहित करने वाली ओर स्वतन्त्र रूप से विहार करने वाली है।

यही अन्नपूर्णा भगवतीपार्वती का स्वरूप है। इस प्रसंग को आप आच्छी तरह जानते है, अतः यहाँ इसका विशेष वर्णन नहीं किया जा रहा है। अन्यथा विस्तार हो जायगा। यह बात, पार्वती ही अन्नपूर्णा है, इसको बताने के लिए ही यहां प्रस्तुत किया गया। अस्तु!

इस स्तोत्र के प्रत्येक चतुर्थ चरण में- 'भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी' कहा गया है। यहां भिक्षा शब्द से मनोरथ या कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना की गई है। यहां एक जिज्ञासा अवश्य हो सकती है, कि भगवान शंकराचार्य पक्के शैव थे, अर्थात् शिव के सर्चोच्च उपासक थे, तो शिव से ही क्यों न प्रार्थना की, क्योंकि भगवान शिव भी सर्व-प्रदाता है सब कुछ देने में समर्थ है, परन्तु मित्रों! बात यह है कि लोक में भी भिक्षा के लिए निवेदन करने पर या किसी विशेष प्राप्ति की प्रार्थना करने पर पिताजी कदाचित् परिस्थितिवश् या उचितानुचित विचारकर मना भी कर सकते हैं। अर्थात् उसकी आवश्यकता एवं पात्रता का शायद विचार कर सकते है, परन्तु माता, बालक की प्रार्थना या निवेदन करने पर कभी भी अपने बच्चों की पात्रता या उचितानुचित आदि का विचार नही करतीं। वह याचना के भाव में शिशु के सम्मुख होते ही सबकुछ पुत्र के गुणदोष को भूल जाती है एवं अविलम्ब ही पुत्र के सकल मनोरथों को सद्यः प्रसन्न होकर उसे पूर्ण कर देती है। इसीलिए शायद शंकराचार्य भी इस स्तोत्र में भिक्षा की याचना भगवती अन्नपूर्णा से ही कर रहें हैं।

यहाँ एक प्रसंग मैं और आपको बताना चाहता हूं, चूंकि आप कर्मकाण्ड विषय से जुडे है शायद जानते भी होंगे। उपनयन-संस्कार के समय 'भिक्षाचर्यचरणम्' अर्थात् ब्रह्मचारी के रूप मैं भिक्षाटन करने माणवक(बटु) जाता है। वहाँ ब्राह्मण के लिए 'भवति भिक्षां देहि। ' यह विधान किया गया है। यहाँ एक जिज्ञासा होती है कि सर्वप्रथम भिक्षा किससे ली जाय। सूत्रकार-आचार्यपारस्कर लिखते है- 'मातरं प्रथमाभेके' अर्थात् बालक सबसे पहले माता के यहाँ ही भिक्षा लेने के लिए जाता है, क्योकि कदाचित् कोई दुसरा-व्यक्ति उसे भिक्षा देने से इनकार भी कर दें अर्थात् खाली हाँथ लौटना पडे बटु को परन्तु यदि सबसे पहले वह माता के यहाँ भिक्षा के लिए जाता है तो माता उसे कभी भी खाली हाँथ लौटने नही देगी। क्योंकि वह अन्नपूर्णा है। बच्चे को अपने पास देखकर माता स्वतः सबकुछ

उसके गुणदोष को भूलकर अपना लेती है। इसीलिए सूत्रकार सबसे पहले माता के यहाँ भिक्षा के लिए जाने का विधान बताते है। यह व्यक्तिगत लेखक की भावना है।

संभवतः इसीकारण से आदिशंकराचार्य भी भगवान् शिव से प्रार्थना न करते हुए माता अन्नपूर्णा से याचना करते है 'भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी'। जिसे सुनकर माता प्रसन्न होकर दर्शन देते हुए उनके सकल मनोरथो को पूर्ण की। अस्तु!

स्तोत्र पाठ की विधि एवं फल-

इस स्तोत्र का पाठ प्रातःकाल पूजन के समय करना चाहिए। जैसा कि लिखा है-

यः पठेत् प्रातरुत्थाय पूजाकाले विशेषतः।
ऐश्वर्यं विपुलां लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः।
स्तोत्रमात्रस्य पाठेन पलायन्ते महापदः।
दुःस्वप्ननाशनं स्तोत्रं सर्व सौभाग्यवर्द्धनम्।।

अर्थात् इस स्तोत्र के पाठमात्र से ही मानव की सभी विपत्तियां दुर हो जाती है एवं सौभाग्य, धन, धान्य से व्यक्ति पूर्ण हो जाता है। कम से कम प्रतिदिन एक बार इस स्तोत्र का अवश्य ही श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिए, जिससे भगवती अन्नपूर्णा प्रसन्न होती हैं।

आपके मन मैं अब स्तोत्र जानने की उत्कट इच्छा हो गई होगी, तो ठीक है यह आपके लिए स्तोत्र प्रस्तुत है।

(ख) श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम् -

नित्यानन्दकरी वराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी
निर्धूताखिलघोरपावनकरी प्रत्यक्षमाहेश्वरी।
प्रालेयाचलवंशपावनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।1।।
नानारत्नविचित्रभूषणकरी हेमाम्बराडम्बरी
मुक्ताहारविलम्बमानविलसद्वक्षोजकुम्भान्तरी।
काश्मीरागुरुवासितांगरुचिरे काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।2।।
योगानन्दकरी रिपुक्षयकरी धर्मार्थनिष्ठाकरी
चन्द्रार्कानलभासमानलहरी त्रैलोक्यरक्षाकरी।
सर्वैश्वर्यसमस्तवांछितकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।3।।
कैलासाचलकन्दरालयकरी गौरी उमा शंकरी
कौमारी निगमार्थगोचरकरी ओंकारबीजाक्षरी।

मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।4।।
दृश्यादृश्यविभूतिवाहनकरी ब्रह्माण्डभाण्डोदरी
लीलानाटकसूत्रभेदनकरी विज्ञानदीपांकुरी।
श्रीविश्वेशमनःप्रसादनकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।5।।
उर्वीसर्वजनेश्वरी भगवती मातान्नपूर्णेश्वरी
वेणीनीलसमानकुन्तलहरी नित्यान्नदानेश्वरी।
सर्वानन्दकरी सदा शुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।6।।
आदिक्षान्तसमस्तवर्णनकरी शम्भोस्त्रिभावाकरी
काश्मीरात्रिजलेश्वरी त्रिलहरी नित्यांकुरा शर्वरी।
कामाकांक्षकरी जोनदयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।7।।
देवी सर्वविचित्ररत्नरचिता दाक्षायणी सुन्दरी
वाम स्वादु पयोधरप्रियकरी सौभाग्यमाहेश्वरी।
भक्ताभीष्टकरी सदाशुभकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।8।।
चन्द्रार्कानलकोटिकोटिसदृशी चन्द्रांशुबिम्बाधरी
चन्द्रार्काग्निसमानकुन्तलधरी चन्द्रार्कवर्णेश्वरी।
मालापुस्तकपाशसांकुशधरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।9।।
क्षत्रत्राणकरी महाऽभयकरी माता कृपासागरी
साक्षान्मोक्षकरी सदा शिवकरी विश्वेश्वरीश्रीधरी।
दक्षाक्रन्दकरी निरामयकरी काशीपुराधीश्वरी
भिक्षां देहि कृपावलम्बनकरी माताऽन्नपूर्णेश्वरी।।10।।
अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकरप्राणवल्लभे।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती।।
माता च पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः।
बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।
।।श्रीमच्छंकराचार्यविरचित अन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

आब आपके लिए बहुबोध प्रश्न यहाँ अन्नपूर्णा स्तोत्र पूर्ण हो रहा है। दिय जा रहे है जिनका समुचित उत्तर आपको देना है।

बोधप्रश्न- 1

(क) यह अन्नपूर्णा स्तोत्र किसके द्वारा विरचित है?

(ख) यहाँ अन्नपूर्णेश्वरी कौन हैं?

(ग) काशी में कौन सा ज्योतिर्लिंग है?

(घ) काशी को अविमुक्त क्यों कहा गया?

(ङ) सर्वप्रथम भिक्षा किससे ली जाती है?

(च) यह स्तोत्र कहाँ से लिया गया है?

2.4 अन्नपूर्णा स्तोत्र : पाठ एवं फल

यहाँ अन्नपूर्णा स्तोत्र एक और भी है, जो दक्षिण भारत में विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इसके भी रचनाकार आदिशंकराचार्य जी ही है। बात यह है कि जिसप्रकार उत्तरभारत में काशी (वाराणसी) तीर्थ मन्दिरों के लिए, माता गंगा जी, भगवान विश्वनाथ, जो द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक है जिनका नाम अविमुक्तेश्वर है, एवं भगवती अन्नपूर्णा के लिए प्रसिद्ध है। उसी प्रकार दक्षिण-भारत के तीर्थ-प्रदेशों में भगवती कामाख्या ही अन्नपूर्णा के रूप में विद्यमान है, क्योंकि इस दूसरे अन्नपूर्णास्तोत्र में उनका नाम बहुत अधिक बार प्रयोग में देखा जाता है। यह भी देखें कि जहाँ पर दाक्षिणात्य विद्वान् मन्दिरों में पूजक या अर्चक हैं, वहाँ भगवती कामाख्या की पूजा होती है। जो अन्नपूर्णा की मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं। एक बात यहाँ ओर आप ध्यान दें, कि एक और माता कामाख्या हैँ जो(तन्त्र की अधष्ठात्री देवी आसाम में हैं) वे कामाख्या माता यहाँ नही है, अपितु त्रिपुरसुन्दरी माँ कामाख्या अन्नपूर्णा जी की पूजा दक्षिणभारत के मन्दिरों में प्राचीन पूजा पद्धतियों से होता है एवं सात्विक देवी के रूप में उनकी उपासना होती है। आसाम में तो देशकालानुसार बलि आदि का प्रयोग आज भी होता है। जो वहाँ के लिए ही है। अस्तु!

हम यहाँ दक्षिणभारतीय मन्दिरों में प्रसिद्ध त्रिपुरसुन्दरी भगवती कामाख्या जी की चर्चा कर रहे हैं, जिनका सात्विक रूप से अर्चन सर्वत्र होता है। यह देवी न केवल दक्षिणभारत में ही है अपितु जहाँ जहाँ शंकराचार्यजी से सम्बद्ध स्थान या मन्दिर हैं वहाँ वहाँ दक्षिण भारतीय आचार्य अपनी पूजा पद्धति से इनका अर्चन करते हैं। उनके प्रभाव से सम्पूर्ण भारत के लोग भी यहॉं आकर अपने मनोरथों कों सिद्ध करते हैं। एक बात यहाँ अवश्य ध्यान दें, कि इनका नाम भले ही कामाख्या है पर इनका पूजन अन्नपूर्णा के रूप में ही होता है। क्योंकि आचार्यशंकर द्वारा निर्मित यह भी अन्नपूर्णा स्तोत्र ही है। जिसकी चर्चा बृहत्स्तोत्ररत्नाकर में की गई है। तथा अन्नपूर्णा के रूप में इस शब्द का प्रयोग बहुधा प्रयुक्त है।

इसके पहले प्रकरण में आपको यह भी बता दिया गया है, कि यहाँ अन्नपूर्णा के रूप में भगवता पार्वती ही भगवान शिव के साथ विद्यमान है। अतः इस स्तोत्र में भी पार्वती ही अन्नपूर्णा के रूप में स्तुत है। कदाचित् समृद्धि आदि का देखकर माता लक्ष्मी को न अन्नपूर्णा समझें। क्योंकि इस अन्नपूर्णा स्तोत्र के चतुर्थ चरण में सभी जगह भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्। लिखा गया है। यहाँ गिरिजा पद के सम्बोधन में गिरिजे यह पद प्रयुक्त है जो कि भगवती पार्वती का बोधक है। इसमें ग्यारह श्लोक है। यह अन्नपूर्णा स्तोत्र आपकी जानकारी एवं श्रीपार्वती की अन्नपूर्णात्व को व्यक्त करने के लिए ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

इस स्तोत्र में एक विशेष बात यह है कि भगवती श्रीअन्नपूर्णा के करकमलों में पायस(खीर) भरे पात्र के साथ दर्वी (जिससे खीर परोसी जाती है) लोक में कलछल या बडे चम्मच के रूप में प्रत्येक घर में रहता है वह विराजमान है, जिससे माता भक्तों को अन्नादि एवं विविध भोग्य पदार्थो से सदा के लिए सन्तुष्ट करदेती है। इस दरबार की यह विशेषता है कि जो एक बार भी श्रद्धावनत होकर इस काल्पतरु के नीचे हाँथ फैला दिया उसे दुसरी जगह हाँथ फैलाने की जरुरत कभी भी नही पडती। इस भाव को निम्न श्लोक में इसप्रकार कहा गया है -

दुग्धान्नपात्रवरकांचनदर्विहस्ते।

भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।

इस स्तोत्र में दो, तीन, स्थलों पर श्रीदुर्गासप्तशती के श्लोक अक्षरशः देखे जाते हैं। जैसे-दारिद्रदुःखभयहारिणि का त्वदन्या, यह श्लोक दुर्गापाठ के चतुर्थ अध्याय में प्राप्त होता है। उसी प्रकार-शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे। एवं स्वाहा स्वधासि पितृदेवगणार्तिहन्त्री। यह इस स्तोत्र की विशेषता के लिए ही यहां प्रस्तुत किया गया न कि पुनरावृत्ति के प्रदर्शनार्थ प्रस्तुत है।

इसमें दस श्लोकों से भगवती अन्नपूर्णा की वन्दना की गई है एवं एक श्लोक से उस स्तोत्र के पाठ का फल प्रस्तुत किया गया है। जैसा कि श्लोक में कहा गया है-

भक्त्या पठन्ति गिरिजा दशकं प्रभाते

मोक्षार्थिनो बहुजनाः प्रथितोऽन्नकामाः।

प्रीता महेशवनिता हिमशैलकन्या

तेषां ददाति सुतरां मनसेप्सितानि।।

अर्थात् इस स्तोत्र का पाठ भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक करने से अभ्युदय एवं निःश्रेयस् दोनों की प्राप्ति होती है। अभ्युदय का अर्थ है लौकिक उन्नति, एवं निःश्रेयस् का अर्थ है मोक्ष। इस प्रकार भगवती पार्वती स्वरूपा अन्नपूर्णा मनुष्यों को इह-लौकिक एवं पारलौकिक सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। अतः इसका पाठ श्रद्धा पूर्वक हमें भी करना चाहिए। अब आपके मन में स्तोत्र पाठ की जिज्ञासा जग गई होगी, तो लीजिए यह स्तोत्र आपके सामने प्रस्तुत है-

(ग) श्रीअन्नपूर्णास्तोत्रम्

मन्दार-कल्प-हरिचन्दन-पारिजात-
मध्ये शशांक-मणिमण्डित-वेदिसंस्थे।
अर्धेन्दु-मौलि-सुललाट-षडर्घनेत्रे
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।1।।
केयूर-हार-कटकांगद-कर्णपूरे
कांची-कलाप-मणिकान्ति-लसद्दुकूले।
दुग्धा-ऽन्नपात्र-वर-कांचन-दर्विहस्ते
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।2।।
आली-कदम्ब-परिसेवित-पार्श्वभागे
शक्रादिभि-र्मुकुलितांजलिभिः पुरस्तात्।
देवि! त्वदीय-चरणौ शरणं प्रपद्ये
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।3।।
गन्धर्व-देव-ऋषि-नारद-कौशिका-ऽत्रि
व्यासा-ऽम्बरीष-कशलो ̆व-कश्यपाद्याः।
भक्त्या स्तुवन्ति निगमाऽऽगम-सूत्रमन्त्रै-
र्भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।4।।
लीला वचांसि तव देवि! ऋगादिवेदाः
सृष्ट्यादि कर्मरचना भवदीय-चेष्टा।
त्वत्तेजसा जगदिदं प्रतिभाति नित्यं
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।5।।
शब्दात्मिके शशिकलाभरणार्धदेहे
शम्भोरुरस्थल-निकेतन-नित्यवासो।
दारिद्र्य-दुःख-भयहारिणि का त्वदन्या
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।6।।
सन्ध्यात्रये सकल-भूसुर-सेव्यमाने
स्वाहा स्वधासि पितृदेवगणार्तिहन्त्री।
जायाः सुताः परिजनातिथयोऽन्नकामाः
भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।7।।
स ̆क्त-कल्पलतिके भुवनैकवन्द्ये
भूतेश-हृत्कमलमग्न-कुचाग्रभृंगे।
कारुण्यपूर्णनयने किमुपेक्षसे मां

भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।8।।

अम्ब! त्वदीय-चरणाम्बुज-संश्रयेण

ब्रह्मादयोऽप्यविकलां श्रियमाश्रयन्ते।

तस्मादहं तव नतोऽस्मि पदारविन्दं

भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।9।।

एकाग्रमूलनिलयस्य महेश्वरस्य

प्राणेश्वरी प्रणत-भक्तजनाय शीघ्ाराम्।

कामाक्षि-रक्षित-जगत्-त्रितयेऽन्नपूर्णे

भिक्षां प्रदेहि गिरिजे! क्षुधिताय मह्यम्।।10।।

भक्त्या पठन्ति गिरिजा दशकं प्रभाते

मोक्षार्थिनो बहुजनाः प्रथितोऽन्नकामाः।

प्रीता महेशवनिता हिमशैलकन्या

तेषां ददाति सुतरां मनसेप्सितानि।।

।। इति श्रीशंकराचार्यविरचितमन्नपूर्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

स्तोत्र पाठ के बाद अब आपके सामने कुछ बोधप्रश्न प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनका समुचित उत्तर आपको देना है।

बोधप्रश्न- 2

(क) इस श्लोक में कितने श्लोक हैं फलश्रुति को छोडकर ?

(ख) महेशवनिता किसे कहा गया है?

(ग) चरणाम्बुज का अर्थ क्या है?

(घ) हिमशैलकन्या कौन हैं?

(ङ) निगम शब्द का क्या अर्थ है?

खण्ड-ग 'अन्नपूर्णासहस्रनामस्तोत्रम्'

आदिशंकराचार्य जी द्वारा विरचित इन दोनों अन्नपूर्णास्तोत्र के बाद अब हम आपको अन्नपूर्णासहस्रनामस्तोत्र के विषय में बताने जा रहा हूं। स्तोत्रों के क्रम में सहस्रनामावली का भी एक विशेष स्थान है। यह अन्नपूर्णा सहस्रनामस्तोत्र अत्यन्त कठिन-परिश्रम से प्राप्त हुआ है। अतः आपके सामने प्रस्तुत करते हुए बडा हर्ष हो रहा है। जिस प्रकार बिष्णु की प्रसन्नता के लिए बिष्णुसहस्रनाम शिवसहस्रनाम गंगासहस्रनाम आदि प्रसिद्ध है उसी प्रकार इस स्तोत्र पाठ के क्रम में माता अन्नपूर्णा की प्रसन्नता के लिए अन्नपूर्णासहस्रनाम की विधि प्रस्तुत की जारही है। यह नामस्तोत्र, एक तान्त्रिक ग्रन्थ-विश्वसारतन्त्र ग्रन्थ में साक्षात् भगवान् एवं पार्वती के संवाद रूप में प्राप्त हुआ है। यह ग्रन्थ दुर्लभ ग्रन्थ की कोटि में है। अतः यह अत्यन्त प्रामाणिक एवं सारगर्भित है। इसके साथ ही इसकी फलश्रुति

भी दी गई है। यह स्तोत्र अत्यन्त सरल है। आपके पाठ्य-ग्रन्थ के स्वरुपानुकूल श्लोकबद्ध यहाँ प्रस्तुत है। यह सहस्रनामावलि यथावसर भिन्नभिन्ननामों से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। परन्तु यहाँ उचित नही है। इस का भी महत्व अत्यन्त उच्चकोटि का है। क्योंकि तन्त्र का एक अपना ही स्वरूप है। इसमें सारे रहस्य भगवत् कृपा से स्वतः व्यक्त हो जाता हैं। इस स्तोत्र से कोई उत्तम स्तोत्र नही है। एवं इससे श्रेष्ठ कोई स्तोत्र नही है। 'नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं समः।।' अव थोडा भी विलम्ब न करते हुए इस सहस्रनामस्तोत्र का आनन्द लीजिए।

(ग) श्रीमदन्नपूर्णादिव्यसहस्रनामस्तात्रम्

ओं अस्यान्नपूर्णादिव्यसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य शिवर्षिः पङ्क्तिच्छन्दो भगवती श्रीमदन्नपूर्णादेवता धर्मार्थ-काममोक्षार्थे जपे विनियोगः।

श्रीशिव उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि देव्या नाम सहस्रकम्।
शृणु त्वं परया भक्त्या येन सिद्धिर्भविष्यति।।1।।
अन्नपूर्णा महाविद्या कथिता भुवि दुर्लभा।
सहस्रनाम तस्याश्च कथयामि श्रणुष्व तत्।।2।।
विना पूजोपचारेण विना योगोपसाधनैः।
केवलं जपमात्रेण प्रसन्ना वरदायिनी।।3।।
पाठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।
नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं मनुः।।4।।
सुन्दरी शोभना काली कलिकल्मषनाशिनी।
अन्नपूर्णा महापूर्णा सर्वपूर्णा सुभाविनी।।5।।
अन्नदा मोक्षदा माया महामाया मदोत्करा।
भुवनेशी तथा दुर्गा सर्वदुर्गतितारिणी।।6।।
अनन्ता पूर्णिमा कृष्णा वासुदेवारिनाशिनी।
योगिनी योगगम्या च योगमार्गप्रकाशिनी।
योगा सत्या योगमाया महायोग्या महोदया।।7।।
योगमाता योगवती योगिनी योगसेविता।
सुमतिः कुमतिर्माता मातृभावप्रकाशिनी।।8।।
शूलनी पाशिनि चैव टंकिनी चापिनी परा।
कमला कामदा कामदायिनी शम्भुसुन्दरी।।9।।
विश्वमातृविधाश्रीश्च विश्वाद्या विश्वभाविनी।
कामाख्या शारदा देवी परमापदनाशिनी।।10।।
देवमाता देवहरा देवकार्यपरायणा।

दैत्या दैत्यवती दीना दीननाथा दयावती।।11।।
धृतिर्मेधा धरा धीरा धीरबुद्धिः प्रदायनी।
क्षेमंकरि शंकरी च सर्वसम्मोहकारिणी।।12।।
सर्वानन्दकरी कन्या कनकाचलवासिनी।
कल्पस्था कल्पवृक्षा च सिंहपृष्ठनिवासिनी।।13।।
भैरवी क्षोभणा क्षोभा क्षोभणी क्षोभनाशिनी।
क्षेमा क्षेमंकरी शीला सुशीला पुरभैरवी।।14।।
भाविका भाविनी भाव्या भावना भयनाशिनी।
श्रीःसुरूपा महाविद्या कपिला पिंगला कला।।15।।
शचीप्रिया रूपवती गान्धरी सुरसुन्दरी।
विश्वाद्या विश्वरूपा च विश्वसंकटतारिणी।।16।।
यमुना यामिनी रात्रिः कालरात्रिः कलाकला।
सुलज्जा च विलज्जा च महालज्जा च लज्जिनी।।17।।
गंगागीता महातीर्था सुतीर्था तीर्थदायिनी।
कुब्जिका पूर्णिमा ज्योत्स्ना चारुदेहविधारिणी।।18।।
शरणेशी शीलवती द्वारकाचित्ररूपिणी।
हिमाचलसुता साध्वी साध्यकर्मप्रकाशिनी।।19।।
पट्टाम्बरा महादेवी पुष्पमाला विधारिणी।
पुष्पप्रिया पुष्परता पुष्पवाणविधारिणी।।20।।
पुष्पकोदण्डताडंका महादेवपिया रतिः।
मनोहरा मनोज्ञो च मोहिनीरूपधारिणी।।21।।
सुचरित्रा विचरित्रा विश्वमाता यशस्विनी।
शिवा शैव च रुद्राणी तथैव योगिनी महा।।22।।
हरपिया गिरिसुता हरिरूपा हरप्रिया।
शिवदा शुभदा तारा तारिणी दुर्गतारिणी।।23।।
बालिका तरुणी वृद्धा किशोरी युवति तथा।
त्रिपुरा परमेशानी षोडशी भुवनेश्वरी।।24।।
लाक्षारूपावती लाक्षा सुलक्षलक्षितानना।
नलिनी नालिका नाला लाक्षारसस्वरूपिणी।।25।।
अरुणा लोलिता लोला नलिनीरूपधारिणी।
ज्वलिनी ज्वालिनी सौम्या सुवेशी गहिनी जया।।26।।

विजया च महामाया यमलार्जुनभंजनी।
भस्मिनी भस्मपत्नी च भस्मतल्पविलासिनी।।27।।
भस्मेशी चैव भस्माढ्या भवेशी भवनशिनी।
ऋद्धिः काली महाकाली कालिका कालरूपिणी।।28।।
घनाघनप्रिया घण्टा धनरूपा घनद्युतिः।
घोररूपा धोरनादा घोराधोरा च घूर्णिता।।29।।
रत्ना रत्नवती नीला रत्नामाल्याविभूषणा।
सुरत्ना रत्नमाल्या च रत्नाभरणभूषिता।।30।।
नानारत्नसुशोभा च रत्नपुष्पा समुत्सुका।
रत्नाढ्या रत्नपूर्णा च सर्वरत्नस्वरूपिणी।।31।।
रत्नकुंकुमवस्त्रा च रत्नवस्त्रविधारिणी।
ब्रह्माणी ब्रह्मदात्री व ब्रह्मरूपा गुणालया।।32।।
वैष्णवी विष्णुमाता च विष्णुपुत्री परात्मका।
रूद्राणी रुद्रपत्नी च रुद्रमाता च शंकरी।।33।।
वाराही वासुनी विद्या क्षमा धात्री कृपामयी।
श्राधिका रमणी रामा रामणी रमणी रमा।।34।।
इन्द्राणी इन्द्रपत्नी च त्वन्द्रराज्यप्रदायिनी।
इन्द्रा इन्द्रवती इन्द्रा इन्द्राणी इन्द्रवल्लभा।।35।।
कादम्बिनी कविः काली लोचनत्रयशोभिता।
दानवा दीननाथा च दीनरूपा च दीनदा।।36।।
इन्द्रा धात्री च इन्द्राणी महाभैरवशासनी।
लोलाक्षी लोचना लोला विलोला लोभनाशिनी।।37।।
स्त्रीस्वरूपा ब्रह्मरूपा विश्वरूपा विलासिनी।
मेहिनी क्षोभणी भीमा भीमनादा च भीमहा।।38।।
कालिका जृम्भिणी पूषा पुष्प हस्ता मघाश्विनी।
चन्द्रमा चन्द्रिका शीला भक्षाभयहरा तथा।।39।।
चन्द्रिका चारुवदना चारुकेशी सुकेशिका।
सुनासा दीर्घनासा च महाचक्रेश्वरी तथा।।40।।
चन्द्रानना चकोराक्षी चन्द्रमण्डलवर्तिनी।
श्रीर्लक्ष्मीश्च सुकेशा च मुक्तकेशी महोत्कचा।।41।।
घरणी धारिणी धारा धवलाम्बुनिवासिनी।
पार्वती पर्वता पाता तुंगपर्वतवासिनी।।42।।

हिमाद्रितनया वेश्या वेश्यावेशविणायिनी।
गौरी गुरुतरा चैव गुणकर्मपरायणा।।43।।
गुणवती गुणागीता गन्धर्वगणसेविता।
जालन्धरी तुलसी च वृन्दावनविलासिनी।।44।।
माधवी मधुमत्ता च प्रेमा चैव प्रियम्वदा।
स्वर्गस्था स्वर्गरूपा च स्वर्गपूजा समुत्सुका।।45।।
चण्डिका चर्चिका माया सन्तानवनवासिनी।
ध्यानगम्या ध्यानवश्या सर्ववश्या सनातनी।।46।।
छिन्ना कुल्ला तथा श्यामा छिन्नपाशा सुपाशिका।
नित्या नित्यवती निन्दा तन्त्रिका तान्त्रिकप्रिया।।47।।
नित्यानन्दमयी देवी नित्यानन्दास्वरूपिणी।
ज्ञानध्यानप्रकाशा च चेतनारूपधारिणी।।48।।
कामुका कामना कामा सर्वकामस्वरूपिणी।
शुचीमुखी कालमुखी लोलाक्षी लोललोचना।।49।।
तारुण्या मालती गीता शीता शीतवती तथा।
सूर्यस्वरूपा सूर्या च सूर्यमण्डलवासिनी।।50।।
सूर्यात्मिका सूर्यरूपा सूर्यपूजापरायणा।
सूर्यकार्यकरा चैव सूर्यलोकप्रदायिनी।।51।।
सर्वशृंगारवेशा च सर्वश्रृंगारकारिणी।
मातंगिनी करिगति हंसी संसारतारिणी।।52।।
विश्वमाता दया दीना चोपेन्द्रा चन्द्रमण्डला।
वृक्षस्था वृक्षरूपा च वृक्षमध्याग्रवासिनी।।53।।
वृक्षमूलस्थिता देवी पातालतलवासिनी।
हरिणी हारिणी हारा हालाहलपरायणा।।54।।
यज्ञप्रिया यज्ञरता जपयज्ञपरायणा।
यज्ञमाता यज्ञलोला यज्ञकर्मपरायणा।।55।।
यज्ञांगी यज्ञशीला च यज्ञकर्मप्रसाधिनी।
यज्ञशीला यज्ञकला याज्ञिका यज्ञभुक्प्रिया।।56।।
यज्ञानन्दमयी नित्या परमामृतरंजिनी।
यज्ञमना यज्ञमयी यज्ञसाधनतत्परा।।57।।
नर्मदा क्षोभणी शोभा प्रेमा चैव प्रियम्बदा।

सुखिनी सुखदात्री च दुःखदारिद्रनाशिनी।।58।।
जयिनी जयदात्री च जगदानन्दकारिणी।
वीरभद्रा सुभद्रा च वीरासनसदाश्रया।।59।।
वीरमाता वीरवती वीरवैश्या सनातनी।
लीलावती नीलदेहा नीलांजनासमप्रभा।।60।।
जननी जानकी जाया जगती सर्वमंगला।
मायालंकृतविद्या च तीक्ष्णदैत्यविनाशिनी।।61।।
महिषासुरनाशा च रक्तवीजविनासिनी।
मधुकैठभहन्त्री च चण्डमुण्डविनासिनी।।62।।
ललिता लवंगिनी लाक्षा लाक्षारुणाविलासिनी।
लीलावती जगद्रुपा चित्ररूपा च चित्रिणी।।63।।
चिन्ताचिन्त्या बालका च बालरूपा बलाबला।
महाबला बलाका च गलवृद्धिप्रदायिनी।।64।।
राज्यप्रिया राज्यमाता राजराजेश्वरी परा।
राज्यदा बलदा देवी राज्यभोगविधायिनी।।65।।
सर्वराज्येश्वरी राजा राजभोगप्रदायिनी।
सर्वविद्यामयी देवी विद्याविद्यास्वरूपिणी।।66।।
महाशंखेश्वरी मीना मत्स्यगन्धा महोदया।
लम्बोदरी च लम्बोष्ठी ललजिह्वा तनूदरी।।67।।
निम्नोदरी लक्षनामा लम्बश्यामा त्वलम्बुका।
अतिलम्बा महालम्बा महालम्बप्रदायिनी।।68।।
लम्बहा लम्बाशक्तिश्च लम्बास्था लम्बपूजना।
विलम्बा च सुलम्बा च महालम्बा वृहत्तनुः।।69।।
चण्डघण्टा महाघण्टा घण्टानादपिया सदा।
राज्यप्रिया राज्यरता राज्यसम्पद नाशिनी।।70।।
रमा रामा सुरामा च रमणीया सुभाविनी।
सुरम्या रम्यदा रम्भा रम्भोरू रामवल्लभा।।71।।
रामप्रिया रामकरी रामांगी रमणी रतिः।
रतिप्रिया रतिमति रतिसेव्या रतिप्रिया।
सुमतिः कुमतिः शोभा विशोभा शोकनाशिनी।।72।।
सुशोभा च महाशोभा त्वतिशोभातिशोभिता।

शोभनीया महालोभा सुलोभा लोभवर्द्धिका।।73।।

लोभांगि लोकवन्द्या च लोभार्चा लोभनाशका।

लोभप्रिया महालोभा लोभनिन्दकनिन्दका।।74।।

लोभांगि रागिणी गन्धा विगन्धा गन्धनाशिनी।

पद्मा पद्मावती प्रेमा पद्मगन्धा सुगन्धिका।।75।।

पद्मालया पद्मगन्धा पद्मवाहकवाहना।

पद्मस्था पद्मवन्द्या चपद्मक्रीडा सुरंजिका।।76।।

पद्मान्तका पद्मवहा पद्मप्रेमा प्रियंकरी।

पद्मनिन्दकनिन्दा च पद्मसन्तोषवाहना।।77।।

रक्तोत्पलधरा देवी रक्तोत्पलप्रिया सदा।

रक्तोत्पलसुगन्धा च रक्तोत्पलनिवाशिनी।।78।।

रक्तोत्पलगृहा माला रक्तोत्पलमनोहरा।

रक्तोत्पलसुनेत्रा च रक्तोत्पलस्वरूपधृक्।।79।।

नारी नारायणी नीला नारायणगृहप्रिया।

नारायणस्य देहस्था नारायणमनोहरा।।80।।

नारायणांगसम्भूता नारायणतनुप्रिया।

वैष्णवी विष्णुपूज्या च वैष्णवादिविलासिनी।।81।।

विष्णुपूजकपूज्या व वैष्णवे संस्थिता तनुः।

हरपूज्या हरश्रेष्ठा हरस्य वल्लभा क्षमा।।82।।

संहारी हरदेहस्था हरपूजनतत्परा।

हरदेहसमुद्भूता हरांगवाहिनी कुहुः।।83।।

हरिपूजकपूज्या च हरवन्धनतत्परा।

हरदेहसमृद्भूता हरक्रिडा सदा रतिः।।84।।

असंगासंगरहिता चासंगा संगनाशिनी।

दुर्गनेहान्तका दुर्गारूपिणी दुर्गरूपिणी।।85।।

प्रेतप्रिया प्रेतकरा प्रेतदेह-समुद्भवा।

प्रेतांगसंगिनी प्रेता प्रेतदेह-विवर्द्धिका।।86।।

डाकिनी योगिनी दैत्या कालरात्रिप्रिया सदा।

कालरात्रि महाकाली कृष्णदेहा महातनुः।।87।।

कृष्णांगि कुलिशांगि च वज्रांगी वज्रारूपाधृक्।

नानारूपधरा धन्या षट्चक्रविनिवाशिनी।।88।।

मूलाधारनिवासा च मूलाधाररस्थिता सदा।
वायुरूपा महारूपा वायुमार्गविलासिनी।।89।।
वायुयुक्ता वायुकरा वायुपुरकपूरिता।
वायुरूपधरा देवी सुषुम्नामार्गवाहिनी।।90।।
देहस्था देहरूपा च देहस्था च सुदेहिका।
नाडीरूपा च नाडीस्था नाडीस्थाननिवासिनी।।91।।
उत्पत्तिस्थितिसंहर्त्री प्रलयापदनाशिनी।
महाप्रलययुक्ता च सृष्टिसंहारकारिणी।।92।।
स्वाहा स्वधा वषट्कारा हव्यकाव्यप्रिया सदा।
हव्यस्था हव्यभोक्त्री च हव्यदेहसमुद्भवा।।93।।
हव्यक्रीडा कामधेनुस्वरूपा रूपसम्भवा।
सुरभी नन्दिनी भीमा यज्ञांगी यज्ञ सम्भवा।।94।।
यज्ञस्था यज्ञदेहा च योनियोगनिवासिनी।
अयोनिजा सती सत्या चासती कुलरातनुः।।95।।
अहल्या गौतमी गम्या विदेहा देहनाशिनी।
गान्धारी द्रौपदी दूती शिवदूति शिवप्रिया।।96।।
त्रिपुरेशी पौर्णमासी पंचमी च चतुर्दशी।
पंचदशी तथ षष्ठी नवमी चाष्टमी तथा।।97।।
एकादशी द्वादशी च वाररूपा भयंकरी।
संक्रान्तिः सौररूपा च ऋतु-रूपा ऋतुप्रिया।।98।।
मुहूर्ता परमा मासा घटिका दण्डरूपघृक्।
यामरूपा महाकाली सन्ध्या सन्ध्यांगनाशिनी।।99।।
त्रियामा यमरूपा च यमकन्या यमानुजा।
मातंगी कुलरूपा च कुलीनकुलनाशिनी।।100।।
कुलकाला कृष्णकृष्णा कृष्णदेहा च कुब्जिका।
कुलीना कुलवत्यम्बा कुलशास्त्रमयी परा।।101।।
नदी कान्ता रमा कान्तिः शान्तिरूपा शान्तिदा।
आशा तृष्णा क्षमा क्षोभा क्षोभणा च विलासिनी।।102।।
शची मेधा धरा तुष्टिधृतिस्मृतिश्रुतिमयी।
दिवा रात्रिश्च सन्ध्या च महासन्ध्या प्रदोशिका।।103।।
कुरुकुल्वा छिन्नमस्ता नागयज्ञोपवीतिनी।

वारुणी वासुनी चैव विशालाक्षी च कोटरा।।104।।

प्रत्यंगिरा महाविद्या चाजिता जयदायिनी।

जया च विजया चैव महिषासुरनाशिनी।।105।।

मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी।

निशुम्भशुम्भहन्त्री च रक्तवीजक्षयंकरी।।106।।

काशीवासविलासा च मथुरा माधवी जया।

अपर्णा चण्डिका चण्डी मृडानी चण्डिका कला।।107।।

शुक्लकृष्णा रक्तवर्णा शारदेन्दु कलावती।

रुक्मिणी राधिका चैव भैरवी छिन्नमस्तका।

तारा काली च बाला च त्रिपुरासुन्दरी तथा।।108।।

दुर्गा वाणी विशालाक्षी शब्दब्रह्ममयी सदा।

तानि तानि च नामानि भवान्याः परिकीर्तिताः।।109।।

।। इति श्रीविश्वसारतन्त्रे हरपार्वतीसंवादे श्रीमदन्नूर्णादिव्यसहस्रनामस्तोत्रम् सम्पूर्णम्।।

(घ) अथ पाठफलम् -

अष्टाधिकसहस्राणि देव्या नामानुकीर्तनम्।

महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नात्र संशयः।।1।।

ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।

पातकानि च नश्यन्ति पठनान्नात्र संशयः।।2।।

प्रपठन् वा स्मरन्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।

पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनाथी लभते धनम्।।3।।

अणिमादिविभूतीनामीश्वरः क्षितिमण्डले।

कुवेरसमतां वित्ते प्रतापे सूर्यरूपधृक्।।4।।

स्तोत्रमात्रस्य पाठेन पलायन्ते महाप्रदः।

दुःस्वप्ननाशनं स्तोत्रं सर्वसौभाग्यवर्धनम्।।5।।

प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा नित्यं तद्गतमानसः।

अश्वमेधायुतं पुण्यं लभते नात्र संशयः।।6।।

स्तवराजं इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः।

पठेद्वा पाठयेद्वापि साक्षादीशो न संशयः।।7।।

मारणं स्तम्भनंचैव मोहमाकर्षणं तथा।

शत्रुच्चाटनकंचैव जायन्ते सर्वसिद्धयः।।8।।

धृत्वा सुवर्णमध्यस्थं सर्वकामफलप्रदम्।

सिंहराशौ गुरौ याते कर्कटस्थे दिवाकरे।।9।।

मीनराशौ गुरौ याते लिखेद् यत्नेन साधकः।

कुमारीं पूजयित्वा च पठेत् स्तोत्रं समाहितः।।10।।

सर्वान् कामानवाप्नोति यावन्मनसि संस्थितम्।

सभायां विजयो नित्यं जायते नात्र संशयः।।11।।

विना पूजां विना ध्यानं विनाजापैर्महेश्वरी।

पाठमात्रेण सिद्धिः स्यात् सत्यमेव न संशयः।।12।।

अष्टाम्याम्वा नवम्यांच चतुर्दस्यामथापि वा।

यः पठेत्साधकश्रेष्ठः स ईशो नात्र संशयः।।13।।

यः पठेत्प्रातरुत्थाय पूजाकाले विशेशतः।

ऐश्वर्यं विपुलां लक्ष्मीं लभते नात्र संशयः।।14।।

न दद्यात्कृपणे मूर्खे गुणशीलविवर्जिते।

देयं शिष्याय शान्ताय गुरुभक्तियुताय च।।15।।

कुलीनाय महोत्साय दान्ताय दम्भवर्जिते।

गुह्याद् गुह्यतरं ह्येतन्न प्रकाश्यं कदाचन।।16।।

मातृजारसमं ज्ञात्वा गोपयेत् स्तवराजकम्।

सत्यं सत्यं महेशानि गोप्यं सर्वागमेषु च।।17।।

।। इति श्रीविश्वसारतन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे श्रीमदन्नपूर्णादेव्याः सहस्रनामस्तोत्रपाठफलं समाप्तम्।।

।। श्रीमदन्नपूर्णार्पणमस्तु।।

।। तत्सदिति।।

इस सहस्रनामस्तोत्र से कुछ बोधप्रश्न आपके लिए दिये जारहे हैं।

बोधप्रश्न- 3

(क) इस स्तोत्र में प्रयुक्त मनु शब्द का क्या अर्थ है?

(ख) कामाख्या शब्द का क्या अर्थ है?

(ग) सर्वानन्दकरी किसे कहा गया है?

(घ) क्षेमंकरी शब्द का क्या अर्थ है?

(ङ) स्तेयं पद का क्या अर्थ है?

(च) भारतवर्ष में कितनी पुरियाँ हैं?

2.5 सारांश-

इस इकाई में श्री आदिशंकराचार्यजी द्वारा विरचित दो अन्नपूर्णास्तोत्र के विषय में आपको परिचय कराया गया। इसके पाठ का महत्व एवं प्रयोजन विभिन्न उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट कराया गया। इस दोनों से सम्बद्ध कुछ बोधप्रश्न भी आपके लिए दिये गये हैं जिनका उत्तर भी यथास्थान दिया गया है। इसके बाद विश्वसारतन्त्र नामक ग्रन्थ जो आज अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें शिवपार्वती संवाद है। इस संवाद में ही प्रसंगतः अन्नपूर्णा सहस्रनाम दिया गया है जो आपके लिए सादर प्रस्तुत है। इसके महत्व के विषय में यह लिखा है कि इस स्तोत्र से बढकर अन्नपूर्णा जी को प्रसन्न करने बाला दुसरा कोई भी स्तोत्र नहीं है इसी

2.6 शब्दावली

शशांक - चन्द्रमा

अर्धेन्दुमौलि - शिव

आली कदम्ब - सखियों का समूह

शम्भोरुरस्थल - शिवजी का हृदयस्थान

नतोऽस्मि - प्रणाम करता हूं

प्रभाते - प्रातः काल में

मनसेप्सितानि - मनोरथों को

प्रालेयाचल - हिमालय

रिपुक्षयकरी - शत्रुों का संहार करनेवाली

चन्द्रार्कानल - चन्द्र, सूर्य, अग्नि,

चण्डिका - प्रचण्ड कोप से युक्त

2.7 बोधप्रश्न के उत्तर- 1

(क) यह अन्नपूर्णास्तोत्र आदिशंकराचार्यजी द्वारा विरचित है।

(ख) अन्नपूर्णेश्वरी भगवती पार्वती है।

(ग) काशी में विश्वेश नाम के ज्योतिर्लिंग है।

(घ) शिवजी काशी का परित्याग नही करते इसलिए इसे अविमुक्त कहा गया है।

(ङ) सर्वप्रथम भिक्षा माता से ली जाती है।

(च) यह स्तोत्र बृहत्स्तोत्ररत्नाकरग्रन्थ से लिया गया है।

बोधप्रश्न के उत्तर- 2

(क) इस स्तोत्र में दस श्लोक हैं।

(ख) महेशवनिता श्रीअन्नपूर्णाजी के लिए कहा गया है।

(ग) अग्नि के पत्नी का नाम स्वाहा हैं।

(घ) चरणाम्बुज का अर्थ चरणकमल है।

(ङ) हिमशैलकन्या पार्वती है।

(च) निगम का अर्थ वेद होता है।

बोध प्रश्न के उत्तर- 3

(क) मनु शब्द का अर्थ मन्त्र है।

(ख) कामाख्या, कामं मनोरथं आख्याति, प्रापयति इति कामाख्या।

(ग) सर्वानन्दकरी, अर्थात्- सभी को आनन्द प्रदान करे वाली।

(घ) क्षेमंकरी का अर्थ कल्याण करने वाली।

(ङ) स्तेय शब्द का अर्थ चोरी करना होता है।

(च) भारतवर्ष में सात पुरियाँ हैं।

2.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

1.बृहत्स्तोत्ररत्नाकरः

2. पारस्करगृह्यसूत्रम्

3.विश्वसारतन्त्रम्

4.श्रीरामचरितमानसः

5.स्तोत्ररत्नाकरः

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. काशीपुराधीश्वरी का वर्णन करें।
2. अन्नपूर्णासहस्रनाम पाठ के महत्व पर प्रकाश डालें।

इकाई – 3 देव्यापराध क्षमापन स्तोत्र

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र परिचय
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची
3.8 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना-

इससे पूर्व की इकाई में आपको अन्नपूर्णास्तोत्र से सम्बद्ध कुछ विषयों से अवगत कराया गया। संभवतः आप परिचित हो गये होंगे। प्रस्तुत इस इकाई में देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र के विषय में आपको जानकारी दी जा रही है।

3.2 उद्देश्य -

यह क्षमापनस्तोत्र न केवल दुर्गापाठ का ही अंग है, अपितु कही भी किसी भी मन्दिर में भगवती को प्रसन्न करने के लिए इस स्तोत्र का पाठ आप कर सकते हैं। इससे सम्बद्ध कुछ बातें इस स्तोत्र के परिचय में आपसे कही जायेगी जो अत्यन्त उपादेय एवं आवश्यक हैं।

3.3 खण्ड-1 देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र परिचय

सर्वप्रथम इस स्तोत्र के नाम पर कुछ विचार करते है कि यह देव्यापराधक्षमापनस्तोत्र है या देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र है। क्योंकि बहुत जगह देव्यापराधक्षमापन भी लिखा मिलता है। देखिये! इसके लिए हमें संस्कृत की शरण में जाना पड़ेगा। वस्तुतः व्याकरण की दृष्टि से एवं इसका शुद्धरूप ‘‘देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र ही है।’’ क्योंकि यहां देव्याम् अपराधः इति देव्यपराधः ऐसा विग्रह करेगें। देव्याम् में सप्तमी विभक्ति है। जिसे वैषयिक सप्तमी वैयाकरण लोग बताते हैं। हम विशेष व्याकरण की प्रक्रिया को जटिलता में न समझाते हुए इतना ही कहेंगे कि देवी विषयक जो अपराध है अर्थात् देवी के प्रति हमसे जो अपराध हुआ है वह क्षम्य हो उसके लिए हम प्रर्थना करते है। इसका भाव यही है। देवी$अपराध में यण् होकर देव्यपराध रूप बनेगा। यदि देव्यापराध करेगें तो विग्रह होगा देव्याः अपराध अर्थात् देवी का अपराध और जब देवी का ही अपराध है तो क्या वे क्षमा याचना आपसे करगी ? यह विलकुल ही निराधार अर्थ है। अतः इसे अवश्य ही ध्यान में रखे कि देव्यपराघ ही शुद्ध प्रयोग है।

दूसरी बात यह है कि यह स्तोत्र दुर्गापाठ के अन्त में पढा जाता है। नवरात्रि के समय प्रायः सर्वत्र देवी की उपासना. अनुष्ठान. यज्ञ आदि होते रहते है। यहॉ तक कि न केवल सार्वजनिक स्थान पर हि ये सब धर्माचरण होते हैं अपितु प्रत्येक घर में भी लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार स्वयं दुर्गापाठ करते हैं एवं दुर्गापाठ के अन्त में इस देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र का अत्यन्त श्रद्धा के साथ पाठ करते हैं।

यहॉ एक बात ओर ध्यान देने योग्य है जो काफी विवादास्पद है जिसका समुचित उत्तर इस इकाई में आपको बताया जायेगा। कुछ लोग ही नही अपितु पढे लिखे लोग या कुछ विद्वान लोग भी इस स्तोत्र को आदिशंकराचार्य की रचना मानते है। क्योंकि आचार्य शंकर ने बहुत ही स्तोत्रों की रचना की हैं। इस क्रम में लोग भी इसे इन्ही की रचना बताते है। यही नही इस स्तोत्र के अन्त में भी प्रकाशित ग्रन्थो में भी लिखा है कि इति श्रीशंकराचार्य पिरचित क्षमापन स्तोत्रं सम्पूर्णम् । लेकिन आप विचार करे कि शंकराचार्य जी मात्र 32बर्ष तक ही इस भारतभूमि पर रहे। ये अलौकिक मेधा सम्पन्न पुरुष थे। इनकी

अलौकिक विद्वता सर्वातिशायिनी शेमुषी असाधारणतर्कपटुता को देखकर किसी भी आलोचक का मस्तक गौरव से इनके सामने नत हुए बिना नही रहता। इनका जन्म 788ई.में एवं निर्वाण काल 820ई.में ग्रन्थकारों ने माना है। 32वर्ष की स्वल्प आयु में आचार्य ने वैदिकधर्म के उद्धार तथा प्रतिष्ठा का जो महनीय कार्य सम्पादन किया वह अद्वितीय है। इनके विषय में एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसे आप भी जान लीजिऐ।

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।

षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्।।

ये शंकर के अवतार थे। इन्होंने काशी को अपना कर्म क्षेत्र बनाया। जब ये 32वर्ष की स्वल्प अवस्था में ही शरीर छोड दिये तब स्तोत्र में प्रयुक्त है- मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।

इसकी संगति कैसे लगेगी ? इस श्लोक में कहा गया है कि है गणेश जननी! मैने अपनी पचासी वर्ष से अधिक आयुबीत जाने पर विविध विधियों द्वारा पूजा करने से घबडाकर सभी देवों को छोड दिया है। यदि शंकराचार्य जी 85वर्ष के उपर जीवित रहते तब तों यह बात सार्थक होती- लेकिन वे तो 32वर्ष तक ही रहे। इसीलिए यह स्तोत्र शंकराचार्य जी द्वारा विरचित नही है। अन्यथा वे अपने को इस प्रकार कैसे कहते।

अव जिज्ञासा होती है कि इसके रचयिता आचार्य शंकर नही है तो कोन है? आइए इसपर हम कुछ चर्चा करते है।

यह स्तोत्र अत्यन्ततपोनिष्ठ स्वामी विद्यारण्य जी द्वारा रचित है। मध्यकालीन भारत के धार्मिक इतिहास में विद्यारण्य स्वामी का नाम अत्यन्त महत्त्व रखता है। आप अपने समय के एक नितान्त तपोनिष्ठ सन्यासी थे, जिन्होनें अपना पूरा समय अद्वैत-वेदान्त के प्रतिपादन तथा प्रचार में व्यतीत किया। स्वामी शंकराचार्य जी द्वारा प्रतिष्ठित तथा धार्मिक जनता के द्वारा महनीय मठों में सवसे प्रसिद्ध श्रृंगेरीमठ में शंकराचार्य के अत्यन्त उच्च पद पर विराजमान थे।क्योंकि श्रृंगेरीमठ से सम्बद्ध बहुत से शिलालेखों में आपका बढी श्रद्धा तथा आदर से उल्लेख पाया जाता है। लोगों के हृदयपटल पर श्रृंगेरीमठाधीशों के प्रति जो आज भी इतने सत्कार की छाप पड़ी हुई है उसका विशेष कारण आप जेसे विमल प्रतिभासम्पन्न प्रकाण्डपाण्डित्यमण्डित तपोनिष्ठ सन्यासी का प्रातःस्मरणीय चरित्र ही है।

ये आचार्य सायण के ज्येष्ठभ्राता थे। जिनका नाम माधवाचार्य था। माधव ने अपने जीवन के मध्यार्किकाल में विजयनगर के महाराजाधिराजो के प्रधानमन्त्री तथा गुरू के गौरवपूर्ण पद पर रहकर अत्यन्त ही कर्मप्रधान जीवन को बिताया। परन्तु जब जीवन के सन्ध्याकाल का आभास मिलने लगा तब इन्होंने गृहस्थाश्रम को छोडकर भारतीय धार्मिक संस्कृति की जागृति की मंगलकामना से प्रेरित होकर नितान्त शान्ति के साथ अपना जीवन बिताने का निश्चय किया। राज काज की झंझटों से ऊबकर शान्ति के साथ जीवन बिताने की बात स्वभाविक ही है।

ये सन्यासी बनकर श्रृंगेरीमठ के प्रधान शंकराचार्य जब आसीन हुए तब इनका नाम विद्यारण्य स्वामी पड़ा। अर्थात् माधवाचार्य का ही सन्यास दीक्षा ग्रहण करने पर विद्यारण्य नाम पड़ा।

विद्यारण्य स्वामी ने नब्बे साल की आयु में अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया। यहां देव्यपराधक्षामपनस्तोत्र स्वामी विद्यारण्य के द्वारा ही रचित माना जाता है। इसमें स्वामी जी ने अपने को पच्चासी से भी अधिकवर्ष बीत जाने पर, हे माता! तुम्हारी कृपा यदि मुझ पर न होगी तो है लम्बोदर जननी! निरालम्ब में किसकी शरण में जाऊँगा?

परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्।।

इसप्रकार इसके रचयिता स्वामी विद्यारण्यजी है। इस श्लोक की संगति भी अच्छीतरह बैठ जाती है। यह बात आचार्य बलदेव उपाध्यायजी द्वारा रचित आचार्य सायण और माधव नामक ग्रन्थ में वर्णित है। यदि विशेष जिज्ञासा हो तो उसे भी आप देख सकते है। अस्तु!

इसप्रकार इसस्तोत्र के रचनाकार का पता हमलोगों ने लगाया। आप देखे! इस क्षमापन स्तोत्र का पाठ लोग क्यों करते है? इसपर भी कुछ विचार किया जाय।

क्षमापन शब्द में क्षमुष् सहने धातु है। जिससे पुक आदि आगम करके ल्युट् प्रत्यय करने पर क्षमापन शब्द बनता है। या क्षमा को नामधतु मानकर क्षमां यापयति प्रापयति वा क्षमापनम्। जिसका अर्थ है जो क्षमा को प्रदान करे वहीं क्षमादात्री है। व्यक्ति से जाने या अनजाने में जब अपराध होता है तो वह क्षमा मांगता है। क्षमा मांगना व्यक्ति की ईमानदारी एवं हृदयनैर्मल्य को व्यक्त करता है। संसार में लोग गलती करते है, आगे भी करते रहते है, लेकिन उन्हे अपनी गलती का एहसास नहीं होता है, जिसका परिणाम भयानक होता है! और जो व्यक्ति अपनी गलती को समझकर तन्निमित्त क्षमा याचना कर लेता है तो उससे दुसरी बार गलती होने की संभावना कम हो जाती है।

यदि देखा जाये तो गलती भी मनुष्य से ही होती है ओर क्षमायाचना का क्रम भी मनुष्य में ही होता है। यह क्षमायाचना या क्षमादान का भाव पशुओं में नहीं पाया जाता। अतः सच्चा मनुष्य वही है जो गलत कार्य करके क्षमा अवश्य मांगले। तथा दूसरी बार बह गलतकार्य न करे। मनुष्य से गलती अज्ञान के कारण ही होती है। रही बात क्षमायाचना की तो संसार में व्यक्ति द्वारा कियेगये अपराध को क्षमा करने के लिए माता के अतिरिक्त कोई भी पूर्णसमर्थ नही हो सकता! क्योंकि माता अपने सामने श्रद्धावनत पुत्र को देखकर उसके सारे अपराधों को भूलकर गले से लगा लेती है। अतः यहां भी स्वामी विद्यारण्य जी माता से ही क्षमा की याचना करते है।

विशेष बातें आपको स्तोत्र के हिन्दी अनुवाद में स्वतः ज्ञात हो जायेगी अतः बहुत कुछ न कहते हुए सीधे स्तोत्र पाठ की ओर आपको ले चलते है जिसका हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत है जिससे श्लोकों का अर्थ स्वतः स्पष्ट हो जायेगा।

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो

न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्।।1।।
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि! सकलोद्धारिणि शिवे!
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।2।।
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि! बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे!
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।3।।
जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि! द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।।4।।
परित्यक्ता देवा विविधविधिसेवाकुलतया
मया पंचाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्।।5।।
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातंको रंको विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जनीते जननि! जपनीयं जपविधौ।।6।।
चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि! त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्।।7।।
न मोक्षस्याकांक्षा भवविभववांछापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि! सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि! जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव! शिव! भवानीति जपतः।।8।।

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः

किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।

श्यामे त्वमेव यदि किंचन मय्यनाथे

धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव।।9।।

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं

करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि

नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः

क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति।10।।

जगदम्बा विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।

अपराधपरम्परावृतं न हि माता समुपेक्षते सुतम्।।11।।

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।

एवं ज्ञात्वा महादेवि! यथायोग्यं तथा कुरु।।12।।

।।इति श्रीविद्यारण्यकृतं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्।।

भावार्थ-

हे मातः! मैं तुम्हारा मन्त्र, यन्त्र, स्तुति, आवाहन, ध्यान, स्तुतिकथा, मुद्रा तथा विलाप कुछ भी नहीं जानता; परन्तु सब प्रकारके क्लेशोंको दूर करनेवाला आपका अनुसरण करना(पीछे चलाना) ही जानता हूॅ ।1। सबका उद्धार करनेवाली हे करुणामयी माता! तुम्हारी पूजाकी विधि न जाननेके कारण, धनके अभावमें आलस्यसे और विधियोंका अच्छी पूरा तरह न कर सकनेके कारण, तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेमें जो भूल हुई हो उसे क्षमा करो, क्योंकि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती।2। मॉं! भूमण्डल में तुम्हारे सरल पुत्र अनेकों हैं पर उनमें एक मैं विरल ही बडा चंचल हूॅ, तो भी हे शिवे! मुझे त्याग देना तुम्हें उचित नहीं क्योकि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती।3। हे जगदम्ब! हे मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा नहीं की अथवा तुम्हारे लिये प्रचुर धन भी समर्पण नहीं किया; तो भी मेरे ऊपर यदि तुम ऐसा अनुग्रह रखती हो तो यह सच ही है कि पूत तो कुपूत हो जाता है पर माता कुमाता नहीं होती।4। हे गणेशजननि! मैंनं अपनी पचासी वर्षसे अधिक आयु बीत जानेपर विविध विधियोंद्वारा पूजा करनेसे घबडाकर सब देवोंको छोड दिया है, यदि इस समय तुम्हारी कृपा न हो तो मैं निराधार होकर किसकी शरणमें जाऊॅं ?।5। हे माता अपर्णे! तुम्हारे मन्त्राक्षरोके कानमें पडते ही चाण्डाल भी मिठाईके समान सुमधुरवाणीसे युक्त बडा भारी वक्ता बन जाता है ओर महादरिद्र भी करोडपति बनकर चिरकालतक निर्भय विचरता है तो उसके जपका अनुष्ठान करनेपर जपनेसे जो फल होता है, उसे कौन जान सकता है?।6। जो चिताका भस्म रमाये हैं, विष खाते हैं, नंगे रहते है, जटाजूट बॉंधे हैं गलेमें सर्पमाल पहने हैं, हाथमें खप्पर लिये हैं, पशुपति और भूतोंके स्वमी हैं, ऐसे शिवजीने भी जो एकमात्र जगदीश्वरकी पदवी प्राप्त की है वह हे भवानि! तुम्हारे साथ विवाह होनेका ही फल हें।7। हे चन्द्रमुखी माता! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, सांसारिक वैभवकी भी लालसा नहीं है, विज्ञान तथा सुखकी भी अभिलाषा नहीं है, इसलिये मैं तुमसे यही

मॉगता हूॅ कि मेरे सारी आयु मृडानी, रुद्राणी, शिव-शिव, भवानी आदि नामोंके जपते-जपते ही बीते।8। हे श्यामे! मैंने अनेकों उपचारोंसे तुम्हारी सेवा नहीं की (यहीं नहीं, इसके विपरीत) अनिष्टचिन्तनमें तत्पर अपने वचनोंसे मैंने क्या नहीं किया ?(अर्थात् अनेकों बुराइयॉ की हैं) फिर भी मुझ अनाथपर यदि तुम कुछ कृपा रखती हो तो यह तुम्हें बहुत उचित है, क्योंकि तुम मेरी माता हो।9। हे दुर्गे! हे दयासागर महेश्वरी! जब मैं किसी विपत्तिमें पडता हूॅ तो तुम्हारा ही स्मरण करता हूॅ, इसे तुम मेरी धृष्टता मत समझना, क्योंकि भूखेप्यासे बालक अपनी मॉ को ही याद किया करते हैं।10। हे जगज्जननी! मुझपर तुम्हारी पूर्ण कृपा है, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? क्योंकि अनेक अपराधोंसे युक्त पुत्रको भी माता त्याग नहीं देती।11। हे महादेवी! मेरे समान कोई पापी नही है और तुम्हारे समान कोई पापनाश करनेवाली नहीं है यह जानकर जैसा उचित समझो वैसा करो ।12।

इस स्तोत्र पाठ के बाद अब आपसे कुछ प्रश्न पूछे जायेंगे जिनका उत्तर आपसे अपेक्षित है।

बोध प्रश्न-

(क) देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र किसके द्वारा रचित है ?

(ख) विद्यारण्य स्वामी का पूर्वनाम क्या था ?

(ग) 8वर्ष में ही चारो वेदों का अध्ययन किसने किया था ?

(घ) सायण ओर माधव ग्रन्थ के लेखक कौन है ?

(ङ) पापघ्नी का क्या अर्थ है ?

(च) मत्समः पातकी नास्ति कौन कह रहा है ?

अब आपके लिए एक छोटा सा और क्षमापन स्तोत्र प्रस्तुत हैं। इस स्तोत्र में भी क्षमा की याचना की गई है। यह स्तोत्र तो दुर्गापाठ की पुस्तक में भी है। इस स्तोत्र का पाठ भी दुर्गापाठ के अन्त में अवश्य ही किया जाता है। इसके केवल 8ही श्लोक हैं।

स्तोत्र पाठ

(1) अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशंमया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमश्व परमेश्वरी।।
(2) आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि।।
(3) मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मयादेवि परिपूर्णं तदस्तु मे।।
अपराधं शतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत्।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः।।

यहां स्तोत्र इतना सरल है कि इसका हिन्दी अनुवाद यहॉ नहीं दिया जा रहा है। इसमे से भी कुछ बोधप्रश्न दिये जारहे है। जिनका समाधान आपसे अपेक्षित है।

बोधप्रश्न-

(क) अपराध सहस्राणि का क्या अर्थ है ?

(ख) स्तोत्र में अनुकम्प्यः कौन है ?

(ग) इस स्तोत्र में कितने श्लोक हैं ?

(घ) आवाहनं शब्द का क्या अर्थ है ?

(ङ) इसमें कामेश्वरि किसे कहा गया है ?

इन बोधप्रश्नों का उत्तर आगे दिया जारहा है। अब आपके लिए इस इकाई का सारांश प्रस्तुत है।

3.4 सारांश

प्रस्तुत इस इकाई में देव्यपराधक्षमापन स्तोत्र के विषय में आपको ज्ञान कराया गया। इस स्तोत्र के रचनाकार के विषय में जो विद्वानो में मतभेद आदि हैं उसे भी युक्तिपूर्वक एवं प्रामाणिक रूप से दूर किया गया। इसके नाम का अर्थ एवं प्रयोजन भी आपको बता दिया गया। इसके साथ ही एक ओर छोटा सा स्तोत्र क्षमा याचना से सम्बधित आपको बताया गया। जिसका पाठ दुर्गासप्तशतीस्तोत्रपाठ के अन्त में अवश्य किया जाता है। यह सभी के लिए अनिवार्य हे। श्लोक इतने छोटे से अनुष्टुप छन्द में है कि शीघ्र ही आपको कण्ठ हो जायेगा इस प्रकार अपने अन्यान्य अंगो के साथ यह इकाई भी पूर्ण होती है। इसका विस्तृत अध्ययन इसके मूल में विद्यमान है।

3.5 शब्दावली-

श्वपाकः-चाण्डाल

जल्पाकः-अच्छी तरह बोलने वाला

गरलमशनम्-विष (जहर) खाने बाले भगवान शिव

मनुवर्ण-मन्त्रवर्ण

भुजगपतिहारी-गले में सर्पो को धारण करने वाला

रंक- महादरिद्र

विविधोपचारैः- अनेक उपचारों से

आपत्सु-विपत्ति में

शठत्वं- दुष्टता

पापघ्नी-पापों का नाश करनेवाली

3.6 बोधप्रश्नों के उत्तर-

प्रथमखण्ड-

क. यह स्तोत्र स्वामी विद्यारण्य जी द्वारा विरचित है।

ख. विद्यारण्यस्वामी का पूर्वनाम आचार्य माधव था।

ग. 8वर्ष की अवस्था में ही चारोंवेदों का अध्ययन आदिशंकराचार्य जी ने किया था।

घ. सायण और माधव ग्रन्थ के लेखक आचार्यबलदेव उपाध्याय है।

ङ. पापघ्नी का अर्थ पापों का नाश करने वाली।

च. यह प्रार्थना करने वाला या उपासक कहता है।

द्वितीयखण्ड-

बोधप्रश्नों के उत्तर-

क. अपराध सहस्राणि का तात्पर्य हजारो अपराधों से है।

ख. अनुकम्प्यः स्तुति करने वाला है।

ग. इसमें मात्र 8ही श्लोक है।

घ. आवाहन का अर्थ हैं किसी को बुलाना।

ङ कामेश्वरि माता दुर्गा के लिए कहा गया है।

3.7 सन्दर्भग्रन्थसूची

ग्रन्थनाम-

1. स्तोत्ररत्नावली - गीताप्रेस गोरखपुर
2. बृहत्स्तोत्ररत्नावली - गीताप्रेस गोरखपुर
3. आचार्यसायण और माधव - बलदेव उपाध्याय
4. श्रीदुर्गासप्तशती - गीताप्रेस गोरखपुर

3.8 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. दुर्गाक्षमापन स्तोत्र का तात्पर्य लिखें।
2. देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र के किन्ही चार श्लोको का अर्थ लिखें।

इकाई – 4 शिवपंचाक्षर एवं रूद्राष्टक स्तोत्र

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 स्तोत्र परिचय (शिवपंचाक्षर)

4.3.1 द्वादशज्योतिर्लिंग

4.3.2 रूद्राष्टक स्तोत्र

4.4 श्री रूद्राष्टकम्

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में अन्नपूर्णा स्तोत्र से सम्बद्ध विविध विषयों की जानकारी आपको प्रदान की गई।

प्रस्तुत इस इकाई में शिवपंचाक्षर एवं रुद्राष्टक-स्तोत्र के विषय से आप अवगत होंगे। इन दोनों स्तोत्रों से सम्बद्ध कुछ विशेष बातों को भी आप तक पहुँचाने की सार्थक कोशिश की जायेगी।

4.2 उद्देश्य

ये दोनों स्तोत्र समाज में अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। संभवतः जिन्हें शिवजी के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता, वे भी इस स्तोत्र का पाठ करके अपने को धन्य मानते हैं, परन्तु इस स्तोत्र का महत्त्व तथा प्रकरण प्रसंगतः यदि यहाँ ज्ञात हो जाय, तो सोने में सुगन्ध हो जाय। इसी दृष्टि से यहाँ इन दोनों स्तोत्रों की हिन्दी अनुवाद के साथ प्रसंग से भी आपका परिचय कराया जायेगा। शिवपंचाक्षर तो शंकराचार्य जी द्वारा विरचित है परन्तु रुद्राष्टक के रचनाकार गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी है।

4.3 स्तोत्र-परिचय (शिवपंचाक्षर)

यह स्तोत्र भगवान शिव का है। शिव जी का एक नाम आशुतोष है। अर्थात् अत्यन्त शीघ्र ही प्रसन्न होने वाले ये देवता है। इसीलिए इन्हें आशुतोष भी कहा जाता है। इसी गुण का लाभ कभी कभी असुर भी उठा लेते हैं। इनके यहाँ देव या असुर, राक्षस या मनुष्य कोई भी हो, यदि निर्मल हृदय से इनकी स्तुति करता है तो ये जल्दी ही प्रसन्न हो जाते हैं। इनका एक नाम शिव है। शिव का अर्थ कल्याण है। अर्थात् सभी का कल्याण करने वाले।

वैसे आप कहेंगे कि शिव तो संहार करने वाले है, क्योंकि ब्रह्मा जगत की सृष्टि करते हैं, विष्णु, इसका पालन करते हैं एवं शिवजी सभी का संहार करते हैं, तो इनसे कल्याण की इच्छा कैसे हम करें।

इस जिज्ञासा की शान्ति के लिए हम आपको वेदों की ओर कुछ देर के लिए ले चलेंगे, क्योंकि अन्यान्य प्रमाणों की अपेक्षा श्रुति प्रमाण सभी प्रमाणों से प्रबल है। यजुर्वेद के रुद्रसूक्त में कहा गया है-

ऊँ या ते रुद्र शिवातनूरघोरापापकाशिनी।
तयानस्तन्वाशन्तमयागिरिशन्ताभिचाकशीहि।।

प्रसंगतः यहाँ इसका भाव यह है कि भगवान शिव के दो रुप हैं। (क) घोर (ख) अघोर। घोर का अर्थ है संहार करने वाले शिव एवं अघोर का अर्थ कल्याणमय, अर्थात् सभी का कल्याण करने वाले इसीलिए इस सूक्त के पहले मन्त्र में रुद्र (शिव) के घोर रूप क्रोध को प्रणाम किया गया है एवं इस दूसरे मन्त्र में अघोर रूप का। जिसका तात्पर्य यह है - हे रुद्रदेव! सुख की वृद्धि करने वाले

आपका, जो शरीर शान्त, सौम्य एवं पुण्यप्रदायक है, उसी कल्याणमय-शरीर से हमारी ओर दृष्टि-निक्षेप करते हुए हमारा कल्याण करें।

इस सूक्त के चौथे मन्त्र में उपासक स्तुति करते हुए कहता है - हे पर्वतवासी रुद्र हम मंगलमय स्तोत्रों से आपको प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता हैं। यही प्रार्थना है कि आप अपने कल्याणमय, वपु के प्रभाव से इस पृथिवी पर स्थित सभी लोग नीरोग एवं प्रसन्न रहें। मन्त्र यह है-

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छाव्वदामसि।

यथानः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमनाऽसत्।।

अब आप ही बतायें! ऐसे देवता किसे प्रिय नहीं होंगे। आज के वर्तमान समाज में नीरोग एवं सुख की कामना सभी को होती है। अतः आइये, हमलोग मिलकर भगवान आशुतोष शिव के स्तोत्र का पाठ श्रद्धापूर्वक करते हैं। इस स्तोत्र में 5 ही श्लोक है। एक श्लोक फलश्रुति है। इसका रहस्य यह है कि शिवजी के मन्त्र ''नमः शिवाय'' में भी 5 ही अक्षर है, जिसे पंचाक्षरी मन्त्र कहा जाता है। इसे ही यहाँ शिवपंचाक्षर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ अविलम्ब ही अब स्तोत्र पाठ को प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिवपंचाक्षर-स्तोत्र

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्मांगरागाय महेश्वराय।

नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय।।1।।

मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय, नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय।

मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय, तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय।।2।।

शिवाय गौरीवनदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय।

श्रीनीलकण्ठाय वृषभध्वजाय, तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय।।3।।

वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय।

चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय।।4।।

यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय।

दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय।।5।।

पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ।

शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते।।6।।

जिनके कण्ठ में साँपों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अंगराग (अनुलेपन) है, दिशाएँ ही जिनका वस्त्र है (अर्थात् जो नग्न हैं), उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।।1।।

गंगाजल और चन्दन से जिनकी अर्चा हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महेश्वर 'म' कारस्वरूप शिव को

नमस्कार है।।2।।

जो कल्याणस्वरूप हैं, पार्वतीजी के मुखकमल को विकसित (प्रसन्न) करने के लिये जो सूर्य स्वरूप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकण्ठ 'शि' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।।3।।

वसिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओं ने जिनके मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं, उन 'व' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।।4।।

जिन्होंने यक्षरूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथ में पिनाक हैं, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं, उन दिगम्बर देव 'य' कारस्वरूप शिव को नमस्कार है।।5।।

जो शिव के समीप इस पवित्र पंचाक्षर स्तोत्र का पाठ करता है, वह शिवलोक को प्राप्त करता और वहाँ शिवजी के साथ आनन्द पूर्वक निवास करता है। अस्तु!।6।।

इस स्तोत्र की यह विशेषता है कि इसका आदि अक्षर 'न' से प्रारंभ होकर 'य' अक्षर पर समाप्त होता है। एवं अन्तिम के चरणों में 'तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय, इसी प्रकार अन्त में तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय।

इस प्रकार यह स्तोत्र 'नमः शिवाय' मय है। यह अत्यन्त सरल एवं लघु है। इस स्तोत्र के पाठ से व्यक्ति के पाप जलकर भस्म हो जाते हैं और उसे शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

इसी प्रसंग में (12) द्वादश ज्योतिर्लिंगों के नाम एवं उनका स्थान भारतवर्ष में कहाँ है? यह भी यहाँ जानना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि साक्षात् भगवान् शिव उस लिंग में नित्य रूप से निवास करते हैं, ये विग्रह है साक्षात् शिव के। अतः इसका ज्ञान होना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा। तो लीजिए आपके लिए यह भी प्रस्तुत है-

4.3.1 द्वादश ज्योतिर्लिंगानि

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम्।।1।।
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम्।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने।।2।।
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये।।3।।
एतानि ज्योतिर्लिंगानि सायं प्रातः पठेन्नरः।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति।।4।।

(1) सौराष्ट्रप्रदेश (काठियावाड़) में श्रीसोमनाथ, (2) श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, (3) उज्जयिनी (उज्जैन) में श्रीमहाकाल, (4) ऊँकारेश्वर अथवा अमलेश्वर।। (5) परली में वैद्यनाथ, (6) डाकिनी नामक स्थान में श्रीभीमशंकर, (7) सेतुबन्ध पर श्रीरामेश्वर, (8) दारुकावन में श्रीनागेश्वर।। (9)

वाराणसी (काशी) में श्रीविश्वनाथ, (10) गौतमी (गोदावरी) के तट पर श्रीयम्बकेश्वर, (11) हिमालय पर केदारखण्ड में श्रीकेदारनाथ और (12) शिवालय में श्रीघुश्मेश्वर को स्मरण करे॥3॥ जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल और सन्ध्या के समय इन बारह ज्योतिर्लिंगों का नाम लेता है, उसके सात जन्मों का किया हुआ पाप इन लिंगों के स्मरणमात्र से मिट जाता है॥4॥

अब इन दोनों स्तोत्रों से कुछ बोध प्रश्न आपके लिए दिये जा रहे हैं। जिनका समाधान आपसे अपेक्षित है।

बोधप्रश्न - 1

क. स्तोत्र में पंचाक्षर क्या है?

ख. शिवजी के कितने नेत्र हैं?

ग. सोमनाथ ज्योतिर्लिंग कहाँ पर स्थित है?

घ. उज्जयिनी में कौन सा ज्योतिर्लिंग है?

ङ. अवन्तिकापुरी का दूसरा नाम क्या है?

च. गोदावरी के तट पर कौन सा लिंग है?

4.3.2 रुद्राष्टक-स्तोत्र

परिचय

यह स्तोत्र गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी द्वारा विरचित है, यह स्तुति श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड के 108 वें दोहें में वर्णित है। इसे रुद्राष्टक इसलिए कहते हैं कि इसमें 8 ही श्लोक है। यह स्तुति क्यों की गई? किसने की? किस प्रसंग में की? आदि जिज्ञासायें स्वाभाविक हैं। अतः इनका समुचित उत्तर देते हुए ही आपको स्तुति पाठ का ज्ञान कराया जायेगा। प्रसंग ज्ञात हो जाने से स्तुति में श्रद्धा और भी बढ़ जाती है। तो लीजिए प्रसंग का आनन्द, यह कथा रामचरित मानस ग्रन्थ के उत्तरकाण्ड में है-

एक बार की बात है कि किसी कारणवश प्रभु श्रीराम के चरित को देखकर पक्षिराज गरुड जी को मोह उत्पन्न हो गया। वे प्रभु श्रीराम को सामान्य मानव की श्रेणी में समझने लगे। जिससे श्रीराम के ईश्वरत्व में इन्हें सन्देह होने लगा। ये व्याकुल होकर ब्रह्मा नारद आदि सभी देवताओं से मिले, परन्तु इनका सन्देह दूर नहीं हुआ। व्याकुलता बढ़ती ही गई। इसके बाद भगवान शिव से इनकी मिलन होती है। भगवान शिव ने इन पर कृपा कर काकभुशुंडि के यहाँ भेजा कि वहाँ नित्य कथा भगवान की होती है वहाँ पर जाकर श्रवण करो। जिससे तुम्हारा सन्देह दूर हो जायेगा। गरुड जी काकभुसुंडि के आश्रम पर गये। इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रभु श्री राम की कथा काकभुसुंडि जी ने गरुड को सुनाया। गरुड जी का मोह दूर हो गया। एवं प्रभु का दर्शन भी हुआ। इसके बाद काकभुसुंडि जी अपने पूर्वजन्म के चरित्र को गरुडजी से सुना रहे हैं। हे गरुडजी! कलियुग में मेरा जन्म एक दास परिवार में हुआ। मेरा जन्म कही दूसरी जगह नहीं भगवत्कृपा से अयोध्या में हुआ। मैं मन, वचन, कर्म से

शिवजी का सेवक था एवं दूसरे देवताओं की निन्दा करने वाला तथा अभिमानी था। मैं धन के मद से मतवाला, उग्र बुद्धिवाला एवं दम्भी था। श्रीरघुनाथ जी के पुरी (अयोध्या) में रहते हुए भी पुरी का प्रभाव मैं जान नहीं पाया। अयोध्या में बहुत वर्षों तक रहने के बाद वहाँ अकाल पड़ गया जिससे दुखी होकर उज्जैन चला गया। कुछ काल तक हमने भगवान शिव की सेवा की। आज जो महाकालेश्वर के रूप में विद्यमान है। वहाँ एक ब्राह्मण थे जो वैदिक विधि से नित्य ही महाकाल की पूजा करते थे। वे शिव के उपासक तो थे, परन्तु हरि की निन्दा नहीं करते थे। सभी देवताओं के प्रति उनका सम्मान था। मैं कपट पूर्वक उनकी सेवा करता था। वे बड़े दयालु एवं नीतिज्ञ थे। बाहर से हमें अति नम्र देखकर पुत्र की तरह हमें ज्ञान देते थे। उन्होंने शिव मन्त्र की दीक्षा दी। मैं जाति स्वभाव के कारण के भक्तों को देखकर जलता था। डाह करता था। परन्तु मेरे मति में यह बुद्धि नहीं आती थी कि हरि एवं हर में कोई भेद नहीं है। ये दोनों अभेद ही है। एक बार गुरु अपने घर में बुलाये और बहुत तरह से हमें उपदेश दिये। इसी क्रम में उन्होंने एक बात कही कि ''शिवजी हरि के सेवक हैं'' शिवजी के सेवा का फल है कि प्रभु श्रीराम के चरणों में अविरल भक्ति हो जाती है। यह बात हमें अच्छी नहीं लगी और गुरु से ही हमने द्रोह करना आरम्भ कर दिया। जिस प्रकार सर्प को दूध यदि पिलाया जाय तो संभवतः वह सर्प पिलाने वाले को ही काट लेता है। इसलिए विद्वान् लोग खल की संगति नहीं करते हैं। एकबार मैं शिवजी के मन्दिर में पूर्वोक्त पंचाक्षर मंत्र का जप कर रहा था, उसी समय मेरे गुरुजी पूजन करने आये, मैं अभिमान-वश बैठा ही रह गया। गुरुजी तो दयालुता-वश कुछ भी नहीं बोले परन्तु मन्दिर से ही भगवान शिव के द्वारा आकाशवाणी होने लगी अर्थात् साक्षात् शिवजी ने कहा अरे मूर्ख तू गुरु का अपमान करता है, गुरु के आने पर भी अजगर की तरह बैठा ही रह गया जा तू अजगर (सर्प) हो जा।

इस प्रकार शिवजी के शाप को सुनकर गुरुजी ने हाहाकार कर वे दोनों हाथ जोड़कर मेरे शाप की निवृत्ति के लिए गद्गद् वाणी से शिवजी की स्तुति करने लगे। जो आपके सामने हैं।

यह स्तोत्र श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड के 108वें दोहे में वर्णित है। इसके साथ ही यह कथा भी उसी प्रसंग में एवं इसी काण्ड में वर्णित है।

4.4 श्रीरुद्राष्टकम्

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं
चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।1।।
निराकारमोंकारमूलं तुरीयं
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।
करालं महाकाल कालं कृपालं
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।2।।
तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं

मनोभूत कोटि प्रभा श्री शरीरं।

स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा

लसद्भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।3।।

चलत्कुंडलं भ्रू सुनेत्रं विशालं

प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।

मृगाधीशचर्माम्बरं कुंडमालं

प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।4।।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं

अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।

त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं

भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं।।5।।

कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी

सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।

चिदानंद संदोह मोहापहारी

प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।6।।

न यावद् उमानाथ पादारविन्दं

भजंतीह लोके परे वा नराणाम्।

न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं

प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं।।7।।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां

नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।

जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं

प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।8।।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये।

ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति।।9।।

हे ईशान! मैं मुक्तिस्वरूप, समर्थ, सर्वव्यापक, ब्रह्म, वेदस्वरूप, जिनस्वरूप में स्थित, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, अनन्त ज्ञानमय और आकाश के समान सर्वत्र व्याप्त प्रभु को प्रणाम करता हूँ।।1।।

जो निराकार हैं, ओंकार रूप आदि कारण हैं, तुरीय हैं, वाणी, बुद्धि और इन्द्रियों के पथ से परे हैं, कैलासनाथ हैं, विकराल और महाकाल के भी काल, कृपालु, गुणों के आगार और संसार से तारने वाले हैं, उन भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।।2।।

जो हिमालय के समान श्वेतवर्ण, गम्भीर और करोड़ों कामदेव के समान कान्तिमान्

शरीरवाले हैं, जिनके मस्तक पर मनोहर गंगाजी लहरा रही हैं, भालदेश में बालचन्द्रमा सुशोभित होते हैं और गले में सर्पों की माला शोभा देती है।।3।।

जिनके कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, जिनके नेत्र एवं भृकुटी सुन्दर और विशाल हैं, जिनका मुख प्रसन्न और कण्ठ नील है, जो बड़े ही दयालु हैं, जो बाघ की खाल का वस्त्र और मुण्डों की माला पहनते हैं, उन सर्वाधीश्वर पिय्रतम शिव का मैं भजन करता हूँ।।4।।

जो प्रचण्ड, सर्वश्रेष्ठ, प्रगल्भ, परमेश्वर, पूर्ण, अजन्मा, कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान, त्रिभुवन के शूलनाशक और हाथ में त्रिशूल धारण करने वाले हैं, उन भावगम्य भवानीपति का मैं भजन करता हूँ।।5।।

हे प्रभो! आप कलारहित, कल्याणकारी और कल्प का अन्त करने वाले हैं। आप सर्वदा सत्पुरुषों को आनन्द देते हैं, आपने त्रिपुरासुर का नाश किया था, आप मोहनाशक और ज्ञानानन्दघन परमेश्वर हैं, कामदेव के आप शत्रु हैं, आप मुझ पर प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।।6।।

मनुष्य जब तक उमाकान्त महादेव जी के चरणारविन्दों का भजन नहीं करते, उन्हें इहलोक या परलोक में कभी सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती और न उनका सन्ताप ही दूर होता है। हे समस्त भूतों के निवास स्थान भगवान् शिव! आप मुझपर प्रसन्न हों।।7।।

हे प्रभो! हे शम्भो! हे ईश! मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता, हे शम्भो! मैं सदा-सर्वदा आपको नमसकार करता हूँ। जरा, जन्म और दुःखसमूह से सन्तप्त होते हुए मुझ दुःखी की दुःख से आप रक्षा कीजिए।।8।।

जो मनुष्य भगवान् शंकर की तुष्टि के लिए ब्राह्मण द्वारा कहे हुए इस रुद्राष्टक का भक्तिपूर्वक पाठ करते हैं, उन पर शंकर जी प्रसन्न होते हैं।।9।।

स्तोत्र पाठ के बाद कुछ बोध प्रश्न आपके लिए दिये जाते हैं।

बोधप्रश्न – 2

क. श्रीराम के चरित्र पर मोह किसे हुआ था?

ख. इस स्तोत्र में कितने श्लोक हैं?

ग. गरुड जी को रामकथा किसने सुनायी?

घ. काकभुसुंडि जी का जन्म कहाँ हुआ था?

ङ. रामचरितमानस के रचनाकार कौन है?

4.5 सारांश

इस इकाई में आपको शिवपंचाक्षर, द्वादशज्योतिर्लिंगों का परिचय एवं रुद्राष्टकस्तोत्र के विषय में ज्ञान कराया गया है। इसके साथ ही रुद्राष्टक का प्रसंग भी गरुड-काकभुसुण्डि संवाद के माध्यम से आपको विशेषरूप से अवगत कराया गया।

शिवपंचाक्षर स्तोत्र की विशेषता एवं स्तोत्र में प्रयुक्त कुछ विशेष पदों की प्रासंगिकता का भी बोध कराया गया। इसके साथ ही भारतवर्ष में कितने ज्योतिर्लिंग है? एवं वे कहाँ कहाँ है? एवं

इनका क्या महत्त्व है? इस पर भी प्रामाणिक चर्चा आपसे की गई।

4.6 शब्दावली

क. निर्वाणरूपम्	-	मुक्तिस्वरूप
ख. चिदाकाश	-	अनन्त ज्ञानमय
ग. तुषाराद्रि	-	हिमालय के समान
घ. वालेन्दु	-	बालचन्द्रमा
ङ. त्रिलोचन	-	तीन नेत्र वाले
च. मन्दाकिनी	-	गंगा
छ. सौराष्ट्र	-	काठियावाड
ज. रामेश्वर तीर्थ	-	तमिलनाडू प्रान्त के रामनाथ जिले में है।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर - 1

क. स्तोत्र में पंचाक्षर ‘‘नमः शिवाय’’ है।

ख. शिवजी के तीन नेत्र होते हैं।

ग. सोमनाथ ज्योतिर्लिंग सौराष्ट्र प्रदेश में हैं।

घ. उज्जयिनी में महाकालेश्वर है।

ङ. अवन्तिकापुरी को उज्जैन भी कहा जाता है।

च. गोदावरी के तट पर त्र्यम्बकेश्वर जी विद्यमान है।

बोध प्रश्नों के उत्तर – 2

क. श्रीराम के चरित्र पर गरुड जी को मोह हुआ था।

ख. इसमें आठ श्लोक हैं।

ग. गरुड को श्रीराम कथा काकभुसुण्डी जी ने सुनाई थी।

घ. काकभुसुण्डी जी का जन्म अयोध्यापुरी में हुआ था।

ङ. रामचरितमानस के रचनाकार श्री गोस्वामीतुलसीदास जी हैं।

4.8 सन्दर्भग्रन्थ

क. श्रीरामचरितमानस

ख. बृहत्स्तोत्ररत्नाकर

ग. बृहत्स्तोत्ररत्नमाला

घ. नित्यकर्मविधि

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. द्वादशज्योतिर्लिंगों के नाम एवं स्थान का परिचय करायें।

ख. शिवपंचाक्षरस्तोत्र का अभिप्राय लिखें।

खण्ड – 3
नवरात्र विधान

इकाई – 1 नवरात्र परिचय एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 नवरात्र परिचय

1.4 कुमारी पूजन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई BAKA-301 के तृतीय खण्ड के प्रथम इकाई **'नवरात्र परिचय एवं महत्व'** से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई में शिवपंचाक्षर, रुद्राष्टक एवं द्वादशज्योर्लिंगों के विषय में प्रामाणिक ज्ञान आपको कराया गया।

प्रस्तुत इस इकाई में नवरात्र का परिचय, महत्त्व आदि के विषय में आपको ज्ञान कराया जायेगा।

1.2 उद्देश्य

हमारे भारतवर्ष में नवरात्र के समय शक्ति की उपासना अवश्य ही की जाती है। यह बात सर्वविदित है। नवरात्र में शक्ति की उपासना क्यों? इसका प्रयोजन क्या है? तथा नवरात्र किसे कहते हैं? एवं नवरात्र कितने होते हैं? कब होते हैं? आदि विशेष बातें भी आपको प्रामाणिक रूप से यहाँ ज्ञात करायी जायेगी। जो वर्तमान समय के लिए अत्यन्त ही उपादेय हैं।

1.3 नवरात्र परिचय

सर्वप्रथम, नवरात्र शब्द को लेकर यहाँ विचार किया जा रहा है, क्योंकि विचार के क्रम में शब्द ही पहले आते हैं इसके बाद अर्थ। संस्कृत में 'रात्रि' शब्द है, तो नवरात्रि शब्द का प्रयोग लोग क्यों नहीं करते हैं? लोग इसे नवरात्र ही क्यों कहते हैं? यह पहली जिज्ञासा है।

इसके लिए हम आपको कुछ देर के लिए व्याकरणशास्त्र की ओर ले चलेंगे, वहाँ इसका प्रामाणिक समाधान होगा।

महर्षि पाणिनि का एक सूत्र है - **'अहः सर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्चरात्रेः'** इसका अर्थ यह है - अहः, सर्व, एकदेश-सूचक शब्द, संख्यात तथा पुण्य के साथ, रात्रि का समास होने पर समासान्त अच् प्रत्यय हो जाता है और समस्तपद रात्रि को रात्र हो जाता है। संख्या एवं अव्यय के साथ भी इसी प्रकार होता है। जैसे अहश्च रात्रिश्चेति अहोरात्रः। सर्वा रात्रिः इति सर्वरात्रः। उसी तरह नवरात्र शब्द में भी नवानां रात्रीणां समाहारः नवरात्रम्, इसी तरह द्विरात्रम् आदि शब्द भी निष्पन्न होते हैं। अब जिज्ञासा होती है कि 'अच्' प्रत्यय होने पर अहोरात्रः की तरह नवरात्रः क्यों नहीं हुआ? तब महर्षि कात्यायन का एक वार्तिक है - ''संख्यापूर्वं रात्रं क्लीबम्'' अर्थात् संख्यापूर्व रात्रन्त समास वाले शब्द नपुंसक लिंग में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा - द्विरात्रम्, त्रिरात्रम् एवं नवरात्रम्। अस्तु! इस प्रकार संस्कृत में नवरात्रं कहेंगे एवं हिन्दी में इसे नवरात्र कहा जाता है। यह आपके विशेष जानकारी के लिए ही प्रस्तुत किया गया ताकि नवरात्रं, नवरात्र आदि शब्दों में सन्देह न हो।

यहाँ समाहार द्वन्द्व समास है। अस्तु।

अब विचार करना है कि नवरात्र ही इसे क्यों कहा गया? तथा इसके कितने प्रकार है? और कब, कब मनाये जाते हैं? इसका समाधान इस प्रकार दिया जा रहा है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों का परिचालन ईश्वर के द्वारा होता है यह ध्रुव सत्य है। यह परिचालन का कार्य एक प्रकार से प्रभु की शक्ति से ही सम्पन्न होता है यह बात भी निर्विवाद है। इस शक्ति की उपासना ही हम जीवधारियों का परम लक्ष्य है। यही परमात्मा की शक्ति, काल के रूप में हम सदा ही अनुभव करते हैं। काल भी नित्य है एवं परमात्मा की विभूति है। जैसा कि गीता में कहा गया - ''कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्त्तुमिहप्रवृत्तः''। इस प्रकार ऋतु या मौसम के रूप में यह काल रूप, ईश्वर-शक्ति जगत् में सतत परिवर्तन करती रहती है। इसका अनुभव प्रत्येक प्राणी को स्पष्ट रूप से होता है। संवत्सर में 360 दिन-रात होते हैं। इनको यदि 9,9 के खण्डों में विभक्त किया जाय तो सम्पूर्ण वर्ष में 40 नवरात्र होते हैं। अब प्रश्न यह होता है कि नौ, नौ के ही खण्ड क्यों?

इसका अभिप्राय यह है कि संख्याओं में नौ संख्या सभी से बड़ी है, अर्थात् एक अंक की सबसे बड़ी संख्या नौ है। यहाँ एक संख्या का अर्थ ईश्वर है। दूसरी बात यह है कि इस नौ संख्या के साथ प्रकृति का एक संबंध है - क्योंकि प्रकृति में तीन गुण है। सत्व, रज एवं तम। और ये तीनों परस्पर मिले हुए त्रिवृत कहलाते हैं। जिसका संकेत वेदों में आता है। इसको हम इस प्रकार समझ सकते हैं -

यज्ञोपवीत में तीन तार होते हैं। (धागे हैं) फिर एक एक में तीन धागे होते हैं, इस प्रकार तीन तीन मिलाकर नौ हो जाते हैं। इसीलिए यज्ञोपवीत संस्कार के समय, जनेऊ में ''ऊँकार'' आदि नव देवताओं का नौ तन्तुओं में आवाहन करते हैं। यही प्रकृति का स्वरूप है। प्रकृति के तीन गुण और फिर तीनों में एक एक सम्मिलित है जिसे हमलोग प्रकृतितत्त्व को ही निरन्तर जनेऊ के रूप में धारण करते हैं। यह एक प्रकार से प्रकृति का मानचित्र है। जैसे भारत का मानचित्र होता है।

उपरोक्त 40 नवरात्रों में मुख्यरूप से 4 नवरात्र प्रधान है जिसका संकेत देवीभागवत के इस श्लोक में प्राप्त होता है-

चैत्रेऽश्विने तथाषाढे माघे कार्यो महोत्सवः।
नवरात्रे महाराज पूजाकार्या विशेषतः।।

अर्थात् चैत्र, आश्विन, आषाढ एवं माघ के शुक्ल पक्ष कीं प्रतिपदा तिथि से नवमी तिथि तक नवरात्र रहता है। दो गुप्त नवरात्र है, जो आषाढ एवं माघ महीने में होते हैं। इनमें भी दो नवरात्र वर्तमान समय में अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं। चैत्र एवं अश्विन मास वाले ये दोनों ही नवरात्र ग्रीष्म और शीत, दो प्रधान ऋतुओं के आरम्भ की सूचना देने वाले हैं। इस अवसर पर प्रधानशक्ति सम्पूर्ण जगत् का परिवर्तन करती है। इस समय उस महाशक्ति का रूप प्रत्यक्ष होता है। इसीलिए विज्ञान की भित्ति पर प्रतिष्ठित सनातन धर्म में ये शक्ति उपासना के प्रधान अवसर माने गये हैं।

दूसरी बात यह है कि कृषि प्रधान भारत देश में चैत्र एवं आश्विन में ही महालक्ष्मी का स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। वर्षा की फसल आश्विन में और शीत की फसल चैत्र में पककर तैयार हो जाती है। मानों भारत की धनधान्य समृद्धि अपने पूर्णरूप में प्रत्यक्ष हो जाती है। जब भारतवर्ष में सुख समृद्धि अधिक था, उन दिनों आश्विन एवं चैत्र महीनों में घर घर में लोग बड़ी उत्सुकता के साथ महालक्ष्मी का स्वागत करते थे। इस अवसर पर कृतज्ञ भारतवासी जगत् की शक्ति महालक्ष्मी की उपासना बड़ी श्रद्धा के साथ करते थे। अपने अहंकार को भूलकर जिस परमात्मा की परमशक्ति की कृपा से यह सुख समृद्धि प्राप्त हुई है, उसके चरणों में नत होना अपना कर्तव्य समझते थे। संभवतः इसीलिए दोनों नवरात्र शक्ति उपासना के लिए प्रधान समय माने गये हैं। आश्विन का महीना जैसे धन धान्य आदि समृद्धि के लिए प्रसिद्ध है उसी तरह विविध बीमारियों भी इसी समय में लोगों को होती है। इसीलिए - ''वैद्यानां शारदीमाता'' कहा गया है। क्योंकि वर्षा का अन्त एवं शीत का प्रारम्भ इसी काल में होता है। इन दोनों ऋतुओं के सन्धिकाल में ही नाना प्रकार के रोग होते हैं। आयुर्वेद में इसे यमद्रंष्ट्रा काल कहा गया है। इस समय प्राकृतिक आपत्ति से बचने के लिए भी यथाशक्ति महाशक्ति की उपासना अवश्य ही सभी को करना चाहिए।

जिन दिनों भारत के वीरक्षत्रिय संसार भर में विजय का डंका बजाते थे, उन दिनों इस आश्विन मास का और भी अधिक महत्त्व था। चातुर्मास में विजय यात्रा स्थगित रहती थी, वे घर पर विश्राम करते थे, आश्विन मास के आते ही ''वर्षा गत शरद् ऋतु आई'' इस वचन के अनुसार शक्ति की उपासना करके वे फिर विजययात्रा का आरम्भ कर देते थे। इसलिए आश्विन मास के नवरात्र में शक्ति की उपासना के लिए सबसे प्रधान काल माना गया है और इसके पूर्ण होते ही विजय यात्रा का दिन (विजयादशमी) भी आता है।

एक बात और यहाँ आप ध्यान दें। मैंने इसके पहले नवरात्र को प्रकृति की संज्ञा दी थी। इसके साथ ही प्रकृति में तीन गुण सत्, रज एवं तम है। प्रकृति रूप शक्ति के सौम्य क्रूर आदि भेद से नाना प्रकार के रूप हैं। अपने अपने अधिकारानुसार सिद्धि भी विभिन्न प्रकार की प्रत्येक मनुष्य चाहता है। अर्थात् अपनी इच्छानुसार ही विभिन्न रूपों की उपासना व्यक्ति करता है। यहाँ सत्व, श्वेत का प्रतीक है। रज, रक्त का एवं तम, कृष्णवर्ण (काला) का प्रतीक है। स्वच्छता, संघर्ष और आवरण का बोध कराने के लिए ही हम इन रूपों की उपासना करते हैं। यहाँ भी महालक्ष्मी सत्वस्वरूपा, श्रीमहासरस्वती रजस्वरूपा (रक्तरूपा) एवं महाकाली तमस्वरूपा (कृष्णवर्णात्मिका) है।

इन्हीं गुणों के अनुकूल ही उनके हाथों में आयुध या अन्य चिह्न भी देखे जाते हैं। इनकी उपासना से अपने अपने कार्य में सभी को विजय प्राप्त होती है यही विजयादशमी का लक्ष्य है। विशेष रूप से हमारे भारतवर्ष में दो नवरात्र अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। इसका संकेत दुर्गापाठ में भी है - शरत्काले महापूजा, क्रियते या च वार्षिकी। अर्थात् आश्विन, शुक्ल एवं चैत्र, शुक्ल, प्रतिपदा से नवमी पर्यन्त नवरात्र होता है।

यह तो नवरात्र का एक सामान्य परिचय था। नवरात्र में प्रमाण क्या है? क्या इसका संकेत कहीं शास्त्रों में है? यह भी जानना अत्यन्त अनिवार्य है। देखिये! युक्ति के साथ प्रमाण की भी

आवश्यकता होती। यदि कोई आप से पूछ दें कि इन मासों में ही नवरात्र क्यों मनाया जाता है? इसमें प्रमाण क्या है? तो उत्तर आपको शास्त्रवचन के रूप में अवश्य ही देना होगा। क्योंकि कार्याकार्य में निर्णायक शास्त्र ही होते हैं। इसमें प्रमाण के लिए रुद्रयामल नाम के ग्रन्थ में ऐसा लिखा है-

आश्विने मासि सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे विधेस्तिथिम्।
प्रारभ्य नवरात्रं स्याद् दुर्गा पूज्या तु तत्र वै।।

देवीपुराण में कहा गया है -

मासि चाश्वयुजे शुक्ले नवरात्रं विशेषतः।
सम्पूज्य नवदुर्गां च नक्तं कुर्यात् समाहितः।।

यहाँ रात्रि शब्द से दिन और रात दोनों का ग्रहण किया गया है। यह नवरात्र नित्य विधि की तरह है - जैसा कि लिखा है ''वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनं च विसर्जनम्''। इससे यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक वर्ष नवरात्र में भगवती की स्थापना, पूजन एवं विसर्जन अवश्य ही करना चाहिए। अब कोई कहे कि यदि न किया जाय तो क्या होगा? इसके उत्तर में कालिका पुराण में कहा गया है-

यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे।
न पूजयति दुष्टात्मा तस्य कामानिष्टान्निहन्ति च।।

यहाँ अर्थ तो अत्यन्त ही स्पष्ट है। आगे चलते हैं। इसीलिए 'पूजयित्वाश्विने मासे विशोको जायते नरः' कहा गया है। वर्तमान में सभी लोग अपने शोक (दुःख) को दूर करना चाहते हैं अतः शारदीय नवरात्र में शक्ति की उपासना उन्हें अवश्य ही करनी चाहिए। अधिकार की दृष्टि से इस नवरात्र पूजन में चारो वर्णों का अधिकार है। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। क्योंकि लिखा गया है-

स्नातैः प्रमुदितै र्हृष्टैः ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृप।
वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुतैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः।।

इसका तात्पर्य यह है कि चारों वर्णों को श्रद्धा विश्वास पूर्वक दुर्गापाठ के माध्यम से शक्ति की उपासना करनी चाहिए। एवं जो शुद्ध दुर्गापाठ आदि करने में समर्थ हैं वे तो स्वयं करें एवं जिन्हें शुद्धता आदि में सन्देह है वे ब्राह्मणों से करा सकते हैं। परन्तु नवरात्र में शक्ति की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए। यदि नौ दिनों तक आप करने में असमर्थ हैं, तो तीन दिन, सप्तमी से नवमी तक या एक दिन अष्टमी को करनी चाहिए। ऐसा शास्त्रों का कहना है। जैसा कि-

त्रिरात्रं वापि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्।
अष्टम्यां नवम्यां च जन्ममोक्षप्रदां शिवम्।।

अब यहाँ कुछ नवरात्र से सम्बन्धित मुहूर्त की थोड़ी चर्चा आपसे होगी। मुहूर्त का अर्थ है अच्छा समय या शुभकाल भी इसे कहते हैं। नवरात्र तो वैसे ही शुभकाल है फिर भी शास्त्रीय जो सिद्धान्त है उससे आपका परिचय कराया जा रहा है।

आप जानते हैं कि पूर्वाह्न काल देवताओं का होता है, मध्याह्नकाल मनुष्यों का एवं अपराह्न काल पितरों का होता है। जैसा कि लिखा है-

''पूर्वाह्नो वे देवानाम्, मध्यन्दिनो मनुष्याणाम् अपराह्णो पितृणाम्।

इस प्रकार नवरात्र में शुद्ध प्रतिपदा अर्थात् सूर्योदय में होने वाली प्रतिपदा तिथि में पूर्वाह्न - प्रातः काल के समय नवरात्र के निमित्त कलशस्थापन करना चाहिए। जैसा कि लिखा है - ''शुद्धे तिथौ प्रकर्तव्या प्रतिपच्चोर्ध्वगामिनी'' अर्थात् प्रतिपदा तिथि में सूर्योदय हो एवं वह तिथि अपराह्नकाल तक रहे वही तिथि यहाँ ग्राह्य है। यही प्रतिपदा का मुहूर्त है। यहाँ पूजन की विधि नहीं दी जा रही है, क्योंकि पूजन का विधान आपको पहले से ज्ञात है। यहाँ मात्र प्रतिपदा तिथि के दिन नवरात्र में नित्यकर्म समाप्त करके शुद्ध होकर गौरी गणेश पूजन पूर्वक कलश स्थापन अवश्य करना चाहिए। इसके बाद दुर्गा सप्तशती स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। इसका विशेष विधान आगे की इकाई में बताया जायेगा।

1.4 कुमारी पूजन

नवरात्र में कुमारी पूजन भी होता है। इस समय में कुमारी पूजन का बड़ा ही महत्त्व शास्त्रों में कहा गया है। जैसा कि लिखा है -

पितरो वसवो रुद्रा आदित्या गणलोकपाः।
सर्वे ते पुजितास्तेन कुमार्यो येन पूजिताः।।

कुमारी (कन्या) के पूजन से सभी पितर, वसु, रुद्र, आदित्य आदि प्रसन्न हो जाते हैं। अब जिज्ञासा होती है कि कुमारी का उम्र क्या है? तो शास्त्र कहता है - दो वर्ष से लेकर 10 वर्ष तक की कन्या कुमारी का पूजन करना चाहिए। संख्या के विषय में बताते हुए लिखा गया है कि एक कन्या से लेकर नौ कन्याओं तक का पूजन किया जा सकता है। अपने सामर्थ्य के अनुसार उनका पंचोपचार से पूजन करें, भोजन कराकर दक्षिणा देते हुए प्रणाम करें। सबसे पहले उनके चरणों को धोयें। इसके बाद उनका पूजन करना चाहिए। एक, तीन, सात या नौ कन्याओं का पूजन करना चाहिए। कन्या पूजन का मन्त्र यह है-

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यां सम्पूजयाम्यहम्।।
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोऽस्तुते।।

कन्या पूजन के बाद

अब हम आपको प्रतिमा स्थापन की दिशा के विषय में कुछ विशेष बातें बताते हैं। प्रतिमा की स्थापना उत्तरदिशा की ओर नहीं करना चाहिए। पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में प्रतिमा स्थापन करना चाहिए -

याम्यास्याच्छुभदा दुर्गा पूर्वास्याज्जयवर्द्धिनी।

पश्चिमाभिमुखी नित्यं न स्थाप्या सौम्यदिङ्मुखी।।

अष्टमी तिथि को महानिशा में विशेष पूजन करना चाहिए एवं जागरण आदि भी करना चाहिए। जैसा कि लिखा है-

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्।।

नवरात्र व्रत की पारणा नवमी तिथि को करनी चाहिए। एवं नवरात्र का विसर्जन दशमी को।

दशम्यां पारिता देवी कुलनाशं करोति हि।
तस्मात्तु पारणं कार्य नवम्यां विबुधाधिप।।
आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रमुपोषितः।
नवम्यां पारणं कुर्याद्दशमी सहिता न चेत्।।

अर्थात् दशमी तिथि में पारण करने से कुल का नाश होता है अतः नवमी में ही पारण करना चाहिए।

नवरात्र में शक्ति की उपासना तीन प्रकार से होती है। सात्विकी, राजसी, तामसी।

शारदी चण्डिका पूजा त्रिविधा परिगीयते।
सात्विकी जपयज्ञाद्यैर्नैवेद्यैश्च निरामिषैः।
माहात्म्यं भगवत्याश्च पुराणादिषु कीर्तितम्।
पाठस्तस्य जपः प्रोक्तो पठेद्देवीमनास्तथा।।
राजसी बलिदानेन नैवेद्यैः सामिषैस्तथा।
सुरामांसाद्युपाहारैर्जपयज्ञैर्विना तु या।।

विना मन्त्रैस्तामसी स्यात् किरातानां च संमता।
ब्राह्मणः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरन्यैश्च मानवैः।।

इसका तात्पर्य यह है कि सात्विकी पूजा में पाठ, जप, होम एवं षोडशोपचार से भगवती की पूजा करना चाहिए। यही पूजा वर्तमान समय में अत्यन्त उत्तम है। राजसी पूजा में बलिदान आदि होते हैं, जो विशेष रूप से मात्र क्षत्रिय लोगों के लिए है। जहाँ वेदमन्त्र पाठ आदि का अभाव है एवं सुरा मांसादि का म्लेच्छ लोग माता को नैवेद्य लगाते हैं वह तामसी पूजा है। जो शास्त्र में निन्दित है। यह पूजा विशेष तान्त्रिक उपासना में लगे लोगों के लिए है, सभी के लिए नहीं। अतः वर्तमान समय में सात्विकी पूजा ही अधिक उपयुक्त है। जिसमें दुर्गापाठ नवार्ण मन्त्र का जप, तिल आदि द्रव्यों से होम, एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन ब्राह्मणों को कराना चाहिए। यही पक्ष सर्वमान्य है। इस प्रकार नवरात्र के विषय में बहुत कुछ बातें आपको बताई गई है। शेष बातें अगले इकाई में बताई जायेगी।

काल निरूपण

आज के समय में सभी लोगों को प्रायः जिज्ञासा होती है कि पूर्वाह्न काल क्या है? इसका समय क्या

है? पंचांगों में यह समय घटी पल के रूप में लिखा रहता है परन्तु सभी लोग इसे जान नहीं पाते, क्योंकि आज के लोग घण्टा मिनट को ही अच्छी तरह जानते हैं। अतः यहाँ आपके लिए पूर्वाह्न काल आदि का निरूपण घण्टा मिनट के अनुसार दिया जा रहा है।

पूर्वाह्नकाल

सूर्योदय से 3 मुहूर्त (2 घण्टा 24 मिनट) तक प्रातःकाल, उसके बाद 2 घण्टा 24 मिनट तक संगव काल, इसके बाद 2 घण्टा 24 मिनट तक मध्याह्नकाल, फिर 2 घण्टा 24 मिनट के बाद अपराह्नकाल और फिर आगे 2 घण्टा 24 मिनट तक सायंकाल होता है।

उदाहरण के लिए यदि सूर्योदय 6 बजे प्रातः होता है तो, 8 बजकर 24 मिनट तक प्रातःकाल, 10 बजकर 48 मिनट तक संगवकाल, 1 बजकर 12 मिनट तक मध्याह्नकाल, 3 बजकर 36 मिनट तक अपराह्नकाल एवं 6 बजे तक सांयकाल होता है।

इस प्रकार नवरात्र के विषय में मुख्य मुख्य बातें आपको बता दी गई। अब आपके सामने कुछ बोध प्रश्न रखे जा रहे हैं। जिनका उत्तर आपसे अपेक्षित है।

बोधप्रश्न

क. ‘नवरात्रम्’ पद का विग्रह कैसे करेंगे?

ख. क्लीबम् का अर्थ क्या है?

ग. प्रसिद्ध नवरात्र दो कौन हैं?

घ. आषाढ़ महीने के किस पक्ष में गुप्त नवरात्र होता है?

ङ. त्रिगुणा कौन है?

च. अपराह्नकाल कब होता है?

छ. देवताओं का कौन सा काल है?

ज. व्रत का पारण किस तिथि को करनी चाहिए?

झ. विसर्जन किस तिथि को करना चाहिए?

ञ. ‘मन्त्राक्षरमयी’ से किसका पूजन होता है?

1.5 सारांश

इस इकाई में नवरात्र का परिचय विस्तृत रूप से आपको अवगत कराया गया। नवरात्र किस किस महीने में होते हैं एवं गुप्त नवरात्र तथा प्रसिद्ध नवरात्र कौन-कौन से हैं? ये सभी बातें आपको बता दी गई है। इसके साथ इसका विज्ञान या आधुनिक जीवन के साथ सम्बद्धता कैसे हैं? इस पर भी विचार किया गया है। इसी क्रम में पूजा के अंग, त्रिविध पूजा, कुमारी पूजा आदि के महत्त्व एवं प्रयोगों की जानकारी आपको इस इकाई में दी गई है।

दूसरी बात यह है कि लोगों में प्रायः पूर्वाह्नकाल कब होता है? आदि जिज्ञासाओं को ध्यान में रखते हुए उसे भी प्रचलित घण्टा मिनट में बदलकर उसे सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

1.6 शब्दावली

क. आश्वयुज - आश्विनमास

ख. नक्तम् - रात्रि

ग. वसु - आठ वसु होते हैं

घ. रुद्र - रुद्रों की संख्या एकादश है

ङ. याम्या - दक्षिणदिशा

च. श्रोष्यन्ति - सुनेंगे

1.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

क. नवानां रात्रीणां समाहारः नवरात्रम्

ख. 'क्लीबम्' का अर्थ नपुंसकलिंग होता है।

ग. प्रसिद्ध नवरात्र चैत्र एवं आश्विन महीने में होते हैं।

घ. आषाढ़ महीने के शुक्लपक्ष में।

ङ. त्रिगुणा प्रकृति है।

च. अपराह्न काल दिन में। 12 बजे से लेकर 3:36 तक यह काल होता है। जिसमें विशेष रूप से पितरों का कार्य होता है।

छ. देवताओं का काल पूर्वाह्न होता है।

ज. व्रत की पारणा नवमी में करनी चाहिए।

झ. देवी का विसर्जन दशमी तिथि को करना चाहिए।

ञ. मन्त्राक्षरमयी से कन्यापूजन होता है।

1.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

क. स्मृतिकौस्तुभ, श्रीवासुदेवशर्मा

ख. ब्रह्मपुराण

ग. दुर्गासप्तशती

घ. व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी

ङ. ब्रह्माण्डपुराण

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. नवरात्र में कुमारी पूजन पर प्रकाश डालें।

ख. नवरात्र के महत्त्व का वर्णन करें।

इकाई – 2 दुर्गासप्तशती पाठ विधि

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 दुर्गाशप्तशती परिचय

2.3.1 दुर्गापाठ के अनुष्ठान में कुछ आवश्यक नियम

2.4 दुर्गापाठ विधि

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में नवरात्रों का परिचय एवं कुछ नवरात्रों से सम्बद्ध-विशेष-मुहूर्तों की भी चर्चा आपसे की गई। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप नवरात्र के विषय में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर लिये होंगे।

अब इस प्रस्तुत इकाई में दुर्गापाठ की विधि से आप अवगत होंगे।

2.2 उद्देश्य

आप जानते हैं कि भारतवर्ष में नवरात्रों में दुर्गासप्तशती के पाठ विशेष रूप से होते हैं। क्योंकि नवरात्र पर्व शक्ति की उपासना के लिए ही प्रसिद्ध है तथा दुर्गासप्तशती के रहस्य में शक्तिस्वरूपा दुर्गा जी को ही आद्याशक्ति के रूप में बताया गया है। यह बात आपको इससे पहले भी बताई जा चुकी है। इस अनुष्ठानात्मक उपासना में या साधना में सर्वोत्तम साधन के रूप में दुर्गासप्तशती का ही पाठ प्रसिद्ध है। इसके पाठ के बिना नवरात्रों का कोई भी महत्त्व नहीं है। प्रायः आप देखते होंगे कि घर-घर में एवं जहाँ जहाँ मूर्तियों की स्थापना भी होती है वहाँ भी लोग बड़ी ही श्रद्धा एवं विश्वास के साथ दुर्गा जी का पाठ कराते हैं एवं स्वयं भी करते हैं। इसके विशेष महत्त्व को आगे बताया जा रहा है।

सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि यह दुर्गापाठ केवल अन्य संस्कृत पुस्तकों की तरह है? या इसका कोई विशेष महत्त्व या पाठ करने की कोई विशेष विधि है? इत्यादि विषयों पर हम आगे विचार करेंगे। इन्हीं प्रश्नों का शास्त्रोचित समाधान इस इकाई में आपको दिया जायेगा।

2.3 दुर्गासप्तशती ग्रन्थ का परिचय

यह दुर्गा सप्तशती का पाठ, श्रीमार्कण्डेय पुराण के सावर्णिक मन्वन्तर के देवी माहात्म्य से लिया गया है। क्योंकि इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'इति श्री मार्कण्डेय पुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे प्रथमोऽध्यायः' दिया गया है। यही इसमें प्रमाण है। पुराणों की मान्यता के अनुसार यह दुर्गासप्तशती का पाठ मार्कण्डेय पुराण में 78वें अध्याय से प्रारम्भ होता है, तथा 90वें अध्याय में समाप्त होता है। यहाँ पर क्रौष्टुकि ऋषि ने मार्कण्डेय मुनि से स्थावर, जंगम जगत् की उत्पत्ति तथा मनुओं के विषय में पूछा है। जिसका समाधान श्री मार्कण्डेय ऋषि करते हैं। मार्कण्डेय जी 7 मनुओं का वर्णन कर चुके हैं, अब 8वें मनु का वर्णन करते हुए क्रौष्टुकि ऋषि से कहते हैं।

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥

इसमें 13 अध्याय एवं 700 श्लोक हैं। 700 श्लोक के कारण ही इसे सप्तशती कहते हैं। संस्कृत में इसका विग्रह इस प्रकार होगा - सप्तानां शतानां समाहारः सप्तशती। इसका तात्पर्य यह है

कि सप्त का अर्थ 7 एवं शतानां का अर्थ है 100। इस प्रकार जिससे 700 उवाच आदि मिलाकर श्लोक है उसे ही सप्तशती कहते हैं। श्लोकों की 700 संख्या प्रथम अध्याय से 13वें अध्याय तक है। इसमें तीन चरित्र है। प्रथम चरित्र, मध्यमचरित्र एवं उत्तमचरित्र। प्रथम अध्याय में महाकाली का चरित्र है। दूसरे अध्याय से लेकर चौथे अध्याय तक, मध्यम चरित्र एवं श्री महालक्ष्मी की स्तुति की गई है तथा पाँचवें अध्याय से तेरहवें अध्याय तक, श्रीमहासरस्वती के द्वारा शुम्भ आदि राक्षसों के वध का वर्णन है जिसे उत्तम चरित्र कहा जाता है। अस्तु।

यहाँ एक जिज्ञासा अवश्य ही आपको कुछ कहने के लिए विवश करती होगी कि सभी देवताओं को छोड़कर दुर्गा जी की ही नवरात्र में प्रधानता क्यों है? एवं शक्ति की उपासना के लिए दुर्गासप्तशती का ही पाठ क्यों? इन दोनों प्रश्नों का समाधान यथारुचि आपके सामने रखा जा रहा है। पहले प्रश्न का उत्तर - सनातन वैदिक धर्मग्रन्थों के प्रमाणानुरूप वैदिक देवता 33 कोटि (प्रकार) होते हैं। 11 पृथिवी-स्थानीय, 11 अन्तरिक्ष-स्थानीय एवं 11 द्यु-स्थानीय देवता हैं। जिसका संकेत निरुक्त ग्रन्थ में आचार्य यास्क ने किया है। लेकिन पौराणिक मान्यताओं के अनुसार देवताओं की संख्या और भी अधिक हो जाती है। दुर्गा जी पौराणिक एवं वैदिक दोनों देवता है। वैदिक देवीसूक्त आदि में इन्हीं का वर्णन है। परन्तु पुराणों में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। जैसा कि देवीभागवत पुराण आदि में। एक दृष्टि से देखा जाय तो वैदिक देवताओं का विकास ही पौराणिक देवता है। जो अनन्त हैं। इसीलिए वैदिक मान्यता के अनुसार एक देवतावाद एवं बहुदेवतावाद दोनों सिद्धान्त सर्वथा शास्त्रों में प्रचलित है। यहाँ अधिक गहराई में न जाकर विषय पर आते हैं, क्योंकि शास्त्र में अधिक गंभीरता में जाने पर विषय की दुरूहता होने के कारण नीरसता का भय हो जाता है। इस प्रकार हम यहाँ यह दृढपूर्वक कह सकते हैं कि जो कार्य सभी देवता मिलकर नहीं कर सके वह कार्य भगवती श्री दुर्गा जी देवताओं के विविध तेज से निर्मित हुई उन्होंने कर दिया। इसीलिए अन्य देवताओं में इनकी प्रधानता अवश्य ही है। शास्त्र कहता है 'कलौ चण्डी विनायकौ' अर्थात् कलियुग में गणेश जी एवं श्री दुर्गा जी के अलावे सभी देवता अप्रधान रूप से विद्यमान है। अर्थात् इस युग में इन्हीं दो देवताओं की प्रधानता है। अन्य देवता युगानुरूप अल्पशक्ति सम्पन्न होते हैं। जैसे काई व्यक्ति अपने समय में पद पर रहता है तो उसका महत्त्व अधिक रहता है समय समाप्त होने पर महत्त्व कम हो जाता है। आप देखें! लोक में भी सभी माँगलिक कार्यों के आरम्भ में गणेश जी एवं दुर्गा जी (अम्बिका) की पूजा तो लोग करते ही है। सुप्रसिद्ध दीपावली पर्व पर भी भगवती दुर्गा ही महालक्ष्मी अपने पुत्र गणेश जी के साथ सभी के द्वारा पूजित होती है। दुर्गा सप्तशती के मध्यम चरित्र में भी श्रीमहालक्ष्मी जी ही दुर्गा के रूप में वर्णित है। अर्थात् एक ही महालक्ष्मी, काली एवं सरस्वती के रूप में पूजित होती है। क्योंकि 'सर्वस्याद्या महालक्ष्मीः' अर्थात् सभी देवताओं के आदि में महालक्ष्मी ही है। जिन महिषासुर, शुम्भादि दैत्यों के वध को कोई भी देवता न कर सके उसे भगवती अकेले ही की। अतः वे सभी देवताओं में श्रेष्ठ हैं। भगवती महालक्ष्मी रूपा दुर्गा जी का निर्माण समस्त देवों के तेज से हुआ है। इसीलिए सभी देवता उन्हीं में अपने अपने तेज से प्रविष्ट है। जैसा कि लिखा है -

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेव शरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा।।

श्रीदुर्गा जी जगत् के जन्म, पालन और संहार करने में अकेले ही समर्थ हैं। जबकि देवताओं में अत्यन्त प्रसिद्ध ब्रह्मा जी केवल जन्म देते हैं, विष्णु जी केवल पालन एवं शिव जी संहार करते हैं। इस प्रकार भगवती दुर्गा स्त्री (शक्ति) रूप में परब्रह्म है। क्योंकि परब्रह्म में ही ये तीनों कार्य एक साथ पाये जाते हैं। वास्तव में तो दुर्गा परब्रह्म से भी बढ़कर है, क्योंकि ये परब्रह्म में विद्यमान शाश्वत शक्तिस्वरूपा है। जिस प्रकार शक्तिरूप आश्रय के बिना मनुष्य शव के समान है, यही दशा परब्रह्म की भी है। जगत् का अणु अणु इस पराशक्ति से व्याप्त है। जगत् के कल्याण के लिए दुर्गा (श्रीमहालक्ष्मी) ही परब्रह्मतत्त्व के रूप में प्रकट हो गई। जैसा कि लिखा है - 'अहं ब्रह्मरूपिणी मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्'। आप देखें! भागवत में श्रीकृष्ण जी ने रास के समय इसी दुर्गा जी का आश्रय पाकर महारास में प्रविष्ट हुए, जिन्हें वहाँ योगमाया के रूप में कहा गया है। 'वीक्ष्यरन्तुं मनश्चक्रे योगामायामुपाश्रितः'।

इस प्रकार इस कलिकाल में सभी देवताओं में प्रधान भगवती दुर्गा ही है। अतः इनकी ही आराधना, उपासना, स्तुति आदि जगत् के जीवों को अपने कल्याण या विश्व के कल्याण के लिए अवश्य ही करना चाहिए।

हमारे भारतवर्ष में जिस किसी भी महापुरुष की उन्नति या ऐश्वर्य आज भी चर्चित है उसमें प्रधानता शक्ति की उपासना ही है। कुछ महापुरुषों का नाम उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होता।

सर्वप्रथम पूज्यपाद आदिशंकराचार्य जी! आप लगभग 500 वर्ष पूर्व दक्षिण भारत में पैदा हुए थे। इन्होंने संस्कृत में भगवती त्रिपुरसुन्दरी के अनेको स्तोत्रों की रचना की। आपने विन्ध्यवासिनी माता का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। यह भगवती दुर्गा का ही प्रभाव था कि दुर्धर्ष दिग्विजयी बौद्धों को पराजित कर भारत में पुनः वैदिक सनातन धर्म की प्रतिष्ठा आचार्य शंकर के द्वारा हुई।

महाकवि कालिदास का नाम भी इस पवित्र वर्णन के प्रसंग में हम भूल नहीं सकते हैं। ये केवल भारत के ही नहीं अपितु संसार के सर्वोत्तम संस्कृत कवि माने जाते हैं। इन्हें भगवती काली का साक्षात् दर्शन हुआ था। ये माता के उपासना के कारण ही कालिदास कहलाये। इसी क्रम में महाकवि हर्ष, जिन्होंने नैषधीयचरित महाकाव्य आदि ग्रन्थों की रचना की, इन्हें भी साक्षात् भगवती सरस्वती का दर्शन हुआ था। ये इतने बड़े उद्भट विद्वान् थे कि इनके लिखे गये ग्रन्थों का अर्थ कोई भी समझ नहीं पाता था, तो एक दिन क्षुब्ध होकर दुखी हुए। इन्हें माता का स्वप्न में दर्शन हुआ एवं निर्देश मिला कि रात्रि में दधि खाओ, जिससे कुछ बुद्धि मलिन होगी। जिससे लोगों को तुम्हारे द्वारा रचित ग्रन्थों का अर्थ समझने में सरलता होगी।

क्षत्रपति शिवाजी महाराज एवं गुरुगोविन्द सिंह जी - जिन्होंने अत्यन्त संकटकाल में हिन्दू जाति की रक्षा की, अन्यथा नराधम औरंजेब के उस अत्याचारकाल में हिन्दू जाति का लेश मात्र भी आज नहीं दिखता। आज जो हम आप शिखा सूत्र से सम्पन्न हैं, यह इन्हीं दोनों महावीरों के कार्यों का फल है। ये दोनों भगवती दुर्गा के अनन्य भक्त थे। इन्हे 500 वर्ष पहले जगदम्बा के साक्षात् दर्शन हुए थे।

तात्याटोपे तथा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के अमर इतिहासों से आप भलीभाँति परिचित है

इन्हें भी भगवती के साक्षात् दर्शन हुए थे।

श्रीरामकृष्णपरमहंस जी जिनके शिष्य विवेकानन्द जी थे। जिन्हें सारा देश जानता है। इनका जन्म बंगाल में हुआ था। ये महाकाली के अत्यन्त उच्चकोटि के उपासक थे। आपको महाकाली का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था।

लोकमान्य तिलक जिन्होंने अमर ग्रन्थ गीता रहस्य की रचना की। ये अपने समय के देश के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष थे, इन्होंने अनेको बार भारत स्वराज्य के लिए जेल गए। आप जेल में ही गीता रहस्य की रचना की। आप शक्ति की उपासना से ही इतने उच्चकोटि के महापुरुष हुए। ये प्रतिदिन देवी की वैदिक स्तुति करते थे। ऐसे महापुरुषों में पं. महामना मदनमोहन मालवीय जी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि असंख्य महापुरुष, माँ भगवती की आराधना से ही उच्चकोटि के सन्त विद्वान् महापुरुषों की श्रेणी में अपने को स्थापित किये। अस्तु! यह वर्णन भगवती शक्ति रूपा दुर्गा जी में श्रद्धा बढाने के लिए ही यथाशक्ति यहाँ प्रस्तुत किया गया। इसके बाद-

अब यहाँ दूरी जिज्ञासा जो दुर्गा के विविध स्तोत्रों के रहते हुए दुर्गापाठ (सप्तशती) ही क्यों पढा जाय? इसका समाधान यहाँ यथाशक्ति प्रस्तुत है। वर्तमान समय में भी शास्त्रीय ग्रन्थों में श्री दुर्गा जी के असंख्य स्तोत्र है। यही नहीं लौकिक संस्कृत भाषा में देशी हिन्दी भाषाओं में भी माँ दुर्गा के स्तोत्र है। ऐसी दशा में स्तोत्र का चयन कठिन हो जाता है। इस कारण से यहाँ उनका निर्णय करना अप्रासंगिक नहीं होगा। सभी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत को अतिप्राचीन भाषा के रूप में हम देखते हैं। क्योंकि सभी भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद् शास्त्र, धर्मशास्त्र आदि सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में आज भी उपलब्ध होते हैं। संस्कृत को देववाणी या अमरवाणी भी कहा जाता है जिसका तात्पर्य है कि यह देवताओं की वाणी है। यही कारण है सात्विक ज्ञान का भंडार, यम नियमादि के प्रतिष्ठित सिद्धान्त तथा आध्यात्मिक सदुपदेश सर्वविध कल्याण की कामना से तीनों दुःखों की निवृत्ति के जो अलौकिक उपाय हमारे ऋषियों के द्वारा बताये गये हैं वे संस्कृत भाषा में ही है। अतः संस्कृत भाषा हमारे लिए अत्यन्त ही आदरणीय भाषा है।

दुर्गासप्तशती भी संस्कृत भाषा में ही है। अतः इसी का पाठ करना चाहिए।

आज संस्कृत में तीन प्रकार के स्तोत्र उपलब्ध होते हैं। ऋषि-मुनि प्रणीत कवियों द्वारा रचित एवं विद्वानों द्वारा रचित इन तीनों में ऋषिप्रणीत स्तोत्र ही प्राधान्य है। क्योंकि ऋषियों को तपस्या एवं योग बल से वह दिव्य नेत्र प्राप्त था जिससे तीनों काल की होने वाली घटनायें उन्हें ज्ञात होती थी। यही नहीं, जिनको उद्देश्य करके विविध छन्दों में जिनकी स्तुति करते थे उनका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन होता था। अर्थात् ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः इस उक्ति के अनुसार ऋषि-मुनि देवता का दर्शन करते हुए स्तोत्रों का निर्माण करते थे। इनके द्वारा कथित शब्दों का अनुकरण अर्थ स्वयं करते थे। आजकल के कवि या विद्वान् अर्थ के अनुसार शब्दों की रचना करते हैं। अतः ऋषिकृत स्तोत्र ही अत्यन्त उत्तम एवं सभी के कल्याण के लिए उपयुक्त है। मनुष्य आदि में तो भ्रम प्रमाद आलस्यादि दोषों के कारण छन्दों में दोष भी आ जाता है परन्तु ऋषि प्रणीत स्तोत्रों में इन दोषों का सर्वथा अभाव होने से ये ही ग्राह्य है। कहा भी गया है-

न च स्वयं कृतं स्तोत्रं तथान्येन च यत्कृतम्।

यतः कलौ प्रशंसन्ति ऋषिभिर्भाषितं तु यत्।।

अब देखा जाय तो ऋषिप्रणीत स्तोत्र भी अनेक है। इसके लिए भी दयालु शास्त्रकार स्वयं लिखते हैं-

मार्कण्डेयपुराणोक्तं नित्यं चण्डीस्तवं पठेत्।
सम्यक् हृदिस्थितां नित्यं जन्म कर्मावलिः स्तुतिः।।
एतां द्विजमुखाज्ज्ञात्वा अधीयानो नरः सदा।
विधूय निखिलां मायां सम्यक् ज्ञानं समश्नुते।।
अस्ति गुह्यतमं देव्या माहात्म्यं सर्वसिद्धिदम्।
वाक्यैरर्थैष्च पद्यैष्च सप्तषत्याः शुभप्रदम्।।

इस प्रकार हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सभी स्तोत्रों में सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र भगवती दुर्गा की उपासना के लिए दुर्गासप्तशती ही है। अतः हमें दुर्गासप्तशती का ही पाठ नवरात्र आदि शुभ अवसरों पर करना चाहिए।

2.3.1 दुर्गापाठ के अनुष्ठान में कुछ आवश्यक नियम

दुर्गापाठ में शीघ्रता, गाना गाने की तरह उच्चारण करना, सिर हिलाकर पाठ करना, अपने द्वारा लिखित दुर्गापाठ करना, अर्थ बिना समझे तथा अत्यन्त धीमे स्वर से पाठ करना, ये सभी उपरोक्त बातें निषिद्ध हैं। ऐसा नहीं करना चाहिए। जैसा कि लिखा है-

गीती शीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखित पाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाऽधमाः।।

हमने सुना है कि कुछ समय पहले कवच के प्रसंग में एक सज्जन ने 'भार्यां रक्षतु भैरवी' की जगह 'भार्यां भक्षतु भैरवी' का पाठ किया, एक मास के पाठ के बाद ही स्त्री उनकी उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गई। अतः पाठ में सावधानी अवश्य ही रखनी चाहिए। उच्चारण में शुद्धता होनी चाहिए। हाथ में रखकर पुस्तक को पाठ नहीं करना चाहिए। शुद्ध शब्दों का उच्चारणपूर्वक पाठ करना चाहिए। मानसिक पाठ नहीं। एक विशेष बात और है कि अध्यायों के अन्त में आने वाले 'इति' अध्याय और 'वध' शब्द का उच्चारण नहीं करना चाहिए। इति शब्द के उच्चारण से लक्ष्मी का नाश, वध शब्द के उच्चारण से कुल का नाश, एवं अध्याय शब्दोच्चारण से प्राण का क्षय हो जाता है। अतः इनका उच्चारण नहीं करना चाहिए। जैसा कि कहा गया है-

इति शब्दो हरेल्लक्ष्मीः वधः कुलविनाशकः।
अध्यायो हरते प्राणान् सत्याः सन्तु फलप्रदः।।

इसका शुद्ध उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए 'श्री मार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सत्याः सन्तु मम कामाः या यजमानस्य कामाः' बोलना चाहिए। यह परम्परा काशी के विद्वानों में आज भी देखी जाती है। क्योंकि सर्वाधिक उत्तम पाठ इसी परम्परा में प्राप्त है। अस्तु।

भाई! अब सुनते सुनते आप भी थक गए होंगे एवं लिखते-लिखते हम भी। तो अब आपसे क्यों न कुछ प्रश्न पूछ लिया जाय। तो आइए, तैयार हो जायें, उत्तर देने के लिए।

बोधप्रश्न

क. दुर्गासप्तशती में कितने श्लोक हैं?

ख. इस ग्रन्थ में किस मनु का वर्णन है?

ग. दुर्गापाठ में ऋषि शब्द से किसे कहा गया है?

घ. दुर्गासप्तशती किस पुराण के किस अध्याय से लिया गया है?

ङ. संस्कृत में कितने प्रकार के स्तोत्र मिलते हैं?

च. सप्तशती का संस्कृत में विग्रह कैसे होगा?

च. दुर्गापाठ में कितने चरित्र एवं कितने अध्याय हैं?

2.4 दुर्गा पाठ की विधि

दुर्गा पाठ करने की विधि विविध शास्त्रों के अनुसार (तन्त्र एवं आगम ग्रन्थों के अनुसार) भिन्न भिन्न हैं। हम निर्णय नहीं कर पाते हैं कि कौन सा न्यास छोड़ें और कौन सा करें। यदि शास्त्रों के अनुसार सभी अंगों (पाठों) का अनुपालन करते हैं, तो 24 घंटा बीत जायेंगे पर पाठ का क्रम पूर्ण नहीं हो सकता है। इसके साथ ही इसका निर्णय भी (कर्तव्याकर्तव्य का) हम स्वयं नहीं कर सकते हैं। इसके लिए शास्त्रीय पक्ष ही निर्णायक हैं। इन सभी ऊहापोहों पर विचार करते हुए हम एक निर्णय पर पहुँचते हैं जो सभी के लिए ग्राह्य एवं शास्त्रानुमोदित पक्ष है। यह दुर्गापाठ की परम्परा, काशी की है, जो लगभग हजारों वर्षो से चली आ रही है। एवं जिसका मूल अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित पाठ दुर्गा पाठ की विधि में लेखक ने (हमने) प्रत्यक्ष देखा है। क्योंकि हमें भी छात्र जीवन में इस काशी की परम्पराप्राप्त पाठ में कहीं कहीं सन्देह होने लगा था कि ऐसा ही क्यों? इसके समाधान के लिए मैं एक प्रतिष्ठित विद्वान् से अपनी जिज्ञासा रखी तब उन्होंने एक प्राचीन पद्धति जो हस्तलिखित एवं लगभग 500 वर्ष पुरानी थी उसमें उन्होंने हमें दिखाया, वही परम्परा आज भी है तब जाकर हमें भी विश्वास हुआ। यही परम्परा प्राप्त दुर्गा पाठ आज हम भी करते एवं कराते हैं। सौभाग्य से हमने अक्षरशः गुरुमुख से काशी में दुर्गापाठ पढ़ा है, अतः वही पाठ आपके सामने रख रहा हूँ।

साधक स्मरण करके पवित्र होकर पवित्र आसन पर बैठ कर शुद्ध जल (गंगाजल) से आचमन, प्राणायाम करके 'अपवित्रः पवित्रो वा' इस मन्त्र से अपने ऊपर जल छिड़के। पवित्री धारण करके 'द्यौः शान्तिः' मन्त्र का पाठ करें। इसके बाद हाथ में अक्षत, जल, पुष्प, द्रव्य लेकर भगवती की मूर्ति के सामने संकल्प करें। संकल्प आप को बताया जा चुका है अतः यहाँ देने की जरुरत नहीं है। विशेष रूप से - 'गोत्रः शर्माऽहं' आदि का उच्चारण करके 'अस्मिन् नवरात्र पर्वणि त्रिगुणात्मिकायाः भगवत्याः श्री दुर्गादेव्याः कृपाप्रसादेन सकलापच्छान्तिपूर्वकं सदभीष्टकामना

संसिद्ध्यर्थं त्रिगुणात्मिका जगदम्बा श्री दुर्गादेवता प्रीत्यर्थं, (यदि कोई कामना हो तो उसका उच्चारण करें) यदि निष्काम भाव से करना हो तो यही संकल्प पर्याप्त है। लेखक सदा से ही निष्काम संकल्प (यही संकल्प) करता आया है, क्योंकि माँ सर्वज्ञ हैं, हमारी न्यूनता या दोषों, बाधाओं को अच्छी तरह वह जानती है अतः उनके सामने हम क्या कहें। 'दुर्गासप्तशतीस्तोत्रस्य कवचार्गलाकीलकसहितं नवार्णमन्त्रजपपुरस्सरं देवीसूक्तरात्रिसूक्तं रहस्यत्रयसमन्वितं दुर्गापाठमहं करिष्ये।

इस प्रकार संकल्प करके भगवती दुर्गा का यथालब्धोपचार से पूजन करें एवं प्रणाम करते हुए विनियोग पूर्वक कवच का पाठ करें। कवच पाठ करने के बाद अर्गला स्तोत्र एवं कीलक का पाठ करें। जिसका निर्देश रुद्रयामल में इस प्रकार किया गया है। कुछ आचार्यों के मत से शापोद्धार आदि भी करना चाहिए लेकिन यह मत सर्वमान्य नहीं है। उपरोक्त पाठ ही शास्त्रसम्मत है।

कवचं बीजमादिष्टमर्गलाशक्तिरुच्यते।
कीलकं कीलकं प्राहुः सप्तशत्यामहामनोः।।

यथा सर्वमन्त्रेषु बीजशक्तिकीलकानां प्रथममुच्चारणं तथा सप्तशतीपाठेऽपि कवचार्गलाकीलकानां प्रथमं पाठः स्यात्।

कवचार्गलाकीलक पाठ करने के बाद नर्वाणमन्त्र जप का न्यास करें। ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। श्री महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये । ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मूल मन्त्र से हाथों की शुद्धि करके करन्यास करे।

करन्यासः

ॐ ऐं अंगुष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों से दोनों अंगुठों का स्पर्श)

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों हाथों के अंगुठों से दोनों तर्जनी अंगुलियों का स्पर्श)

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। (अंगूठों से मध्यमा अंगुलियों का स्पर्श)

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। (अनामिका अंगुलियों का स्पर्श)

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (कनिष्ठिका अंगुलियों का स्पर्श)

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। (हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का परस्पर स्पर्श)

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श)

ऊँ ह्रीं शिरसे स्वाहा। (सिर का स्पर्श)
ऊँ क्लीं शिखायै वषट् (शिखा का स्पर्श)
ऊँ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें कन्धे का और बायें हाथ की अंगुलियों से दाहिने कन्धे का साथ ही स्पर्श)
ऊँ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथ की अंगुलियों के अग्र भाग से दोनों नेत्रों और ललाट के मध्य भाग का स्पर्श)

ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से बायीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले जायें और तर्जनी तथा मध्यमा अंगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजाये)

अक्षरन्यासः

ऊँ ऐं नमः, शिखायाम्। ऊँ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ऊँ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ऊँ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ऊँ मुं नमः, वामकर्णे। ऊँ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ऊँ यैं नमः, वामनासापुटे। ऊँ विं नमः, मुखे। ऊँ च्चें नमः, गुह्ये।

इस प्रकार न्यास करके मूलमन्त्र से आठ बार व्यापक (दोनों हाथों द्वारा सिर से लेकर पैर तक के सब अंगों का स्पर्श) करें, फिर प्रत्येक दिशा में चुटकी बजाते हुए न्यास करे-

दिङ्न्यासः

ऊँ ऐं प्राच्यै नमः। ऊँ ऐं आग्नेय्यै नमः। ऊँ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ऊँ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ऊँ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ऊँ क्लीं वायव्यै नमः। ऊँ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ऊँ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूयै नमः।

इन सभी न्यासों को पूर्ण करते हुए श्रीमहाकाली महालक्ष्मी एवं महासरस्वती का निम्न श्लोकों से ध्यान करें।

खड्गं चक्रगदेषु चापपरिधां छूलं भुशुण्डीं शिरः
शंखं सन्दधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वांगभूषावृताम्।
नीलाष्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम्
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्।।
अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्।।
घण्टाशूलहलानि शंखमुसले चक्रं धनुः सायकं

हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्।।

फिर 'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः' इस मन्त्र से माला की पूजा करके प्रार्थना करे-

ऊँ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।
ऊँ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये।।

ऊँ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इसके बाद ''ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे' इस मन्त्र का 108 बार जप करे और -

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि।।

नवार्ण मन्त्र जप के बाद ' ऊँ ऐं हृदयाय नमः, ऊँ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ऊँ क्लीं शिखायै वषट्, ऊँ चामुण्डायै कवचाय हुम, ऊँ विच्चै नेत्रत्रयाय वौषट्, ऊँ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै अस्त्राय फट्' पढ़कर ह्रदयादि न्यास करें।

यहाँ पर नवार्ण मन्त्र जप के पहले भी न्यास एवं जप के बाद रात्रिसूक्त का पाठ करना चाहिए। जो 'विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थिति संहारकारिणी' से लेकर 'बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ' तक है। इसमें 15 श्लोक हैं। रात्रिसूक्त पाठ के बाद सप्तशती के पाठ का विनियोग हाथ में जल लेकर करना चाहिए।

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषय, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामयोर्बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

इसके बाद दुर्गा पाठ का न्यास करें -

करन्यासः

ऊँ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणो तथा।
शंखिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिधायुधा।। अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ऊँ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च।। तर्जनीभ्यां नमः।
ऊँ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि।। मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्।। अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः।। कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते।। करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।
ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा ...... हृदयाय नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि .... शिरसे स्वाहा।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां .... शिखायै वषट्।
ॐ सौम्यानि यानि .... कवचाय हुम्।
ॐ खड्गशूलगदादीनि ...... नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे .... अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे।।

(यहाँ पर कुछ आचार्य कहते हैं कि इस विनियोग की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्येक चरित्र के आरम्भ में वही विनियोग है। बात भी ठीक है। इसे कर लेने से भी कोई हानि नहीं होगी। यहाँ कर लेने के बाद तत्तत् चरित्रों के आरम्भ में भी विनियोग कर सकते हैं।)

यह विनियोग एवं ध्यान दुर्गा पाठ का है। अतः सीधे प्रथम चरित्र का विनियोग एवं खड्गं चक्रगदेषु चाप का पाठ करते हुए ध्यान करके प्रथम चरित्र का पाठ प्रारम्भ करना चाहिए। जो सावर्णिः सूर्यतनयो. से प्रारम्भ होता है। एक बात अवश्य ध्यान देना चाहिए कि अध्याय के बीच में कोई व्यवधान आ जाय, या कुछ बोल देने पर पुनः अध्याय को प्रारम्भ से पढ़ना चाहिए। 'अध्यायमध्ये न विरमेत्' लिखा है। इसके बाद क्रमशः तेरह अध्याय तक पाठ करना चाहिए। पाठ के बाद - 'खड्गिनी शूलिनी घोरा' से करन्यास एवं हृदयादिन्यास करें तथा तत्रोक्त देवीसूक्त का पाठ करना चाहिए। नमो देव्यै महादेव्यै से लेकर भक्तिविनम्रमूर्तिभिः. तक यह तन्त्रोक्त देवीसूक्त है। इस देवी सूक्त के पाठ के बाद नर्वाण मन्त्र जप का - ॐ ऐं हृदयाय नमः' आदि से अस्त्राय फट् तक न्यास करें एवं नवार्ण मन्त्र का जप करें। जप निवेदन के बाद पुनः हृदयादि न्यास करें। इसके साथ ही तीनों रहस्यों का पाठ विनियोग सहित करें। पाठ करने के बाद कुंजिका स्तोत्र का पाठ एवं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्र का पाठ करें एवं पाठ भगवती को समर्पित करें। इस प्रकार आपका एक दिन का पाठ यहाँ पूर्ण हो गया। इसी क्रम से नवरात्र में यथाशक्ति चण्डी पाठ करना चाहिए। यह एक पाठ

हुआ। ऐसे ही नव पाठ करें। शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार यहाँ दुर्गापाठ के प्रारम्भ में नर्वाण मन्त्र जप एवं अन्त में तथा रात्रिसूक्त का पाठ आदि में एवं देवी सूक्त का पाठ अन्त में करने का विधान बताया गया है जो आपको यहाँ बताया गया।

यही दुर्गापाठ की अत्युत्तम विधि है। इस क्रम से पाठ करने पर शास्त्रविधि से पाठ सम्पन्न होता है एवं शास्त्र आज्ञा का अनुपालन भी हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जो भिन्न- भिन्न विधियाँ एवं पाठ का क्रम अन्य ग्रन्थों में दिया गया है वह भी आदरणीय है उसका भी चिन्तन मनन आप अवश्य कर सकते हैं परन्तु दुर्गापाठ के अंगभूत वे स्तोत्र नहीं है। दूसरी बात यह है यह पाठ सात्विक परम्पराओं का अनुपालन करता है। जो लोग राजस, तामस परम्परा प्राप्त पद्धति से पाठ करना चाहते हैं वे हमारे लिए प्रणम्य है। वे स्वेच्छापूर्वक जिस प्रकार चाहे वैसा कर सकते हैं। लेकिन जो विधि आपको बताई गई यह वे वैदिक सनातन धर्म परम्परा प्राप्त पद्धति है। अनुकरण के लिए आप स्वतन्त्र है। अस्तु!

अब आपके लिए कुछ इससे भी सम्बद्ध बोध प्रश्न दिये जा रहे हैं। जिनका उत्तर आपको देना है।

बोध प्रश्न

क. रात्रिसूक्त का पाठ कब करें?
ख. कवच का क्या अर्थ है?
ग. अर्गला किसे कहते हैं?
घ. देवीसूक्त का कब पाठ करते हैं?

2.5 सारांश

प्रस्तुत इस इकाई में प्रधान रूप से दुर्गापाठ के नियम एवं पाठ करने की विधि का शास्त्रीय रीति से ज्ञान कराया गया। इसके साथ ही दुर्गासप्तशती का परिचय, कुछ शाक्त सन्त महापुरुषों की भगवती दुर्गा के प्रति उपासना या साधना का फल जिसके प्रभाव से आज भी वे अपने यशःकाय से जीवित हैं। इसमें भगवती दुर्गा की उपासना का ही प्रत्यक्ष फल ज्ञात होता है। इसमें सन्देह नहीं। इसी क्रम में आपको यह भी बताया गया है कि अन्य देवताओं को छोड़कर दुर्गा जी की ही आराधना क्यों किया जाय? एवं नवरात्रों में दुर्गापाठ का ही महत्त्व इतना अधिक क्यों है? इन सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया। पाठ से सम्बद्ध कुछ विशेष नियम को बताते हुए चण्डी पाठ कैसे करें? इसे भी आपको उहापोह पूर्वक काशी की पाण्डित्य परम्परा के अनुसार यथासंभव आपके लिए प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार यह इकाई दुर्गापाठ की विधि से पूर्ण होती है।

2.6 पारभाषिक शब्दावली

क. अनर्थज्ञः	-	अर्थ न जानने वाला
ख. शीघ्री	-	अत्यन्त शीघ्र पाठ करने वाला
ग. लिखितपाठकः	-	अपने हाथ से लिखकर स्तोत्र पढने वाला
घ. क्रौष्टुकि	-	भागुरि ऋषि
ङ. दारैः	-	भार्या द्वारा
च. वैश्य	-	समाधि नाम का वैश्य
छ. राजोवाच	-	राजा सुरथ ने कहा
ज. प्रणव	-	ऊँकार
झ. तुष्टाव	-	स्तुति किया

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर (क)

क. दुर्गासप्तशती में उवाच, अर्ध श्लोक आदि मिलाकर 700 श्लोक हैं।

ख. इसमें 8वें मनु 'सावर्णिः' का वर्णन है।

ग. इसमें क्रौष्टुकि जी को ऋषि शब्द से कहा गया है।

घ. यह मार्कण्डेय पुराण के (78 से 90 अध्याय तक) से लिया गया है।

ङ. संस्कृत में लगभग तीन प्रकार के स्तोत्र पाये जाते हैं।

च. सप्तानां शतानां समाहारः इति सप्तशती ऐसा विग्रह होता है।

छ. दुर्गा पाठ में तीन चरित्र एवं तेरह अध्याय हैं।

बोधप्रश्न के उत्तर (ख)

क. रात्रिसूक्त का पाठ दुर्गापाठ के प्रारम्भ में किया जाता है।

ख. कवच शरीर की रक्षा करता है। इसे रक्षक कहते हैं। वर्म भी कहते हैं।

ग. यह दरवाजे को बन्द करके रोकने के लिए लकड़ी का बना यन्त्र है। यह शब्द अवरोध के अर्थ में बहुधा प्रयुक्त होता है।

घ. देवीसूक्त का पाठ दुर्गापाठ के अन्त में किया जाता है।

2.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

क. दुर्गासप्तशती

ख. रुद्रयामलतन्त्र

ग. मार्कण्डेय पुराण

घ. दुर्गार्चन पद्धति

ङ. दुर्गोपासना कल्पद्रुम

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. श्रीदुर्गा जी के महत्त्व पर प्रकाश डालें।

ख. दुर्गापाठ की विधि का विस्तार से वर्णन करें।

इकाई – 3 शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी पाठ विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 शतचण्डी पाठ परिचय

3.3.1 याग विधि

3.3.2 शतचण्डी विधि

3.4 सहस्रचण्डी याग

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

3.8 सन्दर्भग्रन्थ सूची

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में दुर्गा सप्तशती के पाठ की शास्त्रीय विधि का ज्ञान आपको कराया गया। इसके साथ ही इस विषय से सम्बद्ध बहुत सारी बातों को आप तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया गया। अब आप पूर्वोक्त इकाई के ज्ञान से दुर्गापाठ स्वयं कर सकते हैं तथा अन्यत्र भी करा सकते हैं यह मुझे पूर्णतया विश्वास है। क्योंकि पाठ के पहले जो भी आपके मन में जिज्ञासायें उत्पन्न होगी, उन्हें मैं स्वयं प्रस्तुत करके उनका समाधान शास्त्रीय रीति से दिया है। अतः सन्देह का तो कहीं भी अवसर ही नहीं हैं। यहाँ से नई इकाई प्रारम्भ हो रही है।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी पाठ का विधान क्या है? क्यों किया जाता है? कितने समय में पूरा होगा? कितने ब्राह्मण रहेंगे? एवं कैसे सम्पन्न होगा? आदि-आदि विषयों से आपका परिचय कराया जायेगा। इसी व्याज से इन प्रश्नों का शास्त्रीय समाधान भी आपको मिल जायेगा।

3.3 शतचण्डी-पाठ परिचय

आप देखें! इस संसार में जिस प्रकार से दो प्रकार के पदार्थ देखे जाते हैं - एक छोटा, एक बड़ा । उसी तरह विभिन्न अवसरों पर अनुष्ठान भी छोटा या बड़ा होता है। जैसे - नवचण्डी छोटा है, तो शतचण्डी बड़ा। समय समय पर दोनों की आवश्यकता जीवन में होती है। जहाँ सुई की आवश्यकता है, वहाँ तलवार से काम नहीं चलता है, उसी प्रकार जहाँ तलवार की जरुरत है, वहाँ सुई निरर्थक सिद्ध होती है। अतः दोनों की आवश्यकता होती है। इसी बात को प्रकारान्तर से शास्त्रों में व्यष्टि एवं समष्टि शब्द से कहा गया है। हम उधर नहीं जायेंगे, क्योंकि विषय कठिन हो जायेगा। यहाँ छोटा, बड़ा या व्यष्टि, समष्टि से तात्पर्य यह है कि वृक्षों के समूह को हम जंगल कहते हैं जो समष्टि है, एवं प्रत्येक अलग-अलग वृक्ष को हम व्यष्टि कहते हैं। व्यष्टि छोटा होता है एवं समष्टि बड़ा होता है। व्यक्ति व्यष्टि है तो समाज समष्टि है।

वृक्ष से एक व्यक्ति को लाभ मिलता है, लेकिन जंगल से बहुत लोगों को। इसीलिए हमारे यहाँ शास्त्रों में भी यज्ञ के दो भेद बताये गये हैं - एक यज्ञ एवं दूसरा महायज्ञ। जो अपने (व्यक्तिगत) ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण के लिए किया जाय उसे यज्ञ कहते हैं, जैसे पुत्रेष्टि याग आदि। एवं जो विश्व के कल्याण के लिए किया जाय, उन्हें महायज्ञ कहते हैं। जैसे - पंचमहायज्ञ आदि। इसीलिए शास्त्र में 'समष्टिकल्याणसम्बन्धात् महायज्ञः' कहा गया है। महर्षि अंगिरा ने भी - यज्ञमहायज्ञौ व्यष्टि समष्टि सम्बन्धात्' कहा है।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जो स्वयं की कामना से प्रेरित होकर केवल आत्मलाभ के लिए जो अनुष्ठान किया जाता है उसे यज्ञ कहते हैं। इसमें स्वार्थ की प्रधानता होती है, एवं महायज्ञ, जगत् के कल्याण के लिए किया जाता है। इसका सम्बन्ध समष्टि से होने के कारण इसमें निःस्वार्थता की प्रधानता होती है। इसीलिए स्वयं के लिए यज्ञ करने के अवसर पर तो मुहूर्त आदि भी देखे जाते हैं, परन्तु विश्वकल्याण के निमित्त यज्ञ करने के अवसर पर कभी कभी मुहूर्त आदि का भी विचार नहीं

किया जाता है, क्योंकि उसमें कोई व्यक्तिगत कामना नहीं रहती है। यह जगत् के कल्याण के लिए होता है। उसी प्रकार यहाँ चण्डीपाठ (दुर्गापाठ) नवरात्र आदि में करना यह एक प्रकार से आत्मकल्याण के लिए है, परन्तु शतचण्डी या सहस्रचण्डी महायाग करना या कराना विश्वकल्याण के लिए ही है। परन्तु आजकल बड़े बड़े लोगों के यहाँ भी शतचण्डी या सहस्रचण्डी याग देखे जाते हैं। परन्तु शास्त्रीय मान्यता तो यही है कि सहस्रचण्डी आदि याग विश्वकल्याण के निमित्त ही किया जाय। इसके लिए आगे हम शास्त्रीय प्रमाणों को भी आपके लिए उपलब्ध करायेंगे। यहाँ एक बात और ध्यान देने की है, कि जिन महानुभावों की कामनाओं की पूर्ति कदाचित् नवचण्डी से नहीं होती है, वे अपने लिए भी शतचण्डी याग करते हैं, क्योंकि बड़े लोगों की बड़ी कामना होती है। अस्तु!

सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि हम शतचण्डी क्यों करें? एवं शतचण्डी का अर्थ क्या है? पहले शतचण्डी का अर्थ आप समझें! दुर्गासप्तशती के 100 पाठ को शतचण्डी कहते हैं। लेकिन अनुष्ठानात्मक होने के कारण इसमें 110 पाठ होना चाहिए। दुर्गापाठ की विधि में जो आपको बताया गया है वह एक पाठ है। उसी तरह सौ पाठ $ 10 पाठ जिस अनुष्ठान में हो उसे शतचण्डी कहते हैं। कुछ दुर्गापाठ की संख्याओं एवं उनके फलों का निर्देश वाराहीतन्त्र ग्रन्थ में इस प्रकार किया गया है।

ग्रहों की शान्ति के लिए 5 दुर्गापाठ, महाभय होने पर सात पाठ, नवपाठ से घर में शान्ति होती है। ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए 11 पाठ, बन्धन (कारागृह) से मुक्ति के लिए 25 पाठ। इसी प्रकार भूकम्प, महापातक, राष्ट्र में अशान्ति दुर्भिक्ष महाप्रलय आदि के होने पर 100 पाठ करना चाहिए जिसे यहाँ शतचण्डी शब्द से कहा गया है। लक्ष्मी की वृद्धि, राज्य की वृद्धि एवं मन में चिन्तित सभी मनोरथों की प्राप्ति के लिए 108 पाठ करना चाहिए। शतचण्डी में 110 पाठ होना चाहिए। अधिकस्य अधिकं फलम्। इस अनुष्ठानात्मक यज्ञ में दशांश, तर्पण, मार्जन आदि न करने पर 125 पाठ से शतचण्डी पूर्ण हो जाती है। इसका मूल भाग यह है-

ग्रहोपशान्त्यै कर्तव्यं पंचावृत्तं वरानने
महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तं समुन्नयेत्।
नवावृत्या भवेच्छान्तिर्वाजपेयफलं भवेत्
राजवश्याय भूत्यै च रुद्रावृत्तमुदीरयेत्।।
पंचाविंशावर्तनात्तु भवेद् बन्ध विमोक्षणम्
वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ तथा च जलप्लावने।
राष्ट्रे आपत्ति जाते च तथा चैवातिपातके
श्रेयो वृद्धिः शतावृत्या राज्यवृद्धिस्तथापरा।।
मनसा चिन्तितं देवि सिध्येदष्टोत्तरात् शतात्।
देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमिमां जपेत्।।

अब जिज्ञासा होती है कि लगभग 125 पाठ वाली शतचण्डी कैसे हो? इस पर विचार करते हैं।

शतचण्डी तो पाँच दिन या नव दिन में सम्पन्न होती है। इसमें ब्राह्मणों की संख्या के अनुसार 7 दिन में भी सम्पन्न होती है। पाँच दिन में होने वाली शतचण्डीयाग में वृद्धिक्रम से दुर्गापाठ होगा। इसमें 10 ब्राह्मण मिलकर पहले दिन एक पाठ = 10 पाठ, दूसरे दिन दो पाठ = 20 पाठ, तीसरे दिन

3 पाठ = 30 पाठ, चौथे दिन 4 पाठ = 40 पाठ इस प्रकार 10$20$30$40=100 पाठ हो जायेगा। पाँचवे दिन हवन तर्पण मार्जन पूर्णाहुति ब्राह्मणभोजन आदि होगा। सात दिन के अनुसार 10 ब्राह्मण पहले दिन एक पाठ = 10 पाठ, दूसरे दिन से 2 पाठ प्रत्येक ब्राह्मण = 20 पाठ, छठे दिन तक एवं सातवें दिन पूर्णाहुति। नव दिन वाले शतचण्डी में 10 पाठ प्रतिदिन होगा एवं अन्तिम दिन एक-एक पाठ करेंगे जो मिलकर 10 पाठ हुआ एवं अन्तिम दिन मिलकर 20 पाठ होगा एवं पूर्णाहुति आदि होगी।

यह तो शतचण्डी पाठ की संख्या, ब्राह्मणों की संख्या एवं दिन की संख्या पर आपसे कुछ चर्चा हुई।

अब कुछ और शास्त्रीय विधानों पर आपसे चर्चा करेंगे -

3.3.1 याग विधि

अब हम आपको रुद्रयामलग्रन्थ का अवलोकन करायेंगे - जहाँ शतचण्डीयाग का विधान, विशेष रूप से वर्णित है। यथा-

शतचण्डी विधानं तु प्रोच्यमानं श्रृणुष्वतत्
सर्वोपद्रवनाशार्थं शतचण्डीं समारभेत्।
षोडशस्तम्भसंयुक्तं मण्डपं पल्लवोज्वलम्
चतुःकोणयुतां वेदीं मध्ये कुर्याद् विधानतः।
पक्वेष्टका चितां रम्यामुच्छ्राये हस्तसंमिताम्
पंचवर्णरजोभिश्च कुर्यान्मण्डलकं शुभम्॥
आचार्येण समं विप्रान्वरयेद्दशसुव्रतान्
ऐशान्यां स्थापयेत् कुंभं पूर्वोक्त विधिनाहरेः।
मूर्तिं च देव्याः कुर्वीत सुवर्णस्य पलेन वै
देवीं सम्पूज्य विधिवज्जपं कुर्युर्दशद्विजाः
शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम्
चण्डीसप्तशतीमध्ये संपुटोऽमुदाहृतः।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि जपेद्दिनचतुष्टयम्।
पंचमे दिवसे प्रातर्होमं कुर्याद् विधानतः॥
शुद्धं च पायसं दुर्वा यवान्शुक्लतिलानपि
चण्डीपाठस्य होमं तु प्रतिश्लोकं दशांशतः॥
हुत्वा पूर्णाहुतिं दद्याद् विप्रेभ्यो दक्षिणां क्रमात्
अभिषेकं ततः कुर्युयजमानस्य ऋत्विजः
एवं कृत्वाभरेशान् सर्वसिद्धिः प्रजायते
इति रुद्रयामलोक्तं शतचण्डीविधानम्।

यह विधान रुद्रयामलतन्त्र में विस्तार से वर्णित है यहाँ मैंने कुछ मुख्य-मुख्य विषयों को ही लिया है। यह तो संस्कृत में हैं। अब आपको इसका भाव हिन्दी में समझा रहा हूँ।

सभी उपद्रवों के नाश के लिए शतचण्डी याग किया जाता है। इसमें 16 स्तम्भ से युक्त

मण्डप का निर्माण करना चाहिए। मण्डप 18 या 16 हाथ का लम्बा-चौड़ा उत्तम होता है। इन 16 स्तम्भों में देवताओं का आवाहन होता है - क्रम से - ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र, सूर्य, गणेश, यम, नागराज, स्कन्द, वायु, सोम, वरुण, अष्टवसु, कुबेर, बृहस्पति और विश्वकर्मा। यह मण्डप ध्वजा पताकाओं से सुशोभित होना चाहिए।

मण्डप के भीतर चारों दिशाओं में चार वेदी बनती है। जैसे ईशानकोण में ग्रहवेदी, अग्निकोण में योगिनी वेदी, नैर्ऋत्यकोण में वास्तुवेदी, वायव्यकोण में क्षेत्रपालवेदी एवं प्रधानवेदी मध्य में होती है। सुवर्ण की प्रतिमा भगवती दुर्गा की होती है जिसका प्रधानवेदी पर आवाहन स्थापन एवं पूजन प्रतिदिन होता है। आचार्य के साथ 10 अन्य ब्राह्मणों का मधुपर्क से अर्चन करके यज्ञ में वरण किया जाता है। जो जितेन्द्रिय एवं सन्तोषी तथा वेदज्ञ होते हैं।

यज्ञमण्डप के बाहर 18 कलश होते हैं जिनमें 4 कलश मण्डप के चारों दिशाओं में एवं चार विदिशाओं में रखे जाते हैं। एक कलश पूर्व एवं ईशानकोण के मध्य ब्रह्मा का होता है और एक कलश पश्चिम एवं नैर्ऋत्यकोण के मध्य में अनन्त देवता का होता है। ये दस कलश दिकपाल के होते हैं। मण्डप के चारों द्वारों पर दो-दो कलश होते हैं जिन्हें द्वारकलश कहते हैं। इस प्रकार यज्ञमण्डप में 18 कलश होते हैं।

इस प्रकार के मण्डप में प्रतिदिन ब्राह्मणलोग देवी का पूजन सम्पन्न करके दुर्गापाठ करते हैं। इस पाठ के आदि एवं अन्त में नवार्ण मन्त्र का विधिवत् जप किया जाता है। यहाँ वृद्धिक्रम से पाठ का विधान वर्णित है जिसे परिचय में ही आपको बता दिया गया है। पाँचवें दिन, घी, तिल, पायस (खीर) आदि हवनीय द्रव्यों से प्रतिश्लोक पढ़कर दशांश हवन करना चाहिए। दशांश का अर्थ यह है, कि सौ पाठ पूर्ण होने पर 10 पाठ से हवन करना चाहिए। यदि 10 ब्राह्मणों को हवन में नियुक्त कर एक आवृत्ति दुर्गापाठ की हो तो दशांश हो जाता है। इसके बाद तर्पण, मार्जन, पूर्णाहुति एवं ब्राह्मणभोजन कराया जाता है। ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर, यजमान का कलश के जल से अभिषेक करना चाहिए। इस प्रकार शतचण्डी याग के करने से यजमान के सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। यह प्रयोग (शतचण्डी याग) रुद्रयामलतन्त्र के अनुसार लिखा गया है। आज कल भी इसी परम्परा का निर्वहण ब्राह्मणलोग करते हैं, जिसके फलस्वरूप करने वाले सुखी रहते हैं।

शतचण्डी का एक विधान डामरतन्त्र में भी लिखा है, उसे भी थोड़ा देख लिया जाय। यदि इसमें कुछ विशेष बातें होगी तो उन्हें भी यहाँ लिखने का प्रयास किया जायेगा।

शतचण्डी विधानं हि यथावत् कथयाम्यहम् ।
सुघोरायामनावृष्ट्यां भूकम्पे च सुदारुणे ।।
परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते ।
राजवादादिकार्येषु आपत्सु सुतजन्मनि ।।
महोपघातनाशाय पंचविंशतियोजने ।
देशे सर्वत्रशान्त्यर्थं शतचण्डीमिमां जपेत् ।।

शतचण्डी याग का यही प्रयोजन पूर्वोक्त तन्त्र में भी दिया गया है। मण्डप का निर्माण एवं कुण्ड निर्माण आदि की प्रक्रिया भी पूर्व की ही तरह है। हाँ! एक बात यह है कि यज्ञ में किस प्रकार के ब्राह्मणों का वरण हो, इसमें ब्राह्मणों के गुणों का वर्णन है। ब्राह्मण कैसे हो?

सदाचाराः कुलीनाश्च हीमन्तः सत्यवादिनः।
चण्डिकापाठसम्पूर्णा दयावन्तो जितेन्द्रियः।।
ईदृग्लक्षणसंयुक्ता दम्भमोहविवर्जिताः
दशविप्रान-समभ्यर्च्य महालक्ष्मीस्वरूपिणः
मधुपर्कविधानेन यथावद्तद्वदाम्यहम्।।

अर्थात् शतचण्डी याग में वृणीत ब्राह्मणों को दयावान्, जितेन्द्रिय, लज्जाशील, विद्वान्, सदाचारी, दम्भमोह से रहित आदि गुणों से युक्त होना चाहिए। ऐसे ब्राह्मणों का मधुपर्क विधान से पूजन करके वरण करना चाहिए। इनमें जो आचार्य होते हैं उन्हें देशिक कहा गया है।

ददाति पूजनेऽनुज्ञां देशिकस्य कृतांजलिः
देशिकः सर्वमन्त्रज्ञो नवभिर्ब्राह्मणैः सह।
नवग्रहांश्च दिग्देवीलोकपाल समन्वितः।
दिशापालांश्च सम्पूज्य कलशस्थाप्य पूज्य च।
मण्डपस्य चतुर्दिक्षु दत्वा भूतबलिर्बहिः।
मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारि द्वारि निवेशयेत्।

इस प्रकार यहाँ नवग्रहों का पूजन, दिकपालों का पूजन एवं प्रत्येक द्वार पर दो दो कलशों के रखने का विधान बताया गया है। 10 कन्याओं के भोजन का विधान भी इस ग्रन्थ में दिया गया है-

कुमार्यो दस संख्याता भोज्या विप्रा दशोत्तमः ।
महाकाली महालक्ष्मी सरस्वत्या जपं जपन् ।।

इस ग्रन्थ के अनुसार यह कार्य पहले दिन होना चाहिए। लेकिन अन्य शास्त्रों के अनुसार एवं लौकिक आचार को भी ध्यान में रखकर यह यज्ञ के अन्त में अर्थात् पूर्णाहुति के दिन कन्या पूजन के रूप में होता है। कुछ लोग अष्टमी को भी कर लेते हैं। यहाँ भी पाँचवें दिन होम का विधान है - होमः स्यात् पंचमेऽहनि। पायसं सर्पिषायुक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। इसमें काली तिल की जगह सफेद तिल से भी हवन करने का विधान बताया गया है। जो आज के समय के लिए ग्राह्य है। क्योंकि काली तिल में आजकल तेल नहीं दिखता है। इसका कारण आप भी जानते हैं बताने की जरुरत नहीं है।

पुष्पांजलि के लिए विशेष निर्देश है - यस्याः प्रभावमतुलं - इस श्लोक से देवी को पुष्पांजलि करने को कहा गया है। शेष बातें सामान्य है। अतः उन्हें यहाँ लिखने की जरुरत नहीं है।

मन्त्रमहोदधिग्रन्थ में भी शतचण्डी याग का विधान प्राप्त होता है जो अधिक प्रचलित है। उसे भी क्यों न यहाँ देख लिया जाय, तो आइये! उसे भी देखते हैं।

3.3.2 शतचण्डीप्रयोगः

मन्त्रमहोदधौ-
शतचण्डीविधानं तु प्रवक्ष्ये प्रीतये नृणाम् ।
नृणोपद्रव आपन्ने दुर्भिक्षे भूमिकम्पने ।।
अतिवृष्ट्यामनावृष्टौ परचक्रभये क्षये ।
सर्वे विघ्ना विनश्यन्ति शतचण्डीविधौ कृते ।।

मन्त्रमहोदधि-वर्णित-शतचण्डी प्रयोग - साधक के कल्याण के लिए शतचण्डी विधान का

वर्णन करते हैं। राज्योपद्रव, दुर्भिक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि और शत्रुकृत चक्रभय आदि समस्त विघ्न शतचण्डी विधान के जानने एवं करने से नष्ट होते हैं।

रोगाणां वैरिणां नाशौ धन-पुत्र-समृद्धयः ।
शंकरस्य भवान्या वा प्रासादनिकटे शुभम् ।।
मण्डपं द्वारवेद्याढ्यं कुर्यात् स-ध्वजतोरणम् ।
तत्र कुण्डं प्रकुर्वीत प्रतीच्यां मध्यतोऽपि वा ।।

इसी प्रकार इसके करने से रोग, शत्रु आदि भी नष्ट होते हैं। शिव अथवा दुर्गा-मन्दिर में, ध्वजा, तोरण आदि से सुसज्जित मण्डप एवं द्वार का निर्माण करे। तथा पश्चिम की ओर अथवा मध्य भाग में कुण्ड का निर्माण करे।।

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा वृणुयाद् दशवाडवान् ।
जितेन्द्रियान् सदाचारान् कुलीनान् सत्यवादिनः ।।
व्युत्पन्नांश्चण्डिकापाठरतान् लज्जा-दयावतः ।
मधुपर्कविधानेन स्वर्ण-वस्त्रादि-दानतः ।।

साधक को चाहिए कि स्नान आदि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर जितेन्द्रिय, सदाचारी, कुलीन, सत्यवादी, व्युत्पन्न, देवी के नित्य पाठ में तत्पर एवं लज्जा, दयावान् ऐसे दश ब्राह्मणों का मधुपर्क विधान तथा स्वर्ण, वस्त्र आदि से सत्कृत कर वरण करें।

जपार्थमासनं मालां दद्यात्तेभ्योऽपि भोजनम्।
ते हविष्यान्नमश्नन्तो मन्त्रार्थगतमानसाः।।
भूमौ शयानाः प्रत्येकं जपेयुश्चण्डिकास्तवम्।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं दशकृत्वः सचेतसः।।
नवार्णं चण्डिकामन्त्रं जपेयुश्चाऽयुतं पृथक्।

(अष्टमी-नवमी-चतुर्दशी-पौर्णमासीषु यथा शतावृत्तिमसमाप्तिर्भवति तथाऽऽरम्भः कर्तव्य इति साम्प्रदायिकाः।)

यजमानः पूजयेच्च कन्यानां नवकं शुभम्।।
द्विवर्षाद्या दशाब्दान्ताः कुमारीः परिपूजयेत्।
नाऽधिकांगीं न हीनांगीं कुष्ठिनीं च व्रणांकिताम्।।
अन्धां काणां केकरां च कुरूपां रोमयुक्-तनुम्।
दासीजातां रोगयुक्तां दुष्टां कन्यां न पूजयेत्।।

उन वृणीत ब्राह्मणों को आसन एवं जप के लिए रुद्राक्ष की माला तथा भोजन प्रदान करे। वृणीत ब्राह्मणों को चाहिए कि वे हविष्यान्न ही भोजन करें। अपने अन्तःकरण में निरन्तर चण्डी (दुर्गा) मन्त्रार्थ का चिन्तन करते हुए भूमि पर शयन करें। इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गा सप्तशती का पाठ करें तथा दस हजार जापक नित्य नवार्ण मन्त्र का जप करें, या प्रत्येक ब्राह्मण प्रतिदिन दस हजार जप करें। (साथ ही अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथि में शतावृत्ति पाठ समाप्त हो ऐसी व्यवस्था करें।) तत्पश्चात् यजमान दो वर्ष से लेकर दस वर्ष पर्यन्त नव कुमारिकाओं

का पूजन करें। वे कुमारियाँ अधिक अंग, हीन अंग, कोढ़ी, फोड़ा-फुन्सी से उत्पन्न, रोगी और दुष्ट स्वभाव वाली न हो, ऐसी कन्याओं का पूजन न करे।

विप्रां सर्वेष्टसंसिद्धयै यशसे क्षत्रियोद्भवाम् ।
वैश्यजां धनलाभाय पुत्राप्त्यै शूद्रजां यजेत् ।।

समस्त कार्य की सिद्धि के लिए ब्राह्मण कुमारिकाओं का, यश के लिए क्षत्रिय कुमारिकाओं का, धन-प्राप्ति के लिए वैश्य कुमारिकाओं का और पुत्र-प्राप्ति के निमित्त शूद्र कुमारिकाओं का पूजन करें। यहाँ जिज्ञासा होगी कि कुमारी किसे कहा जाता है? इसका उत्तर नीचे दिया जा रहा है।

द्विवर्षा सा कुमार्युक्ता त्रिमूर्तिर्हायनत्रिका ।
चतुरब्दा तु कल्याणी पंचवर्षा तु रोहिणी ।।
षडब्दा कालिका प्रोक्ता चण्डिका सप्तहायनी ।
अष्टवर्षा शाम्भवी स्याद् दुर्गा तु नवहायनी ।।
सुभद्रा दशवर्षोक्ता नाममन्त्रैः प्रपूजयेत् ।
तासामावाहने मन्त्रः प्रोच्यते शंकरोदितः ।।
मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात् कन्यामावाहयाम्यहम् ।।
कुमारिकादि-कन्यानां पूजामन्त्रान् ब्रुवेऽधुना ।

दो वर्ष की कन्या 'कुमारी', तीन वर्ष की 'त्रिमूर्ति', चार वर्ष की 'कल्याणी', पाँच वर्ष की 'रोहिणी', छह वर्ष की 'कालिका', सात वर्ष की 'ख्ण्डिका', आठ वर्ष की 'शाम्भवी', नव वर्ष की 'दुर्गा' तथा दस वर्ष की कन्या का नाम 'सुभद्रा' है। इन नवों कन्याओं का शंकर द्वारा कथित आवाहन आदि के मन्त्रों से 'मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं.......' से लेकर 'कन्यामावाहयाम्यहम्' तक पढ़कर पूजन करे।

कन्यापूजनमन्त्राः

जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि ।
पूजां गृहाण कौमारि! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते।।
त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम् ।।

इसके बाद कुमारिका पूजन आदि मन्त्रों का वर्णन करते हुए कहते हैं, जो इस प्रकार है - 'जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये.....' से लेकर 'जगन्मातर्नमोऽस्तु ते' तक पढ़कर कुमारी का पूजन करे। 'त्रिपुरां त्रिपुराधारां......' से 'त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्' पर्यन्त पढकर त्रिमूर्ति कुमारी का गन्ध, अक्षत और पुष्पादि द्वारा अर्चना करे।

कालात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम्।।
अणिमादिगुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम्।
अनन्तशक्तिकां लक्ष्मीं रोहिणीं पूजयाम्यहम्।।
कामाचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।

कामदां करुणोदारां कालिकां पूजयाम्यहम्।।

'कालात्मिकां कलातीतां .....' से लेकर 'कल्याणीं पूजयाम्यहम्' तक पढ़कर कल्याणी का, 'अणिमादि-गुणाधारां.........' से 'रोहिणीं पूजयाम्यहम्' तक पढ़कर रोहिणी का तथा 'कामाचारां शुभां कान्तां ....' से 'कालिकां पूजयाम्यहम्' तक पढ़कर कालिका का पूजन करे।

चण्डवीरां चण्डमायां चण्ड-मुण्ड-प्रभंजनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्।।
सदाऽऽनन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वभूतात्मिकां लक्ष्मीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्।।
दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भव-दुःख-विनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गार्ति-नाशिनीम्।।
सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुख-सौभाग्य-दायिनीम्।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्।।
एतैर्मन्त्रैः पुराणोक्तैस्तां तां कन्यां समर्चयेत्।
गन्धैः पुष्पैर्भक्ष्य-भोज्यैर्वस्त्रैराभरणैरपि।।

'चण्डवीरां चण्डमायां ....' से 'चण्डिकां चण्डविक्रमाम्' पर्यन्त मन्त्र का उच्चारण कर चण्डिका का, 'सदाऽऽनन्दकरीं शान्तां ....' से आरम्भ कर 'शाम्भवीं पूजयाम्यहम्' तक पढ़कर शाम्भवी का, 'दुर्गमे दुस्तरे कार्ये ....' से लेकर 'दुर्गां दुर्गार्ति-नाशिनीम्' तक कहकर दुर्गा का और 'सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां ....' से 'सुभद्रां पूजयाम्यहम्' तक कहकर सुभद्रा आदि नव कुमारिकाओं को गन्ध, पुष्प, वस्त्र, आभरण आदि समर्पित करे।

वेद्यां विरचिते रम्ये सर्वतोभद्रमण्डले।
घटं संस्थाप्य विधिना तत्राऽवाह्याऽर्चयेच्छिवाम्।।
तदग्रे कन्यकाश्चाऽपि पूजयेद् ब्राह्मणानपि।
उपचारैस्तु विविधैः पूर्वोक्तावरणादपि।।

सर्वतोभद्रमण्डल में विधि-विधान से घटस्थापन कर दुर्गा का आवाहन एवं पूजन करे। उस मण्डल के आगे विविध उपचारों से ब्राह्मणों एवं कन्याओं का पूजन करे।

होमद्रव्याणि

एवं चतुर्दिनं कृत्वा पंचमे होममाचरेत्।
पायसान्नै-स्त्रिमध्वक्तै-र्द्राक्षारम्भा-फलादिभिः।।
मातुलिंगैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलयुतैस्तिलैः।
जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुर-वस्तुभिः।।
सप्तशत्या दशावृत्त्या प्रतिमन्त्रं द्रुतं चरेत्।
अयुतं च नवार्णेन स्थापितेऽग्नौ विधानतः।।

इस प्रकार चार दिन पर्यन्त पूजन कर पाँचवें दिन से पायस (खीर) त्रिमधु, दाख, केला, मातुलिंग, इक्षुखण्ड (ऊँख के टुकड़े), नारियल, तिल, जातीफल एवं आम का फल आदि मधुर वस्तुओं से शतचण्डी प्रयोग में सप्तशती के दस पाठ का हवन करें, और दस हजार नवार्ण मन्त्र का

हवन करे।

कृत्वा-ऽऽवरण-देवानां होमं तन्नाममन्त्रतः।
कृत्वा पूर्णाहुतिं सम्यग् देवमग्निं विसृज्य च।।
अभिषिंचेकं च यष्टारं विप्रौघः कलशोदकैः।
निष्कं सुवर्णमथवा प्रत्येकं दक्षिणां दिशेत्।।
भोजयेच्च शतं विप्रान् भक्ष्य-भोज्यैः पृथग्विधैः।
तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा गृह्णीयादाशिषस्तथा।।

तथा उन उन नाममंत्रों से आवरण देवताओं का हवन कर पूर्णाहुति करना चाहिए। तत्पश्चात् अग्नि का विसर्जन और ब्राह्मण लोग कलश के जल से यजमान का अभिषेक करे। यजमान भी इन ब्राह्मणों को सुवर्ण अथवा मन-ईप्सित (मनचाही) दक्षिणा देवे और यजमान को चाहिए कि अनेक स्वादिष्ट व्यंजनों द्वारा सामर्थ्य के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये तथा उन्हें दक्षिणा प्रदान कर, उन ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करे।

एवं कृते जगद्वश्यं सर्वे नश्यन्त्युपद्रवाः।
राज्यं धनं यशः पुत्रानिष्टमन्यल्लभेत सः।।

इस प्रकार शतचण्डी प्रयोग करने वाला मनुष्य राज्य, धन, यश, पुत्र आदि समस्त मनचाही वस्तुओं को प्राप्त करता है, तथा उसके समस्त उपद्रव वगैरह नष्ट होते हैं।

3.4 सहस्रचण्डीयाग

सहस्रचण्डीयाग का नाम श्रीदुर्गाजी के सहस्र (हजार) पाठ के कारण ही है। जैसे शतचण्डी में 100 पाठ सामान्यरूप से होते हैं उसी प्रकार इसमें भी एक हजार दुर्गापाठ होते हैं। इसमें ब्राह्मणों की संख्या 100 होती है। पाठ की संख्या के अनुसार दिन भी निश्चित कर सकते हैं। प्रायः 10 दिन में अच्छी तरह पाठ हो सकता है। फिर पाठ का दशांश हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मणभोजन आदि शतचण्डी की तरह ही सम्पन्न कराये जाते हैं। तर्पण करते समय 'दुर्गां तर्पयामि' एवं मार्जन के समय 'दुर्गां मार्जयामि' कहा जाता है। यह शास्त्रीय मान्यता है।

अब आपसे कुछ चर्चा प्रयोजन पर होगी। इस याग का प्रयोजन भी हमें अवश्य जानना चाहिए। अतः अब सहस्रचण्डी याग का प्रयोजन के विषय में चर्चा करते हैं।

सहस्रचण्डी याग का प्रयोजन

इस याग का प्रयोजन एवं विधान रुद्रयामलग्रन्थ में इस प्रकार बताया गया है-

सहस्रचण्डीं विधिवत् श्रुणु विष्णो महामते!
राज्यभ्रंशादि प्रकृत्य इत्यादि विविधे दुःखे, क्षयरोगादिजे भये।
सहस्रचण्डी कार्या तु कुर्याद्वा कारयेत्तथा।
जापकास्तु शतं प्रोक्ता विंशद्हस्तश्च मण्डपः।
भोज्याः सहस्रं विप्रेन्द्राः शतं गावश्च दक्षिणाः
गुरुवे द्विगुणं देयं शय्यादानं तथैव च
सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वं च मनोहरम्।
पंचनिष्कमिता मूर्तिः कर्तव्या परिणामतः

अष्टादशभुजा देवी सर्वायुधविभूषिता
अवारितान्नं दातव्यं सहस्रं प्रत्यष्टं विभो
शतं वा नियताहार पयः पानेन वर्तयेत्।
एवं यश्चण्डिकापाठं सहस्रं तु समाचरेत्
तस्य स्यात् कार्यसिद्धिस्तु नात्र कार्या विचारणा।

इसका भाव भी संक्षेप में आपको बताया जा रहा है। विविध प्रकार के दुःख यदि एक साथ उपस्थित हो क्षयरोगादि से उत्पन्न भय होने पर, राज्य छीन लिए जाने पर, सहस्रचण्डी याग करना, या कराना चाहिए। इसमें जापक (पाठक) 100 ब्राह्मण रहेंगे। बीस हाथ का मण्डप रहेगा। कम से कम 11 हजार ब्राह्मणों का भोजन होना चाहिए। आचार्य को दुगुना दक्षिणा देनी चाहिए। शय्यादान, सप्तधान्य, अन्नदान, पृथिवीदान, अश्वदान आदि किये जाते हैं। पाँच पल की सुवर्ण की मूर्ति होनी चाहिए। अष्टभुज से युक्त श्री दुर्गा जी की पूजा करनी चाहिए। इसके साथ ही ब्राह्मणों को उचित दक्षिणा एवं भोजन आदि से सन्तुष्ट करके जो सहस्रचण्डी याग करता है उसके सभी मनोरथ अवश्य ही पूर्ण हो जाते हैं।

इस प्रकार यहाँ सहस्रचण्डी याग के विषय में भी संक्षेपरूप से कुछ विशिष्ट विधियों का ज्ञान कराया गया।

आपको शतचण्डी याग से सम्बद्ध पाठविधियों को तीन ग्रन्थों के माध्यम से ज्ञान कराया गया। (रुद्रयामल ग्रन्थ, डामरतन्त्रग्रन्थ एवं मन्त्रमहोदधि ग्रन्थ)

विशेषरूप से इन यागों का सविधि विधान पद्धतियों में दिया गया है। जैसे श्रीवायुनन्दन मिश्र जी की शतचण्डीयाग पद्धति एवं सहस्रचण्डीयाग पद्धति। विशेष आवश्यकता पड़ने पर इन पद्धतिग्रन्थों को भी आप देख सकते हैं। अस्तु।

अब आपके लिए कुछ बोध प्रश्न दिये जा रहे हैं जिनका समाधान आपको करना है-

बोधप्रश्न - 1

क. शतचण्डी में पूर्णरूप से कितने दुर्गापाठ होते हैं?
ख. शतचण्डी में हवन कितने पाठ से होता है?
ग. यज्ञमण्डप में कुल कितने स्तम्भ होते हैं?
घ. महायज्ञ किसे कहते हैं?
ङ. शतचण्डी में लगभग कितने ब्राह्मण पाठ के लिए होते हैं?
च. ग्रहों की शान्ति के लिए कितने दुर्गापाठ किये जाते हैं?
च. नवचण्डी पाठ का क्या फल है?

बोधप्रश्न - 2

क. कारागृह से मुक्ति के लिए कितने दुर्गापाठ करना चाहिए?
ख. सहस्रचण्डी याग में कितने दुर्गापाठ होते हैं?

ग. नवार्णमन्त्र में कितने अक्षर होते हैं?
घ. वृद्धिपाठ में हवन किस दिन करना चाहिए?
ङ. उत्तम मण्डप का परिमाण क्या है?
च. ग्रहवेदी किस दिशा में रखी जाती है?
छ. अग्निकोण में कौन सी वेदी की स्थापना होती है?
ज. इस याग में प्रधान वेदी कहाँ रहती है?
झ. यज्ञमण्डप के बाहर कितने कलश होते हैं?
ञ. दिकपाल कितने होते हैं?

3.5 सारांश

इस इकाई में शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी पाठ की विधि बताई गई है। शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी याग में दुर्गापाठ की संख्या क्या होती है? कितने ब्राह्मण रहेंगे? एवं कितने दिन में सम्पन्न होगा। ये सभी बातें प्रामाणिकरूप से आपको ज्ञात कराया गया। इसके साथ ही भिन्न-भिन्न कामनाओं के अनुसार फलप्राप्ति के लिए दुर्गापाठ की संख्या का (निर्धारण) भी आपको बोध कराया गया। शतचण्डी याग के विषय में विविध शास्त्रों में प्रयुक्त विधियों की प्रमाण के साथ आपको जानकारी दी गई। दोनों विषयों से बोधप्रश्न एवं उनके उत्तर भी इसमें लिखे गये हैं।

शाक्ततान्त्रिकग्रन्थों के अनुसार कुछ विशेष नियमों को एवं प्रचलित कर्मकाण्ड के अनुसार सामान्य विधियों में अन्तर दिखाकर उचित एवं सरलविधि का ज्ञान इसमें कराया गया है। विषय से सम्बन्धित कुछ जिज्ञासाओं को स्वयं प्रस्तुत करते हुए उनका उत्तर आपको बताया गया है।
इस प्रकार संक्षेप में इस इकाई का सारांश यहाँ प्रस्तुत किया गया।

3.6 शब्दावली

क. अनावृष्ट्याम्	-	वृष्टि न होने पर
ख. शिवाभ्याशे	-	श्रीशिवजी के मन्दिर में
ग. सत्यवादिनः	-	सत्य बोलने वाले द्विज
घ. नवार्ण	-	नौ अक्षर वाला मन्त्र
ङ. त्वदीयः	-	तुम्हारा
च. मामकीन	-	मेरा
छ. सनातन	-	सदा (नित्य)
ज. प्राक्तन	-	पुराने समय का
झ. गरीयस्	-	बड़ा भारी
ञ. स्थवीयस्	-	बहुत मोटा
ट. दाक्षिणात्य	-	दक्षिण का
ठ. पौर्वात्य	-	पूर्व का

3.7 बोधप्रश्नों के उत्तर (1)

क. शतचण्डी याग में सम्पूर्ण पाठों की संख्या 100 है।

ख. शतचण्डी याग में दशांश पाठ से हवन होता है अर्थात् 100 पाठ होने पर 10 पाठ से हवन होगा।

ग. यज्ञमण्डप में मुख्य रूप से कुल 16 स्तम्भ होते हैं।

घ. जो विश्वकल्याण की कामना से या समाज अथवा राष्ट्र के कल्याण की कामना से सम्पादित किया जाय उसे महायज्ञ कहते हैं। जैसे पंचमहायज्ञ आदि।

ङ. शतचण्डी याग में पाठ करने के लिए कम से कम आचार्य को लेकर 11 ब्राह्मण होने चाहिए।

च. ग्रहों की शान्ति के लिए 5 दुर्गापाठ करना चाहिए।

छ. नवचण्डी याग करने से घर में शान्ति बनी रहती है। यही वर्तमान में अत्यधिक फल है।

बोधप्रश्न के उत्तर (2)

क. कारागृह से मुक्ति के लिए 25 पाठ दुर्गा का करना चाहिए।

ख. सहस्रचण्डी याग में सामान्य रूप से 1000 पाठ अनिवार्य हैं।

ग. नवार्णमन्त्र में 9 अक्षर होते हैं।

घ. वृद्धिपाठ के क्रम में हवन पाँचवें दिन होगा।

ङ. उत्तम मण्डप 18 हाथ का माना गया है।

च. ग्रहवेदी ईशानकोण में होती है।

छ. अग्निकोण में योगिनी वेदी स्थापित की जाती है।

ज. शतचण्डी में प्रधान वेदी मध्य में रहती है।

झ. यज्ञमण्डप के बाहर 18 कलश होते हैं।

ञ. दिकपाल दस होते हैं।

3.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

क. स्मृतिकौस्तुभ

ख. ग्रहशान्ति

ग. विष्णुयागपद्धति

घ. यज्ञमीमांसा

ङ. डामरतन्त्र

च. दुर्गासप्तशतीटीका

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. उत्तम मण्डप की रचना की सांगोपांग विधि का वर्णन करें।

ख. शतचण्डी याग का वर्णन करें।

इकाई – 4 श्री दुर्गासप्तशती हवन विधान

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 हवन विधान
4.3.1 हवनीय द्रव्य (शाकल्य) और उसका परिमाण
4.3.2 नित्य हवन में विहित द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य
4.4 अग्नि के जिह्वा के नाम
4.4.1 विधिहीन अग्नि में हवन करने से हानि
4.4.2 अग्नि में हवनार्थ स्थान का विचार
4.5 सारांश
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 पारिभाषिक शब्दावली
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में आप ''शतचण्डी एवं सहस्रचण्डी पाठ विचार'' से अच्छी तरह अवगत हो गये होंगे। याग के दो स्वरूप शास्त्रों में देखे जाते हैं, पाठ एवं होम। पाठ की पूर्णता बिना होम के संभव नहीं होती। अतः यहाँ भी पाठ के बाद होम का विधान बताया जा रहा है।

प्रस्तुत इस इकाई में श्रीदुर्गासप्तशती के पाठ से हवन कैसे होगा? इसके विषय में आपको ज्ञान कराया जायेगा।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में प्रयुक्त होमविधान के ज्ञान से आप यज्ञ के दोनों पक्षों से परिचित हो जायेंगे। अर्थात् पाठ के बाद उसका अंग होम कैसे? एवं क्यों कराया जाता है? आदि विविध विषयों का ज्ञान आपको हो जायेगा। जो वर्तमान समाज के लिए अत्यन्त उपादेय है।

4.3 हवन विधान

सामान्यतः होमशब्द का प्रयोग श्रौतग्रन्थों में देखा जाता है। यह शब्द याग के साथ प्रयुक्त हुआ है। जैसा कि कात्यायन श्रौतसूत्र में लिखा गया है-

यजति जुहोतीनां को विशेषः - तिष्ठद्धोमावषट्कारप्रदाना याज्यापुरोऽनुवाक्यावन्तो यजतयः। उपविष्टहोमा स्वाहाकारप्रदाना जुहोतयः।

ये दोनों लक्षण याग एवं होम के हैं। प्रसंगतः यहाँ होम शब्द का ही अर्थ किया जा रहा है - जिस याग में बैठकर स्वाहाकार पूर्वक देवता के निमित्त द्रव्य का त्याग मन्त्रपाठपूर्वक अग्नि में किया जाय वही होम है। यह होम, श्रौतयाग एवं स्मार्तयाग अर्थात् वेदों में वर्णित याग एवं स्मृतिग्रन्थों में वर्णित याग दोनों में होता है। इसीलिए (श्रौतयाग) दर्शपूर्णमासेष्टि याग में एक जुहोति स्थान भी होता है जहाँ जाकर अध्वर्यु होम करता है एवं यजति स्थान पर जाकर याग करता है। इस प्रकार यह होम की परिभाषा श्रौतसूत्र के अनुसार दी गई।

न केवल श्रौतयज्ञों में ही अपितु स्मार्तयज्ञों में या संस्कारों के अनुष्ठान का गृह्यसूत्रों में जहाँ से प्रारम्भ होता है वहाँ भी सर्वप्रथम होम का ही विधान किया गया है। जैसे - संस्कार विधायक प्रसिद्ध ग्रन्थ पारस्करगृह्यसूत्र में सबसे पहले होम का ही विधान किया गया है जैसे अथातो गृह्यस्थालीपाकानां कर्म। यहाँ से प्रारम्भ होकर एष विधिर्यत्र क्वचिद् होमः तक एक कण्डिका समाप्त होती है। इसमें होम के अंगभूत कुशकण्डिका का विधान किया गया है। यहाँ जिज्ञासा यह होती है कि पारस्करगृह्यसूत्र, संस्कार प्रतिपादक ग्रन्थ होने के कारण सर्वप्रथम होम का विधान यहाँ क्यों किया गया तो समाधान यही है कि प्रायः सभी संस्कारों के अन्त में होम होता ही है। अतः प्रत्येक संस्कार के अन्त में देने की अपेक्षा पहले ही इसे यहाँ दे दिया गया है। जिससे पाठकों को सुविधा होगी। यही विधि सभी होमों में होगी। इस प्रकार यहाँ होम की अनिवार्यता अत्यन्त ही स्पष्ट

है। लोक में भी बड़े से बड़े यागों में यदि (होम) हवन न हो तो लोग उसे याग की संज्ञा नहीं देते हैं। अतः याग एवं होम दोनों परस्पर में सापेक्ष है। श्रौत याग हो या स्मार्त याग या अनुष्ठान हो, सर्वत्र हवन का विधान होता ही है। क्योंकि यज्ञ की सम्पूर्णता हवन से ही होती है, जिसे पूर्णाहुति कहते हैं। अतः हवन या होम सभी अनुष्ठानों में होता है। इसके बिना यज्ञ की सम्पूर्णता ही नहीं होती है।

दुर्गासप्तशती होम विधान में विशेषरूप से जो कर्म किये जाते हैं उन्हीं का निरूपण यहाँ किया जा रहा है। क्योंकि होम के पहले पंचभूसंस्कार, कुशकण्डिका, आद्याज्यहोम, प्रायश्चित्तहोम आदि विधियों का ज्ञान आपको हो चुका है। अतः यहाँ केवल मुख्य कार्यों का ही निर्देश आपको दिया जा रहा है। इसके साथ ही होम के विषय में अन्य विधियों का भी ज्ञान कराया जायेगा, जैसे होमीयवस्तु क्या है? होम में कितनी मात्रा तिल आदि की होनी चाहिए। होम में ब्राह्मणों की संख्या कितनी हो? यह सम्पन्न कैसे हो? आदि बहुत सारी बातें आपको यहाँ बताई जायेगी।

सर्वप्रथम दुर्गासप्तशती होम में 10 दुर्गापाठ से हवन होगा अर्थात् प्रत्येक अध्याय के प्रत्येक श्लोकों से तिल, आज्य, पायस आदि द्रव्यों से देवी के निमित्त होम करना चाहिए। क्योंकि लिखा है -

प्रतिश्लोकं च जुहुयात् पायसं तिलसर्पिषा।
जुहुयात् स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।।
भूयोनामपदैर्देवीं पूजयेत सुसमाहितः।

अर्थात् सप्तशती का प्रत्येक श्लोकमन्त्र रूप है। उससे तिल और घृत से मिली हुई खीर (पायस) की आहुति दें। अथवा इसमें जो स्तोत्र आये हैं, उन्हीं के मन्त्रों से चण्डिका के लिए पवित्र हविष्य का होम करें। तथा दुर्गा जी के सहस्रनामावली से भी होम करने का विधान यहाँ प्राप्त होता है। यह एक सामान्यविधि है। पुस्तक के सहारे शुद्धोच्चारणपूर्वक सभी के द्वारा यह कर्म किया जा सकता है। परन्तु कुछ आवश्यक जानने योग्य शास्त्रीय बातें भी हैं - जैसे शाकल्य का परिमाण (मात्रा) क्या हो? हवन कैसे करे? आज्य किसे कहते हैं? तिल का महत्त्व क्या है? अग्नि का ध्यान? चरु किसे कहते हैं? अग्नि की सात जिह्वा कौन-कौन सी है? अग्नि को प्रज्वलित कैसे करें? आदि बहुत आवश्यक जिज्ञासाओं का शास्त्रीय समाधान आपके सामने रखा जा रहा है। जो आज के समय में जानना अत्यन्त अनिवार्य है।

4.3.1 हवनीय द्रव्य (शाकल्य) और उसका परिमाण

'व्रीहीन् यवान्वा हविषि' 'होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिना' इन श्रुति-स्मृति- प्रमाणों से तिल, यव, चावल और घृत की ही हवि संज्ञा सिद्ध होती है। हवनादि में विशेषतया उपर्युक्त हविर्द्रव्य का ही अधिक उपयोग होता है।

हवनार्थ हवनीय द्रव्य की आहुति देने के विषय में शास्त्रज्ञों ने नियमित व्यवस्था कर दी है। अतः याज्ञिकों को उचित है कि द्रव्य के विषय में जो परिमाण बतलाया गया है तदनुकूल द्रव्य-योजना कर हविर्द्रव्य का व्यवहार करना चाहिये। शास्त्रानुमोदित मार्ग के अनुकूल कार्य करने से ही उचित फल प्राप्त होता है, अन्यथा अनेक प्रकार की हानि भोगनी पड़ती है। हविर्द्रव्य के परिमाण का

विववरण शास्त्रों में इस प्रकार मिलता है-

तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।

यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्॥

तिल का आधा चावल और चावल का आधा जौ देना चाहिये जौ से आधा शर्करा कही गई है और सबसे आधा घृत कहा गया है।

तिलार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।

तण्डुलैस्त्रिगुणं चाज्यं यथेष्टं शर्करा मता॥

तिल के आधे चावल कहे गये हैं, चावलों के आधे जौ और चावलों से तिगुना घृत कहा गया है। शर्करा जितनी इच्छा हो उतनी कही गई है।

तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा।

अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवैः समाः॥

यव की अपेक्षा तिल को द्विगुणित रखना चाहिए और अन्य सुगन्धित गुग्गुल इत्यादि द्रव्यों को यव के बराबर ही रखना चाहिए।

तिलार्धं तु यवाः प्रोक्ता यवार्धं तण्डुलाः स्मृताः।

तण्डुलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यभागचतुष्टयम्॥

तिल का आधा यव, यव का आधा चावल, चावल की आधी चीनी और चतुर्गुण घृत से शाकल्य का निर्माण उत्तम कहा गया है। यही पक्ष उत्तम एवं ग्राह्य है।

तिलाधिक्ये भवेल्लक्ष्मीर्यवाधिक्ये दरिद्रता।

घृताधिक्ये भवेन्मुक्तिः सर्वसिद्धिस्तु शर्करा॥

तिल की अधिकता से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और यव की अधिकता से दरिद्रता की प्राप्ति होती है। घृत के आधिक्य से मुक्ति और शर्करा के आधिक्य से सर्वसिद्धि होती है।

आयुःक्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्।

सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि॥

तिल से यव के अधिक होने पर आयु का नाश होता है, तिल के बराबर यव के रहने पर धन का नाश होता है, अतः सर्वदा तिल की अधिकता ही उचित है। इससे सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है।

तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किंचिद्यवसमन्विताः।

घृत से सने काले तिल, कुछ यवों से युक्त हवनीय कहे गये हैं।

अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपि वा।

शम्भवायेति जुहुयात्सर्वास्तानाज्यसिक्तकान्॥

अक्षत (चावल) अथवा तिल या जौ अथवा समिधों को घी में डुबोकर कर 'नमः

शम्भवाय' इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त मत-मतान्तरों की आलोचना से 'बहुवचनं .... प्रमाणम्' (अनेक वचन जिस विषय को कहें वही प्रमाणभूत है। इस न्याय से यही निष्कर्ष निकलता है कि तिल की अधिकता से ही यजमान को सर्वविध फल की प्राप्ति होती हैं।

कहीं-कहीं ग्रन्थ-विशेष में 'यवार्द्धं तण्डुलाः प्रोक्ताः तण्डुलार्द्धं तथा तिलाः' यह वचन भी मिलता है। यद्यपि यह वचन यवाधिकता का ही विधान सिद्ध करता है, किन्तु सहायक प्रामाणिक वचनान्तरों की न्यूनता के कारण यवाधिक्य सर्वथा उपेक्षणीय और त्याज्य है।

हवनीय द्रव्य का एकादश विभाग आवश्यक है

पंचभागास्तिलाः प्रोक्तास्त्रिभागास्तण्डुलास्तथा।
द्वौ भागौ च यवस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम्॥
रुद्रभागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा।

पाँच हिस्सा तिल, तीन हिस्सा चावल, दो हिस्सा जौ और एक हिस्से में गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित द्रव्य-इस प्रकार एकादश भागों के संयुक्त हवनसामग्री से जो हवन किया जाता है, वह सर्वप्रकार की उत्तम सिद्धि हो देता है।

4.3.2 नित्य हवन में विहित द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य

नित्य हवन में विहित द्रव्य के अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य से भी कार्य हो सकता है। महर्षि कात्यायन कहते हैं-

नित्ये सामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात्।
घृतार्थे गोधृतं ग्राह्यं तदभावे तु माहिषम्।
आजं वा तदभावे तु साक्षात्तैलमपीष्यते॥
तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलं जर्तिलसम्भवम्।
तदभावोऽतसीस्नेहः कौसुम्भः सर्षपोद्भवः॥
वृक्षस्नेहोऽथवा ग्राह्यः पूर्वालाभे परः परः।
तदभावे यवव्रीहिश्यामाकान्यतमोद्भवः॥

हवन के लिये सबसे अच्छा गोघृत होता है, उसके अभाव में बकरी का घृत, उसके अभाव में शुद्ध तेल से हवन करना चाहिये। तेल के अभाव में जर्तिल (जंगल में होने वाला तिल) का तेल, उसके अभाव में तीसी का तेल, उसके अभाव में कुसुम्भ, उसके अभाव में पीली सरसों, उसके अभाव में सरसों का तेल, उसके अभाव में गोंद ग्राह्य है। इनमें जो-जो वस्तु पहले वाली न मिले, उसके स्थान में उसके आगे की लिखी हुई वस्तु से काम चलावे। पूर्वोक्त वस्तुओं के अभाव में यव, चावल, साँवाँ - इन तीनों में से किसी एक से काम करे।

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद् घृतम्।
तदलाभे तु माहिष्यं आजमाविकमेव वा॥

तदभावे तु तैलं स्यात्तदभावे तु जार्तिलम् ।
तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम् ।।

समस्त प्रकार के घृत के हवन में गौ का घृत ही उचित है। गाय घृत के अभाव में भैंस का अथवा बकरी एवं भेड़ का घृत, उसके अभाव में तेल, उसके अभाव में जंगल में होने वाले तिल का तेल, उसके अभाव में कुसुम्भ और उसके अभाव में सरसों का ग्रहण उचित है।

गव्याज्याभावतश्छागोमहिष्यादेर्घृतं क्रमात् ।
तदभावे गवादीनां क्रमात् क्षीरं विधीयते ।।
तदभावे दधि ग्राह्यमलाभे तैलमपीष्यते ।

यदि गौ के घृत का अभाव हो तो क्रम से बकरी या भैंस आदि घृत विहित है। यदि उसका भी अभाव हो तो उसके बदले क्रम से गौ आदि का दुग्ध कहा गया है। यदि दही भी न मिले तो तेल भी लिया जा सकता है।

दध्यलाभे पयो ग्राह्यं मध्वलाभे तथा गुडः ।
घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप ।।

दधि के अभाव में दुग्ध से, शहद के अभाव में गुड़ से, घृत के अभाव में दुग्ध अथवा दधि से काम चलावे।

आज्य शब्द का अर्थ

घृतं वा यदि वा तैलं पयो दधि च यावकम्।
संस्कारयोगादेतेषु आज्यशब्दोऽभिधीयते।।

घृत हो अथवा तेल हो, दूध हो या दही हो अथवा यावक (आधे भुने या पके हुए जौ आदि) हो संस्कार-सम्बन्ध होने से इन सबको आज्य शब्द से कहा जाता है।

घृत के उत्तम, मध्यम और अधम का निर्देश

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम् ।
अधमं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते ।।

गोघृत सर्वोत्तम, भैंस का घृत मध्यम और बकरी का घृत अधम कहा गया है, अतः इनमें गोघृत ही प्रशस्त है।

घृतादि के अभाव में तिल ग्राह्य है

यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।
तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या वाचनं तथा ।।

जहाँ-जहाँ घृत के अभाव के कारण द्विज अपनी आत्मा में संकीर्णता (संकोच) का अनुभव करे, वहाँ-वहाँ वह तिल से होम करे और गायत्री का जप करे।

तिल का महत्त्व

तिलान् ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति ।

तिलस्नायी तिलांजुह्वन् सर्वं तरति दुष्कृतम् ।।

जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल तिल का दान करता है, तिल का स्पर्श करता है, तिल को खाता है, तिल से स्नान करता है और तिल से हवन करता है, वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ।
शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ।।

तिल अत्यन्त पवित्र और पुण्यप्रद है तथा वह समस्त प्रकार के पापों को दूर करने वाला है। वह तिल सफेद और काला दो प्रकार का भगवान् विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुआ है।

हवन में घृताक्त तिल का उपयोग उचित है

'घृताक्तं जुहुयाद्धविः'

घृताक्त हवि से हवन करना चाहिये।

हवनीय द्रव्य

पायसान्नैस्त्रिमध्वाक्तैद्राक्षारम्भाफलादिभिः ।
मातुलुंगैरिक्षुखण्डैर्नारिकेलयुतैस्तिलैः ।।
जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः ।

त्रिमधुर अथवा त्रिमधु (मिश्रित मिश्री, शहद और घृत) से, मिश्रित खीर से, दाख, केले के फल आदि से, बिजौरा नीबू (चकोतरा) से, ईख के टुकड़े से, नारियल की गिरी से युक्त तिलों से, जातीफल से, आम के फल से, अन्यान्य और भी मधुर मीठी वस्तुओं से हवन करना चाहिये।

हवन में विहित धान्य

कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् ।
व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ।।

सत्तू आदि सिद्ध अन्न, तण्डुल (चावल) आदि सिद्ध और असिद्ध दोनों प्रकार के और व्रीहि आदि केवल असिद्ध यों विद्वानों ने होम में ये तीन प्रकार के हविर्द्रव्य कहे हैं।

कामनाभेद से हवनीय पदार्थ का विचार

दूर्वा भव्याश्च समिधो गोघृतेन समन्विताः ।
होतव्याः शान्तिके देवि शान्तिर्येन भवेत् स्फुटम् ।।
समिधो राजवृक्षोत्था होतव्याः स्तम्भकर्मणि ।
मेषीघृतेन संयुक्ताः स्तम्भसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ।।
खदिरा मारणे प्रोक्ताः कटुतैलेन संयुताः ।
होतव्याः साधकेन्द्रेण मारणं येन सिद्ध्यति ।।
उच्चाटने चूतजाता कटुतैलेन संयुताः ।

उच्चाटयेन्महीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ।।
वश्ये चैव सदा होमः कुसुमैर्दाडिमोद्भवैः ।
अजाघृतेन देवेशि! वशयेत् सचराचरम् ।।
विद्वेषे चैव होतव्या उन्मत्तसमिधो मताः ।
अतसीतैलसंयुक्ता विद्वेषणकरं परम् ।।

हे देवि! शान्ति कर्म में गोघृत से तर दूर्वोद्भव (दूब की) समिधाओं का हवन करना चाहिये जिससे निश्चय (निस्सन्देह) शान्ति होती है।

यदि किसी का स्तम्भन करना हो तो राजवृक्ष (धन वहेड़ा) की समिधाओं का भेड़ के घी से तरकर हवन करना चाहिये। निश्चय ही स्तम्भन कर्म में सिद्धि होती है।

मारण कर्म में खैर की समिधाएँ कही गई हैं। कडुवे तेल में भिगो कर उनका श्रेष्ठ साधक पुरुष को हवन करना चाहिये, जिसमें मारण की सिद्धि होती है।

उच्चाटन कर्म में कडुवे तेल से संयुक्त आम की समिधाएँ कही गयी है, उनसे हवन करता हुआ साधक पुरुष और तो और पर्वत, वन, महावन सहित सारी पृथ्वी का उच्चाटन कर देता है।

हे देवेशि! वश्य कर्म में दाडिम के फूलों से बकरी के घृत के साथ सदा होम करना चाहिये, जिससे साधक चराचर जगत् को वश में कर लेता है।

विद्वेष कर्म में धत्तूर वृक्ष की समिधाओं का हवन कहा गया है, उन्हें अलसी (तीसी) के तेल में भिगाकर हवन करने से परम विद्वेषण होता है।

अन्यत्र भी लिखा है-

पुत्रार्थे शालिबीजेन धनार्थे बिल्पत्रकैः।
आयुष्कामस्तु दूर्वाभिः पुष्टिकामस्तु वेतसैः।।
कन्याकामस्तु लाजाभिः पशुकामो घृतेन तु।
विद्याकामस्तु पालाशैर्दशांशेन तु होमयेत्।।
धान्यकामो यवैश्चैव गुग्गुलेन रिपुक्षये।
तिलैरारोग्यकामस्तु व्रीहिभिः सुखमश्नुते।।

पुत्र प्राप्ति के लिये साठी के बीजों से, धन प्राप्ति के लिये बिल्व के पत्रों से, आयु की कामनावाला पुरुष दूर्वा से, पुष्टि चाहने वाला पुरुष वेंत की समिधाओं से, कन्या चाहने वाला पुरुष धान के लावों से, पशु चाहने वाला पुरुष घृत से और विद्या चाहने वाला पुरुष पलाश की समिधाओं से दशांश होम करे। धान्य (अन्न) चाहने वाला यवों से, शत्रुक्षय के निमित्त गुग्गुल से तथा आरोग्य चाहने वाला तिलों से हवन करे। व्रीहियों (धानों) से हवन करने वाला सुख प्राप्त करता है।

हवनीय पदार्थ के अभाव में विचार

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ।।

हवन के लिये जो सामग्री कही गयी है, यदि उसका अभाव हो, तो अनुकूल वस्तु लेना चाहिये। जैसे यव की जगह गेहूँ और धान की जगह साठी लेना चाहिये।

कृमि-कीटादि से युक्त हवनीय पदार्थ का त्याग उचित है

कृमिकीटपतंगादि द्रव्येषु पतितं यदि ।

तद् द्रव्यं वर्जयेन्नित्यं देवयागेषु सर्वतः ।।

तद्दैवत्यं शतं हुत्वा चान्यद् द्रव्यं समाहरेत् ।

यज्ञादि में प्रयुक्त होने वाले हवनीय पदार्थों में यदि कीड़े-मकोड़े, पतंग आदि गिर जाये ंतो उस हवनीय सामग्री का त्याग कर देना चाहिये और उस यज्ञ के प्रधान देवता के निमित्त विशेष रूप से सौ बार घृत की आहुति देकर हवनार्थ दूसरे पवित्र द्रव्य को लाना चाहिए।

हवनीय पदार्थ की गड़बड़ी से यजमान की हानि

यत्कीटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् ।

यज्ञाग्नि में कूड़ा, कंकर (पत्थर आदि) कीड़ी आदि जन्तुओं से युक्त हवनीय द्रव्य के द्वारा हवन करने से यजमान पुत्रादि पशु और धनादि से रहित हो जाता है।

चरु

चरति होमादिकमस्मादसौ चरुः ओदनविशेषः।

यह (होता) जिससे होम करता है वह चरु कहलाता है अर्थात् ओदन-विशेष (एक प्रकार का भात)।

चरुर्वै देवानामन्नमोदनो हि चरुः।

चरु देवताओं का अन्न है। ओदन (भात) को चरु कहते हैं।

अनिर्गतोष्मा सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनश्चरुः।

न चातिशिथिलः पाच्यो न वीतरसो भवेत्।।

जिसकी उष्णता (गर्मी) निकल न गई हो अर्थात् गर्मागर्म जो खूब पका हो जला न हो और कड़ा न हो वह चरु है। उसे इस तरह पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न उसका गीलापन बिलकुल चला जाय।

अन्वर्थः श्रपितः स्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनः शुभः।

न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा।।

पकाया हुआ हो, खूब उबला हुआ अर्थात् गला हुआ हो, जला हुआ न हो, कड़ा न हो, नाम के अनुरूप चरु (ओदन) शुभ माना गया है। उसे (चरु को) इस प्रकार पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न बिना रस का (सूखा) हो।

हविष्य पदार्थ

चरुभैक्षसक्तुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि।

चरु (भात), भिक्षा का अन्न, भुने हुए जौ का सत्तू कण, यावक (आधे भुने हुए जौ), गोदुग्ध, दधि, घृत, मूल, फल और जल ये खाने के योग्य हविष्यान्न है। इनमें आगे-आगे की वस्तु श्रेष्ठ है।

हविष्यान्नं तिला नीवारा व्रीहयो यवाः।
इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु॥
हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः।
व्रीहीणामप्यलाभे तु दध्ना वा पयसाऽपि वा॥
यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः।
यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः॥
अभावे व्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा॥

तिल, उरद, तिन्नी, भदौह, धान, जौ, ईक्ष, वासमती, मूँग, दूध, दही, घी और शहद ये हविष्यान्न हैं। हविष्य अन्नों में जौ मुख्य है, उसके बाद धानों का स्थान कहा गया है। यदि धान भी न मिल सके तो दूध से अथवा दही से काम लेना चाहिये। जहाँ जो वस्तु कही कई है वह यदि न मिल सके तो उसके स्थान में उसके अनुकल्प का (उससे मिलते जुलते गुणवाली वस्तु का) ग्रहण करना उचित है। जैसे जौ के स्थान में गेहूँ और धानों के स्थान में वासमती धान है। इनके अभाव में धान, जो, दधि अथवा दुग्ध का ग्रहण उचित है।

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुं व्रीहयः स्मृताः।
माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभे विवर्जयेत्॥

हविष्य अन्नों में जौ मुख्य है, उसके बाद धानों को कहा है। यदि हविष्य कोई भी प्राप्त न हो, तो उड़द, कोदों और सरसों का कभी भी हविष्य रूप में उपयोग न करे।

ज्ञात्वा स्वरूपमाग्नेयं योऽग्नेराराधनं चरेत्।
ऐहिकाऽऽमुष्मिकैः कामैः सारथिस्तस्य पावकः॥
आहूयैव तु होतव्यं यो यत्र विहितो भवेत्।

जो मनुष्य अग्नि के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान न कर हवन करता है उसका किया हुआ हवन सर्वथा निष्फल होता है, न उसका उत्तम संस्कार होता है और न वह कर्मफल को ही प्राप्त करता है। जो अग्नि के स्वरूप को जानकर अग्नि की आराधना करता है। उसके ऐहिक तथा पारलौकिक कार्यों में अग्नि सारथि का कार्य करता है। अतः जिस अग्नि का जहाँ विधान हो उस अग्नि का उस कार्य में आह्वान करके ही हवनादि करना चाहिये।

अग्नि का ध्यान

सप्तहस्तश्चु:शृंगः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः।
त्रिपात्प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः॥
मेषारूढो जटाबद्धो गौरवर्णो महौजसः।
धूम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः सर्वकामदः॥

शिखाभिर्दीप्यमानाभिरूर्ध्वगाभिस्तु संयुतः ।
स्वाहां तु दक्षिणो पार्श्वे देवी वामे स्वधां तथा ।।
विभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवम्।
तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन् ।।
आत्माभिमुखमासीन एवंरूपो हुताशनः ।

अग्नि के सात हाथ, चार सींग, सात जिह्वाएँ, दो सिर और तीन पैर हैं। वे प्रसन्न मुख और मन्दहास्ययुक्त सुखपूर्वक आसन पर विराजमान रहते हैं। वे मेष (भेड़ा) पर आरूढ़ जटाबद्ध, गौरवर्ण, महातेजस्वी, धूम्रध्वज, लाल नेत्रवाले, सात ज्वालावाले, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले, देद्दीप्यमान, ऊर्ध्वगामी, ज्वालाओं से युक्त है। उनके दक्षिण भाग में स्वाहा और वाम भाग में स्वधादेवी विराजमान हैं और वे अपने दाहिने हाथों में शक्ति, अन्न, स्रुक्, स्रुव, तोमर, पंखा और बाएँ हाथ में घृतपात्र धारण किये हुए हैं। अपने सम्मुख उपस्थित ऐसे रूपवाले अग्नि का ध्यान करना चाहिये ।

अग्नि का दूसरा ध्यान इस प्रकार लिखा है-

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै-
र्दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जपाभम्।
हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं
ध्यायेद् वह्निं वह्निमौलिं जटाभिः।।

जो अपनी ऊँची भुजाओं में इष्टमुद्रा, शक्ति (आयुध-विशेष), स्वस्तिक, अभय मुद्रा को धारण किये हुए, जपाकुसुम की तरह कान्तिवाले, सुवर्ण के आभूषणों को धारण करने वाले, कमल पर बैठे हुए, तीन नेत्रवाले और जिनका मस्तक अग्नि की ज्वालाओं से धधक रहा है, ऐसे अग्निदेव का ध्यान करे।

अग्नि का तीसरा ध्यान यों लिखा है-

अग्नि के दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिंगल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम भाग में तीन हाथ और दक्षिण भाग में चार हाथ हैं। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति-ये सब उनके दाहिने हाथों में हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र और दो चँवर धारण किये हुए हैं। भेड़ (छाग) पर सवार हैं। उनके चार सींग हैं। बाल सूर्य के सदृश उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलों से सुशोभित है।

अग्नि के मुख आदि का विचार

सधूमोऽग्निः शिरो ज्ञेयो निधूर्मश्चक्षुरेव च ।
ज्वलत्कृशो भवेत्कर्णः काष्ठलग्नश्च नासिका ।।
अग्निर्ज्वालायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः।
तन्मुखं तस्य विज्ञेयं चतुरंगुलमानतः ।।

धूमसहित अग्नि को अग्नि का सिर जानना चाहिये, धूमरहित अग्नि अग्नि का नेत्र है, जलता हुआ मन्द अग्नि अग्नि का कान है, काठ से सटा हुआ अग्नि की नासिका है, जहाँ शुद्ध स्फटिक के तुल्य अग्नि ज्वालायुक्त है (दहकता है), वहाँ नाप से चार अंगुल का वह अग्नि मुख जानना चाहिये।

4.4 अग्नि की जिह्वा के नाम

काली कराली च मनोजवा च

सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।

स्फुलिंगिनी विश्वरूची च देवी

लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः।।

काली (काले रंगवाली), कराली (अत्यन्त उग्र), मनोजवा (मन की तरह अत्यन्त चंचल), सुलोहिता (सुन्दर लाल रंगवाली), सुधूम्रवर्णा (सुन्दर धूएँ के सदृश रंगवाली), स्फुलिंगिनी (चिनगारियों वाली) और विश्वरुची देवी (सब ओर से प्रकाशित) इस प्रकार ये सात प्रकार की लपलपाती हुई अग्नि की जिह्वाएँ हैं।

कराली धूमिनी श्वेता लोहिता नीललोहिता।

सुवर्णा पद्मरागा च सप्त जिह्वा विभावसोः।।

कराली, धूमिनी, श्वेता, लोहिता, नीललोहिता, सुवर्णा और पद्रागा - ये अग्नि की सात जिह्वाएँ कही गई है।

हिरण्या कनका रक्ता कृष्ण तदनु सुप्रभा।

बहुरूपाऽतिरिक्ता च वह्निजिह्वा च सप्त च।।

हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता - ये अग्नि की सात जिह्वाएँ कही गई है।

कर्म-भेद से अग्नि की जिह्वाओं के नाम

विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु।
उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु।।
प्राचीना सर्वकार्येषु ह्याग्नेयी सर्वकर्मसु।
ऐशानी चोग्रकार्येषु ह्येतद् होमस्य लक्षणम्।।

विवाह में वारुणी, यज्ञ कर्म में मध्यमा, उपनयन में उत्तरा, पितृकर्म में दक्षिणा, समस्त कार्य में प्राचीना, समस्त कर्म में आग्नेयी और उग्र कर्म में ऐशानी नाम की जिह्वा कही गई है। यही हवन का लक्षण है।

अग्नि को प्रज्वलित करने का विचार

न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः।

मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेवव्यजायत।।

पटकेन भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु ।।

यज्ञाग्नि को न तो हाथ से दहकावे, न सूप से और न पवित्र चर्म आदि से (आदि पद से वस्त्र का ग्रहण है)। मुख से ही यज्ञाग्नि धौंके, क्योंकि वह मुख से उत्पन्न हुआ है - 'मुखादग्निरजायत'।

वस्त्र (चर्म आदि) से अग्नि धौंकने पर व्याधि (रोग) होती है, सूप से धौंकने पर धन-नाश होता है, हाथ से धौंकने पर मरण होता है, किन्तु मुख से धौंकने पर कर्मसिद्धि होती है।

होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ।
न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ।।
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।
नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तम् ।।

हाथ, सूप, स्फ्य और लकड़ियों से हवन करना हो और हवन किया गया हो - ऐसी यज्ञाग्नि में अग्निधमन न करे (अग्नि को धौंके) यदि धौंके तो पंखे आदि से। कुछ लोग मुख से अग्नि धौंकते हैं, क्योंकि यह मुख से ही उत्पन्न हुआ है। 'मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई' ऐसी श्रुति है। 'नाग्निं मुखेनोपधमेन् नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम्' यह स्मृतिवचन भी मुख से अग्नि को धौंकने का निषेध करता है, उसकी लौकिक अग्नि में योजना करते हैं अर्थात् लौकिक अग्नि को मुख से नहीं धौंकना चाहिये, किन्तु पंखे आदि से धौंकना चाहिये। यज्ञीय अग्नि को तो मुख से धौंकना चाहिये।

न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद् व्यजनादिना ।
मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणुजातया ।।

यज्ञाग्नि को पंखे आदि से कभी न धौंके, बाँस की बनी हुई धौंकनी द्वारा मुख से ही यज्ञाग्नि को दहकावे।

न कुर्यादग्निधमनं पाणिशूर्पादिभिः क्वचित् ।
मुखेनैव धमेदग्निं यतो वेदा विनिःसृताः ।।

यज्ञाग्नि को हाथ से अथवा सूप आदि से कदापि प्रज्वलित न करे, किन्तु मुख से ही प्रज्वलित करे, क्योंकि मुख से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है।

जुहूषंश्च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः ।
न कुर्यादग्निधमनं कुर्याच्च व्यजनादिना ।।
मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत ।।

अग्नि में हवन करने की इच्छा हो अथवा हवन हो चुका हो, दोनों ही अवस्थाओं में हाथ, सूप, स्फ्य (यज्ञपात्र) तथा काष्ठ आदि से अग्नि को नहीं धौंकना चाहिये, पंखे आदि से भी अग्नि को नहीं धौंकना चाहिये। मुख से ही अग्नि को धौंकते हैं, क्योंकि यह (अग्नि) मुख से उत्पन्न हुआ है।

न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।

मुखेनाग्निं समिन्धीत मुखादग्निरजायत।।

मयूर आदि के पंख से निर्मित पंखे से, सूप से और हाथ से अग्नि को प्रज्वलित नहीं करना चाहिये। मुख से ही अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये, क्योंकि भगवान् के मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ है।

न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत।।

विभिन्न वस्तुओं से अग्नि के जलाने का विभिन्न फल

वस्त्रवाते भवेद् व्याधिः शूर्पेण च धनक्षयः।
पाणिना जायते मृत्युः कर्मसिद्धिर्मुखेन तु।।

वस्त्र द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने से रोग होता है, सूप द्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने से धनक्षय होता है, हस्तद्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने से मृत्यु होती है और मुखद्वारा अग्नि को प्रज्वलित करने से समस्त प्रकार के कर्मों की सिद्धि होती है।

जुहूतश्चाथ पर्णेन पाणिशूर्पपटादिना।
न कुर्यादग्निधमनं तथा च व्यजनादिना।।
पर्णेनैव भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिना मृत्युमाप्नोति पटेन विफलं भवेत्।।
व्यजनेनातिदुःखाय आयुः पुण्यं मुखाद्धमात्।
मुखेन धमयेदग्निं मुखादग्निरजायत।।
अग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेच्च तत्।
वेणोरग्निप्रसूतित्वाद्वेणुरग्नेश्च पातनः।
तस्माद्वेणुधमन्यैव धमेदग्निं विचक्षणः।।

अब आपको होम के विषय में बहुत सारे ग्रन्थों का प्रमाण देने के बाद आहुति शब्द की व्याख्या बताते हैं।

आहुति शब्द का अर्थ

लोक में 'आहुति' शब्द ही प्रचलित है। आङ् पूर्वक 'हु दानादानयोः' इस धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर 'आहुति' शब्द बनता है। 'आहुति' शब्द में तो आङ्पूर्वक ह्वेञ्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय होता है।

देवताओं के उद्देश्य से वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में एक बार हविर्द्रव्य का जितना अंश 'स्वाहा' कहकर समर्पण किया जाय उसे 'आहुति' कहते हैं।

देवोद्देशेन वह्नौ मन्त्रेण हविः प्रक्षेप आहुतिः'

देवता के उद्देश्य से मन्त्र द्वारा अग्नि में जो हविर्द्रव्य डाला जाता है, उसे आहुति कहते हैं।

ह्वयति देवाननया सा आहूतिः। जुहोति प्रक्षिपति हविरनया इति वा। आहूतयो वै नामैता यदाहुतयः, एताभिर्देवान् यजमानो ह्वयति तदाहूतीनामाहूतित्वम् ।

जिससे देवताओं को बुलाया जाय उसे 'आहूति' कहते हैं। अथवा जिससे हविर्द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप किया जाय उसे 'आहुति' कहते हैं। आहुति को आहुतित्व इसलिये है कि इनके द्वारा यजमान देवताओं को बुलाता है।

होम शब्द का अर्थ

देवतोद्देश्यपूर्वक मुख्यरूप से हविर्द्रव्य के प्रक्षेपात्मक त्याग को 'होम' कहते हैं। होम का लक्षण इस प्रकार लिखा है-

उपविष्टहोमाः स्वाहाकारप्रदानाः जुहोतयः।

जिस कर्म-विशेष में बैठकर स्वाहाकारपूर्वक हविर्द्रव्य का त्याग किया जाय, उसे 'होम' कहते हैं।

हवन के मन्त्र का निर्णय

यस्य देवस्य यो मोहस्तस्य मन्त्रेण होमयेत्

जो होम जिस देवता के उद्देश्य से हो, उसका उसी के मन्त्र से हवन करना चाहिये।

हवन करने की विधि

उत्तानेन तु हस्तेन अंगुष्ठाग्रेण पीडितम्।
संहतांगुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः।।

उत्तान (सीधे) हाथ से अंगूठे के अग्रभाग से हविर्द्रव्य को दबाकर हाथ की अंगुलियों को सटाकर मौन होकर हवन करना चाहिये।

पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका
कांसादिना चेत् स्रुवमात्रपूरिका।
दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः
स्वंगारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके।।

यदि पाण्याहुति हो अर्थात् हाथ से आहुति दी जाय तो हाथ के अंगुलियों के बारहों पर्व (पंउरियाँ) पूरे होने चाहिये। काँसे के चम्मच आदि से दी जाय, तो केवल स्रुव के बराबर होनी चाहिये। हवि का सुन्दर दहकते हुए अंगारवाले तथा खूब अधिक ज्वाला वाले अग्नि में दैवतीर्थ (अंगुलियों के अग्रभाग) से हवन किया जाता है।

आहुतिस्तु घृतादीनां स्रुवेणाधोमुखेन च ।
हुनेत् तिलाद्याहुतीश्च दैवेनोत्तानपाणिना ।।

अग्नि में घृत की आहुति देने के लिए स्रुवा का मुख नीचे करना चाहिये और तिल आदि की आहुति देने के लिए अपने हाथ को उत्तान (सीधा) करके देवतीर्थ से आहुति डालना चाहिये।

आहुति के प्रक्षेप का समय

मन्त्रेणोंकारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्॥

ऊँकार से पवित्र तथा स्वाहान्त मन्त्र से स्वाहा के अवसान में मन्त्र एवं देवता का ध्यान करता हुआ विद्वान् आहुति दे।

मन्त्रेणोंकारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः।
स्वाहावसाने जुहुयाद् ध्यायन्वै मन्त्रदेवताम्॥

ऊँकारपूर्वक (ऊँकार है पूर्व में जिसके) स्वाहान्त (स्वाहा है अन्त में जिसके ऐसे) मन्त्र से विद्वान् पुरुष को मन्त्र देवता का ध्यान करते हुए 'स्वाहा' के बाद अग्नि में हविष् का प्रक्षेप (त्याग) करना चाहिए।

स्वाहावसाने जुहुयात् स्वाहया सह वा हविः।
त्यागान्ते ब्रुवते केचिद् द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः॥

होता स्वाहा के अन्त से हवन करे अथवा स्वाहा के साथ करे। कुछ विद्वानों का मतह ै कि हविर्द्रव्य का अग्नि में प्रक्षेप करके ही 'स्वाहा' शब्द कहना चाहिए।

स्वाहान्ते जुहुयात् होता स्वाहया सह वा हविः।
त्यागान्ते ब्रुवते केचित् द्रव्यप्रक्षेपणं बुधाः॥

होता को स्वाहा के अन्त में हवन करना चाहिए (अग्नि में हविष् का त्याग करना चाहिए) अथवा स्वाहा के साथ ही कुछ विद्वान् हविष् त्याग (अग्नि में प्रक्षेपण) के बाद 'स्वाहा' कहते हैं।

स्वाहा कुर्यान्न मन्त्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः।
स्वाहाकारेण हुत्वाऽग्नौ पश्चान्मन्त्रं समापयेत्॥

मन्त्र के अन्त में स्वाहा न करे और न हविष् का हवन करे स्वाहाकार से अग्नि में हवन करके बाद में मन्त्र को समाप्त करे।

आदौ द्रव्यपरित्यागः पश्चाद्धोमो विधीयते।

प्रथम द्रव्य का परित्याग कर पश्चात् हवन करना चाहिए।

सकारे सूतकं विद्याद्धकारे मृत्युमादिशेत्।
आहुतिस्तत्र दातव्यः यत्र आकार दृश्यते॥

स्वाहा में स् व् आ और ह आ ये पाँच अक्षर हैं। सकार में सूतक जानना चाहिए और हकार में मृत्यु कहना चाहिए। अतः आहुति उस समय देनी चाहिए जिस समय हकारोत्तरवर्ती आकार दिखाई देता है अर्थात् स् के उच्चारण में आहुति सूतक के दोष से दुष्ट हो जाती है, हकार के उच्चारण में मृत्यु का भय होता है। इसलिए हकारोत्तरवर्ती आकार के उच्चारण के समय आहुतिप्रक्षेप करना चाहिए।

कुछ आचार्यों का 'स्वेच्छया जुहुयाद्धविः' यह भी मत है किन्तु यह मत ठीक नहीं है। स्वेच्छाचार से भयंकर अनवस्था दोष हो जाता है। अतः उपर्युक्त देवयाज्ञिक, विष्णुधर्म, कर्मकौमुदी एवं परशुरामकारिका आदि के ही मत मान्य और अनुकरणीय है।

आहुति देने का विचार

प्रश्न

अधोमुख ऊर्ध्वपादः प्राङ्मुखो हव्यवाहनः।
तिष्ठत्येव स्वभावेन आहुतिः कुत्र दीयते?।।

अग्नि (जो हवीय द्रव्य चरु आदि को तत्तत् देवताओं को पहुँचाता है) स्वभावतः ही अधोमुख (नीचे की ओर मुखवाला) ऊर्ध्वपाद (ऊपर की ओर पैरवाला) रहता है। उसका मुँह पूर्व की ओर रहता है ऐसी स्थिति में आहुति कहाँ दी जाय?।

उत्तर

सपवित्राम्बुहस्तेन वह्नेः कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा बिभेति सम्मुखो भवेत्।।

हाथ में पवित्री और जल लेकर कर्ता अग्नि की प्रदक्षिणा करे। हव्यवाहन (अग्नि) जल को देखकर डर जाता है और सम्मुख (हवनकर्ता के सामने) हो जाता है। इसलिए सामने होम करना चाहिए।

4.4.1 विधिहीन अग्नि में हवन करने से हानि

क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमन्त्रो जुहोति यः।
अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्याज्जन्मजन्मनि।।
स्वल्पे रूक्षे सस्फुलिंग वामावर्त्ते भयानके।
आर्द्रकाश्ठैश्च सम्पूर्णे फूत्कारवति पावके।।
कृष्णार्चिषि सदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्।
आहुतिर्जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम्।।

जो पुरुष भूख, प्यास से व्याकुल तथा क्रोधयुक्त होकर मन्त्र रहित, पूर्णरूप से न सुलगी हुई (ज्वाला-माला-विहीन) अथवा धूएँ से व्याप्त अग्नि में हवन करता है, वह प्रत्येक जन्म में अन्धा होता है। जो पुरुष स्वल्प रूखी (धूमिल वर्ण की) चिनगारियों से भरी, जिसकी ज्वालाएँ बाईं ओर लपक रही हों, जो देखने में भयानक प्रतीत होती हों, जो गीली लकड़ियों से भरी हों, जिसका फुफकार का शब्द हो रहा हो, जिसकी ज्वालाएँ काली हों, जिसमें से दुर्गन्ध निकल रही हो तथा जो ज्वालाएँ भूमि का स्पर्श कर रही हों, ऐसी अग्नि में आहुतियाँ डालता है, उसका अवश्य नाश होता है।

अन्धो बुधः सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानो भवेदन्धः सपुत्र इति च श्रुतिः।।

जो विद्वान् धूमवाली अग्नि में हवन करता है, वह अन्ध होता है और जो यजमान सधूम

अग्नि में हवन करता है, वह पुत्र के सहित अन्धा होता है।

अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम् ।।

जो यजमान अग्नि के ठीक-ठीक न जलने पर और धूम के रहते हुए अग्नि में हवन करता है, वह अन्धा और पुत्रहीन होता है ऐसा हमने सुना है।

प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ।।
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।।

जो मनुष्य तेजहीन अग्नि तथा अंगारहीन अग्नि में आहुति देता है वह मन्दागिन इत्यादि दुःखी तथा दरिद्रता को प्राप्त होता है। अतः प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना सर्वथा श्रेष्ठ है।

योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः ।
मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ।।
तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम् ।।

जो पुरुष तेजरहित अग्नि और अंगार रहित अग्नि में आहुति डालता है वह मन्दाग्नि आदि रोगों से दुःखित और दरिद्रता को प्राप्त होता है। अतः आरोग्य, दीर्घायु और विशिष्टरूप में लक्ष्मी की प्राप्ति के इच्छुक को प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए।

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ।।

जब अग्नि भलीभाँति जलायी जा चुके और उसमें ज्वाला उठने लगे, तब उसमें घी तथा हवन सामग्री आदि की आहुतियाँ श्रद्धापूर्वक देनी चाहिये।

अप्रदीप्ते न होतव्यं मध्यमे नाप्यनिन्धिते ।
प्रदीप्ते लेलिहानेऽग्नौ होतव्यं कर्मसिद्धये ।।

अप्रदीप्त (अप्रज्वलित) अग्नि में होम नहीं करना चाहिए। कुछ-कुछ जली हुई अग्नि में भी हवन नहीं करना चाहिए। जो खूब प्रज्वलित न धधकी हो ऐसी अग्नि में भी हवन नहीं करना चाहिए। खूब प्रज्वलित धधकती हुई अग्नि में कर्मसिद्धि के लिये हवन करना चाहिए।

अदीप्तेऽग्नौ हतो होमः।

अप्रज्वलित अग्नि में किया हुआ हवन नष्ट हो जाता है।

4.4.2 अग्नि में हवनार्थ स्थान का विचार

सर्वकार्यप्रसिद्ध्यर्थं जिह्वायां तत्र होमयेत्।
चक्षुः कर्णादिकं ज्ञात्वा होमयेद्देशिकोत्तमः।।
अग्निकर्णे हुतं यस्तु कुर्याच्चेद् व्याधितो भयम्।
नासिकायां महद्दुःखं चक्षुषोर्नाशनं भवेत्।।
केशे दारिद्र्यदं प्रोक्तं तस्माज्जिह्वासु होमयेत्।
यत्र काष्ठं तत्र श्रोत्रे यत्र धूमस्तु नासिके।।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यत्र भस्म तु तच्छिरः।
यत्र च ज्वलितो वह्निस्तत्र जिह्वा प्रकीर्तिता।।

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये अग्नि की जिह्वा में होम करना चाहिए। श्रेष्ठ आचार्य चक्षु (नेत्र), कर्ण, नासिका, सिर, आदि की पहचान कर हवन करें। अग्नि के कान में यदि हवन करे तो उसे व्याधि से भय होता है, नासिका में हवन करे तो महादुःख होता है, नेत्रों में हवन करें तो विनाश होता है। केशों में किया गया हवन दारिद्र्यप्रद कहा गया है। इसलिये जिह्वाओं में हवन करना चाहिए।

जहाँ काठ है वहाँ अग्नि के कान कहे गये हैं, जहाँ धूआँ है वहाँ अग्नि की नासिका कही गई है, जहाँ अग्नि कम जलती है वहाँ अग्नि के नेत्र कहे गये हैं, जहाँ भस्म है वहाँ अग्नि का सिर कहा गया है और जहाँ अग्नि ज्वालायुक्त है, वहाँ अग्नि की जिह्वा कही गई है।

अन्यत्र भी लिखा है-

यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ हुनेच्चेद् व्याधिकृन्नरः ।
धूमस्थानं शिरः प्रोक्तं मनोदुःखं भवेदिह ।।
यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यजमानस्य नाशनम् ।
भस्मस्थाने तु केशः स्यात् स्थाननाशो धनक्षयः ।।
अंगारे नासिकां विद्यान्मनोदुःखं विदुर्बुधाः ।
यत्र प्रज्वलनं तत्र जिह्वा चैव प्रकीर्तिता ।।
गजवाजिप्रदात्री तु वह्निः शुभफलप्रदः ।।

जहाँ काष्ठ है वहाँ कान है वहाँ यदि मनुष्य हवन करे तो वह हवन व्याधिकारी होता है। धूम का स्थान सिर कहा गया है वहाँ हवन करने से मानसिक कष्ट होता है। जहाँ अग्नि का ज्वलन बहुत थोड़ा हो वहाँ नेत्र हैं वहाँ हवन करने से यजमान का नाश होता है। भस्म के स्थान में अग्नि के केश हैं वहाँ हवन करने से स्थान का नाश और धन का नाश होता है। अंगार में अग्नि की नासिका जाननी चाहिए वहाँ हवन करने से मानस दुःख होता है। जहाँ अग्नि की ज्वाला हो वहाँ जिह्वाएँ कही गई है। गज और अश्व की तरह शब्द करने वाला वह्नि शुभ फल प्रदान करता है। जैसे हाथी चिंघाड़ता है और घोड़ा हिनहिनाता है वैसा दहकते हुए शब्द करने वाला अग्नि शुभ फलदायक है।

वह्नेः शिरसि नासायां श्रोत्रेष्वक्षिषु वा तथा ।
जुहुयाच्चेत्तदा क्षिप्रं तदंगानि विनाशयेत् ।।

अग्नि के सिर में, नासिका में अथवा कानों में तथा नेत्रों में हवन करे तो वह हवन मनुष्य के उन-उन अंगों को शीघ्र विनाश देता है।

निष्कर्ष यह है कि हवन कर्ता को अग्नि की जिह्वा में ही हवन करना चाहिए। जो पुरुष अग्नि की जिह्वा को छोड़कर अग्नि के अन्य अंगों में हवन करता है, उसका तत्तत् अंग क्षय होता है।

मन्त्र के वर्ण का उच्चारण प्रकार

वर्णः स्पष्टतरः कार्यो नासाश्वासावधीति वा ।

मुखश्वासावधि श्रृण्वन्नभिषेकार्चनादिषु ।।

अभिषेक, अर्चन, हवन आदि में मन्त्र के वर्ण का स्पष्ट उच्चारण इस प्रकार करना चाहिए जिसमें वह अपने को सुनाई दे। नासिका से श्वास छोड़ने में अथवा मुख से श्वास लेने में जितना समय लगता है उतना समय वर्ण के उच्चारण में लगना चाहिए।

हवनादि में मन्त्रों के उच्चारण का प्रकार

शिख्यादिनाममन्त्रैस्तु स्वाहान्तैः प्रणवादिभिः।

प्रणवादि (ऊँकार है आदि में जिनके) तथा स्वाहान्त (स्वाहा है अन्त में जिनके) ‘शिखी’ आदि नाम मन्त्रों से (जैसे-ऊँ शिखिने स्वाहा) हवन करना चाहिए।

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तः स्वाहाशब्दसमन्वितः।

यन्त्रपीठादिदेवानां होमे मन्त्रः प्रकीर्तितः।।

यन्त्र और पीठ आदि के देवताओं के होम में ऊँकारादि (ऊँकार है आदि में जिनके), चतुर्थ्यन्त (चतुर्थी विभक्ति है अन्त में जिसके) से ‘स्वाहा’ शब्द से युक्त मन्त्र कहा गया है। जैसे - ऊँ अग्नये स्वाहा’, ऊँ सोमाय स्वाहा आदि।

होमे स्वाहान्तिमा मन्त्राः पूजान्यासे नमोऽन्तिकाः ।

तर्पणे तर्पयाम्यन्ता ऊहानीया बुधैः सदा ।।

सदा विद्वान् पुरुषों को होम में स्वाहान्त (स्वाहा है अन्त में जिसके) मन्त्र, पूजा में नमोन्त (नमः है अन्त में जिनके) मन्त्र और तर्पण में तर्पयाम्यन्त (तर्पयामि है अन्त में जिनके) मन्त्र होते हैं, हमेशा समझना चाहिए।

हवन के समय मन्त्रान्त में स्वाहा कहना आवश्यक है

सर्वे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः स्वाहान्ता होमकर्मसु

हवन के समय सभी मन्त्रों के अन्त में ‘स्वाहा’ कहकर उच्चारण करना चाहिए।

स्वाहा के साथ आहुति न देने पर कर्त्तव्य

विपर्यासो यदि भवेत् स्वाहाकारप्रदानयोः ।

तदा मनोजूतिरिति जुहुयाद्वै मनस्वतीम् ।।

स्वाहा के साथ आहुति न देकर स्वाहा के पहले या बाद में आहुति देने से जो दोष होता है, उसके परिहार के लिए 'मनो जूतिः.' (शु. य. 2/13) इस मन्त्र से आहुति देनी चाहिए।

हवन के समय मन्त्रों के ऋषि और छन्दादि का स्मरण अनावश्यक है

न च स्मरेत् ऋषि छन्दः श्राद्धे वैतानिके मखे।

ब्रह्मयज्ञे च वै तद्वत्तथोंकारं विवर्जयेत्॥

श्राद्ध में, वैतानिक (अग्निहोत्र) नामक यज्ञ में और ब्रह्मयज्ञ में मन्त्रों के ऋषि, छन्द एवं ओंकार का स्मरण वर्जित है।

अग्निहोत्रे वैश्वदेवे विवाहादिविधौ तथा।

होमकाले न दृश्यन्ते प्रायश्छन्दर्षिदेवताः॥

शान्तिकादिषु कार्येषु मन्त्रपाठक्रियादिषु।

होमे नैव प्रकर्तव्याः कदाचिदृषिदेवताः॥

अग्निहोत्र में, वैश्वदेव में तथा विवाहादि विधि में होम के समय प्रायः छन्द, ऋषि और देवता नहीं दिखाई देते। शान्ति आदि कर्मों में, मन्त्रपाठ आदि में तथा होम में कभी भी ऋषि और देवता का स्मरण नहीं करना चाहिए।

ऋषिदैवतच्छंदांसि प्रणवं ब्रह्मयज्ञके।

मन्त्रादौ नोच्चरेच्छ्राद्धे यागकालेऽपि चैव हि॥

ब्रह्मयज्ञरूप अध्यापन में एवं मन्त्र के आदि में ऋषि, देवता, छन्द और प्रणव का उच्चारण नहीं करना चाहिए। श्राद्ध तथा यज्ञकाल में भी यही बात जानना चाहिए।

हवनादि में विनियोग का विचार

प्रातःकालेऽथवा पूजासमये होमकर्मणि।

जपकाले समस्ते वा विनियोगः पृथक् पृथक्॥

प्रातःकाल पूजा के समय में, होम के समय में, जप के समय में अथवा समस्त कर्मों में विनियोग अलग अलग करना चाहिए।

हवन के समय प्रत्येक मन्त्र में ओंकारोच्चारण अनावश्यक है

नोंकुर्याद्धोममन्त्राणां पृथगादिषु कुत्रचित्।

अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना॥

होम मन्त्रों के आदि में अलग ऊँकार कहीं पर भी नहीं लगाना चाहिए। आचमनादि काल से अव्यवहित अन्य मन्त्रों के आदि में भी ऊँकार नहीं लगाना चाहिए।

हवनादि में हस्तस्वर का निषेध

उपस्थाने जपे होमे दोहे च यज्ञकर्मणि।

हस्तस्वरं न कुर्वीत शेषास्तु स्वरसंयुताः॥

उपस्थान में, जप में, गोदोहन (गोदोहन-कर्म श्रौतयाग में होता है) में और यज्ञकर्म में हस्तस्वर नहीं लगाना चाहिए। शेष कर्मों में स्वर लगाना चाहिए।

अब आपके लिए इस इकाई से सम्बन्धित कुछ बोध प्रश्न दिये जा रहे हैं जिनका समाधान आपको करना है-

बोधप्रश्न

क. होम में तिल की अधिकता से क्या प्राप्त होता है?

ख. होम में तण्डुल (चावल) की मात्रा कितनी होनी चाहिए?

ग. आज्य शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है?

घ. दधि के अभाव में कौन सा द्रव्य उपयोगी है?

ङ. त्रिमधु किसे कहते हैं?

च. विद्याप्राप्ति के लिए किस द्रव्य से होम करना चाहिए?

छ. चरु किसे कहते हैं?

ज. अग्नि के कितने हाथ हैं?

झ. मनोजवा क्या है?

ञ. आहुति शब्द में कौन सी धातु है?

ट. आहुति कब करनी चाहिए?

4.5 सारांश

इस इकाई में दुर्गासप्तशती के पाठ से हवन की विधि बताई गई है। इसके साथ ही समाज में व्याप्त होम के विषय में जो-जो भ्रान्तियाँ हैं, या जिज्ञासाएँ हैं उनका समाधान विविध शास्त्रों के वचनों से किया गया है।

सर्वप्रथम होम शब्द का अर्थ, उसका शास्त्रों में प्रयोग, होम शब्द का आदि में प्रयोग, आदि तत्त्वों को सैद्धान्तिक रूप से उपदिष्ट किया गया है। श्रौत एवं स्मार्त याग का भेद एवं होम से सम्बन्धित विशेष शास्त्रीय वचनों से पाठकों की जिज्ञासाओं का समाधान यहाँ किया गया है। अब यह इकाई यही पूर्ण होती है।

4.6 शब्दावली

क. यथेष्टम्	-	अपनी इच्छा से
ख. जर्तिल	-	जंगल में उत्पन्न होने वाला तिल
ग. आज्य	-	संस्कारयुक्त गाय का घी
घ. स्पृशति	-	स्पर्श करता है
ङ. खदिर	-	खैर की लकड़ी

च. चूतवृक्ष	-	आम का पेड़
छ. दाडिमीफल	-	अनारफल
ज. छागलीजातम्	-	बकरी का घृत
झ. संकीर्णम्	-	संकोच
ञ. लाजाभिः	-	धान के लावों से
ट. द्विशीर्षकः	-	दो शिर वाला
ठ. लोहिताक्षः	-	लाल नेत्र वाले
ड. जपाभम्	-	जपाकुसुम की तरह आभावाले

4.7 बोधप्रश्नों के उत्तर

क. तिल की अधिकता से लक्ष्मी प्राप्ति होती है।

ख. तिल का आधा भाग चावल होना चाहिए।

ग. आज्य से संस्कारयुक्त घी का बोध होता है।

घ. दधि के अभाव में दूध से काम चलाना चाहिए।

ङ. शहद, घी, एवं मिश्री तीनों का मिश्रण त्रिमधु है।

च. विद्याप्राप्ति के लिए पलाश की समिधा से होम करना चाहिए।

छ. देवताओं के लिए पकाया गया चावल (ओदन या भात)।

ज. अग्नि के सात हाथ होते हैं।

झ. मनोजवा अग्नि की जिह्वा है।

ञ. आहुति शब्द में आङ् पूर्वक हु धातु है।

ट. मन्त्र के अन्त में हवन करना चाहिए।

4.8 सन्दर्भग्रन्थसूची

क. पद्मपुराण

ख.यज्ञमीमांसा

ङ. कात्यायनस्मृति

च. वायुपुराण

छ. देवीभागवत

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

क. दुर्गापाठ से होम की विधि का निरूपण करें।

ख. अग्नि के स्वरूप का वर्णन करें।

ब्लॉक - 4 हवन विधि

इकाई – 1 पंचभू संस्कार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पंचभूसंस्कारार्थ भूमि के लक्षण एवं कुण्ड मण्डपादि फल विचार

1.3.1 भूमि के लक्षण का विचार

1.3.2 कुण्डादि प्रकार एवं फल-

1.4 कुण्ड निर्माण विधान एवं पंचभूसंस्कार

1.4.1 चतुरस्रादि कुण्ड निर्माण विधान

1.4.2 पंचभूसंस्कारार्थ कुशों का महत्त्व

1.4.3 पंच भू संस्कार

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में पंचभू संस्कार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कर्मकाण्ड में अनुष्ठानादि की सम्पन्नता हेतु हवन का विधान सर्वविदित है। हवन के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नही हो पाती है। हवन कार्य का प्रथम उपक्रम पंचभूसंस्कार है । यदि यह कहा जाय कि पंचभूसंस्कार के अभाव में हवन कार्य हो ही नही सकता तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

वास्तविक रूप से देखा जाय तो पंचभूसंस्कार का मतलब है भूमि के पांच संस्कार। अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि किस भूमि के पांच संस्कार ? उत्तर में आता है कि जिस भूमि पर अग्नि स्थापन करना हो उस भूमि के पांच संस्कार किये जाते हैं, जिसे पंच भू संस्कार कहते हैं। संस्कार शब्द से आप सभी लोग सुपरिचित होगें ही , फिर भी सामान्यतया संस्कार शुद्धिकरण की प्रक्रिया है। किसी भी चीज का संस्कार करना यानी उसको शुद्ध या सुसंस्कृत बनाना संस्कार कहलाता है। संस्कार के अभाव में शुद्धता का संचार नही हो पाता। शुद्धता के अभाव में सफलता की प्राप्ति नही हो सकती । इसलिये भूमि के संस्कार करने अति आवश्यक है। पंच भूसंस्कार को जब हम देखते तो यह अत्यन्त लघु कार्य समझ में आता है लेकिन जब हम विषय की गंभीरता पर विचार करते हैं तो पाते है कि जिस भूमि पर यज्ञ होना है उस स्थान पर भूमि का विचार करके तदनन्तर मण्डप कुण्डादि स्थण्डिलादि के निर्माण का विचार करके पंचभूसंस्कार्य उपक्रम का सम्पादन कर हवनादि की अग्रिम प्रक्रियाओं का सम्पादन किया जाता है।

इस इकाई के अध्ययन से आप पंच भूसंस्कार इत्यादि के विचार करने की विधि एवं सम्पादन करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे यज्ञादि कार्यों या अनुष्ठानादि के अवसर किये जाने वाले पंचभूसंस्कार विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

1.2 उद्देश्य-

अब पंचभूसंस्कार विचार एवं सम्पादन की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

-कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

-पंचभूसंस्कार सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

- पंचभूसंस्कार के सम्पादन में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

1.3 पंचभूसंस्कारार्थ भूमि के लक्षण एवं कुण्ड मण्डपादि फल विचार -

इसमें पंच भू संस्कार विचार हेतु भूमि का लक्षण एवं कुण्ड मण्डपादि फल विचार का ज्ञान आपको कराया जायेगा क्योकि बिना इसके ज्ञान के पंच भू संस्कार का आधारभूत ज्ञान नही हो सकेगा। आधारभूत ज्ञान हो जाने पर उस कर्म के सम्पादन का प्रभूत एवं पुष्ट फल मिलता है। इसलिये कुण्डमण्डपादि निर्माणार्थ भूमि का विचार करके फलों का निरूण्ण करके पंचभूसंस्कार पूर्वक यागादि का सम्पादन करना चाहिये।

1.3.1 भूमि के लक्षण का विचार-

पंच भू संस्कार कुण्ड या स्थण्डिल में किया जाता है। कुण्ड या स्थण्डिल किस भूमि पर निर्माण करना चाहिये इसका विचार आवश्यक है। इसे जानने के लिये हमें भूमि का ज्ञान प्राप्त करना होगा कि कौन सी भूमि उत्तम है? क्योकि उत्तम भूमि पर किया गया यज्ञानुष्ठान शीघ्र पूर्ण सफलता प्रदान करने वाला होता है। इसलिये भूमि का लक्षण इस प्रकार दिया जा रहा है।

1- **वर्णपरत्वेन भूमिलक्षणानि-**

शुभस्य शुभदा ज्ञेया दशा पापस्य चाधमा।
शुक्ला मृत्स्ना च या भूमिर्ब्राह्मणी सा प्रकीर्तिता।
क्षत्रिया रक्तमृत्स्ना च हरिद्वैश्या।
कृष्णा भूमिर्भवेच्छूद्रा चतुर्धा परिकीर्तिता।

इसमें चार प्रकार की भूमि का वर्णन किया गया है। सफेद वर्ण वाली मिट्टी की भूमि को ब्राह्मणी भूमि वाली मिट्टी , लाल वर्ण की क्षत्रिया भूमि, हरित वर्ण की वैश्या भूमि और काले वर्ण वाली भूमि को शूद्रा कहा जाता है।

2-**प्रकारान्तरेण भूमिलक्षणानि-**

ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया स्याच्छराकुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला।।

कुश युक्त भूमि ब्राह्मणी, शर यानी मूंज वाली क्षत्रिया, कुश-काश मिश्रित वैश्या और सब प्रकार के तृणों से युक्त भूमि को शूद्रा कहा गया है।

3- **कल्पद्रुमोक्त भूमिलक्षणानि-**

सुगन्धा ब्राह्मणी भूमी, रक्त गन्धा तु क्षत्रिया।
मधुगन्धा भवेद्वैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिका।
अम्ला भूमिर्भवेद्वैश्या तिक्ता शूद्रा प्रकीर्तिता।
मधुरा ब्राह्मणी भूमिः कषायाः क्षत्रिया मता।

अर्थात् सुगन्ध युक्त भूमि को ब्राह्मणी, रक्त गन्ध वाली भूमि को क्षत्रिया, मधु गन्धा भूमि को वैश्या और मद्य गन्धा सम्पन्न भूमि को एतदतिरिक्ता कहा जाता है। अम्ल रस युक्त वैश्या, तिक्त रस युक्त शूद्रा, मधुररसयुक्त ब्राह्मणी और कषाय रस युक्त क्षत्रिया भूमि होती है। इनके फलों का वर्णन करते हुये कहा गया है कि ब्राह्मणी भूमि सुखदा, क्षत्रिया भूमि राज्यप्रदा, वैश्या भूमि धनधान्यकरी और एतदतिरिक्ता भूमि त्याज्य होती है। आचार्य वसिष्ठ ने वर्णो के अनुसार भूमि का प्रतिपादन करते हुये कहा है कि ब्राह्मण की भूमि सफेद वर्ण की, क्षत्रिय की लाल वर्ण की, वैश्य की पीली वर्ण की और अन्य की काली वर्ण की होनी चाहिये। नारद जी के मत में ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लिये क्रम से घृत, रक्त, अन्न, और मद्य गन्ध वाली भूमि सुखद होती है।

भूमि के प्लव का भी विचार किया गया है। पूर्व दिशा की ओर भूमि ढालदार हो तो धन प्राप्ति, अग्नि कोण में दाह, दक्षिण में मृत्यु, नैर्ऋत्य में धननाश, पश्चिम में पुत्र हानि, वायव्य में परदेश निवास, उत्तर में धनागम, ईशान में विद्यालाभ तथा बीच में गड्ढा वाली भूमि कष्टदायक होती है। इस मत के अलावा मतान्तर से भी विचार करते हुये बतलाया गया है कि ईशान कोण में भूमि ढालू हो तो धन सुख, पूर्व में हो तो वृद्धि, उत्तर में धनलाभ, अग्निकोण में मृत्यु तथा शोक, दक्षिण में गृहनाश, नैर्ऋत्य में धनहानि, पश्चिम में अपयश, बायव्य में मानसिक उद्वेग करती है।

नरायण भट्ट के मत में ब्राह्मण के लिये उत्तर ठालवाली भूमि शुभ है। क्षत्रिय के लिये पूर्व ठाल वाली भमि शुभ मानी गयी है। वैश्य के लिये दक्षिण ठाल वाली भूमि शुभ मानी गयी है। अन्य लोगों के लिये पश्चिम की ओर ठाल वाली भूमि शुभ जानना चाहिये। वास्तु विद्या में तो कहा गया है कि-

पूर्वप्लवा वृद्धिकरी उत्तरा धनदा स्मृता।
अर्थक्षयकरीं विद्यात् पश्चिमप्लवना ततः।
दक्षिण प्लवना पृथ्वीं नराणां मृत्तिदा भवेत्।

अर्थात् पूर्व की ओर ठाल वाली भूमि धन धान्य की वृद्धि करने वाली होती है। पश्चिम की ओर ठाल वाली भूमि अर्थनाश कारक और दक्षिण की ओर ठाल वाली भूमि मृत्यु का कारण होती है। इस प्रकार उचित भूमि का चयन करके कुण्ड या स्थण्डिल का निर्माण करना चाहिये। जिससे उस भूमि का फल प्रथम दृष्ट्या व्यक्ति को उत्त्म मिले।

इस प्रकार भूमि के लक्षण एवं किस प्रकार की भूमि का क्या फल है इसके विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों

या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- .... ब्राह्मणी भूमी।

क- सुगन्धा, ख- रक्त गन्धा, ग- मधुगन्धा, ध- मद्यगन्धा।

प्रश्न 2-.................... तु क्षत्रिया।

क- सुगन्धा, ख- रक्त गन्धा, ग- मधुगन्धा, ध- मद्यगन्धा।

प्रश्न 3- .... भवेद्वैश्या।

क- सुगन्धा, ख- रक्त गन्धा, ग- मधुगन्धा, ध- मद्यगन्धा।

प्रश्न 4- .... च शूद्रिका।

क- सुगन्धा, ख- रक्त गन्धा, ग- मधुगन्धा, ध- मद्यगन्धा।

प्रश्न 5-........... भूमिर्भवेद्वैश्या।

क- अम्ला, ख- तिक्ता, ग- मधुरा, ध- कषायाः।

प्रश्न 6- .... शूद्रा प्रकीर्तिता।

क- अम्ला, ख- तिक्ता, ग- मधुरा, ध- कषायाः।

प्रश्न 7- .... ब्राह्मणी भूमिः।

क- अम्ला, ख- तिक्ता, ग- मधुरा, ध- कषायाः।

प्रश्न 8- .... क्षत्रिया मता।

क- अम्ला, ख- तिक्ता, ग- मधुरा, ध- कषायाः।

प्रश्न 9- पूर्वप्लवा वृद्धिकरी, ... धनदा स्मृता।

क-उत्तरा ख- पश्चिमप्लवा, ग-पूर्वप्लवा, घ- दक्षिणप्लवा।

प्रश्न 10- अर्थक्षयकरीं विद्यात् .... ततः।

क-उत्तरप्लवा ख- पश्चिमप्लवना, ग-पूर्वप्लवा, घ- दक्षिणप्लवा।

1.3.2 कुण्डादि प्रकार एवं फल-

इस प्रकरण में कुण्डों के प्रकार एवं फल के बारे में अध्ययन करेगें। इससें आपको कुण्डों के बारे में सटीक जानकारी हो सकेगी। साथ ही साथ कामना के अनुसार कुण्ड निर्माण का ज्ञान भी आपको हो जायेगा।

कुण्ड के पक्ष में आपको तीन पक्ष मिलेगें जिन्हें नवकुण्डी, पंचकुण्डी एवं एककुण्डी के नाम से जाना जाता है। नव कुण्डी में नौ कुण्ड, पंच कुण्डी में पांच कुण्ड तथा एक कुण्डी में एक कुण्ड होता है। नौ कुण्डी पक्ष में नौ कुण्ड इस प्रकार होता है-

प्राच्या चतुष्कोण भगेन्दुखण्ड त्रिकोणवृत्तांगभुजाम्बुजानि।

अष्टास्त्रिशशक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदा स्त्रिवा वृत्तमुशन्तिकुण्डम्।।

अर्थात् पूर्व दिशा में चतुष्कोण कुण्ड बनाना चाहिये। अग्नि कोण में योनि कुण्ड बनाना चाहिये। दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड बनाना चाहिये। नैर्ऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये। पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये। वायव्य कोण में षडस्र कुण्ड बनाना चाहिये। उत्तर में पद्मकोण कुण्ड बनाना चाहिये। ईशान कोण में अष्टास्र कुण्ड बनाना चाहिये। ईशान एवं उत्तर के बीच में चतुष्कोण या त्रिकोण या वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये।

उपरोक्त अध्ययन से पता चलता है कि नौ दिशाओं एवं विदिशाओं में बनाये जाने वाले कुण्डों का प्रकार आठ ही है। नौवां कुण्ड उन्हीं आठों में से कोई एक कुण्ड है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि कुण्ड आठ प्रकार के ही होते हैं। कहीं कहीं हम लोग यह देखते हैं कि एक सौ एक बनाये गये हैं परन्तु उनका प्रकार इन्ही आठों प्रकारों में से ही कोई होता है।

इसी प्रकार एक दूसरा पक्ष होता है जिसे पंच कुण्डी पक्ष के रूप में जाना जाता है।

आशेषकुण्डैरिहपंचकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोम शैवे।।

इसमें बतलाया गया है कि पूर्व दिशा में चतुष्कोण कुण्ड बनाना चाहिये। दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड बनाना चाहिये। पश्चिम दिशा में वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये। उत्तर में पद्मकोण कुण्ड बनाना चाहिये। ईशान कोण पूर्व के बीच में चतुष्कोण या त्रिकोण या वृत्त कुण्ड बनाना चाहिये। इसमें यह पाया जाता है कि कोणों के कुण्डों को छोड़कर केवल दिशाओं के कुण्डों को स्वीकार किया गया है। एक कुण्डी पक्ष में इन्ही में से कोई एक कुण्ड बनाने का विधान हैं

इन कुण्डों के अलग अलग फल बताये गये है। कुण्ड मण्डप सिद्धि नामक ग्रन्थ में कहा गया है कि-

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छदे।

वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादि कुण्डके।।

अर्थात् चतुष्कोण कुण्ड में सिद्धि कामना के लिये हवन कराना चाहिये। पुत्र कामना के लिये योनि कुण्ड में हवन करना चाहिये। शुभ कामना के लिये अर्धचन्द्र कुण्ड में हवन करना चाहिये। शत्रु नाश के लिये त्रिकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। शान्ति के लिये वृत्त कुण्ड में हवन करना चाहिये। मृत्युच्छेदन के लिये षट्कोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। वृष्टि के लिये पद्मकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये। और आरोग्यता के लिये अष्टकोण कुण्ड में हवन करना चाहिये।

कुण्डों के निर्माण में आहुति को प्रमाण माना गया है। 50 आहुति हेतु इक्कीस अंगुल का रत्मिात्र का

कुण्ड होना चाहिये। एक सौ आहुति में अरत्निमात्र बाईस अंगुल से यव का कुण्ड होना चाहिये। एक हजार आहुति में एक हाथ यानी चौबीस अंगुल का कुण्ड बनाना चाहिये। दस हजार आहुति में दो हाथ यानी चौंतीस अंगुल का कुण्ड बनाना चाहिये। एक लाख आहुति में चार हाथ यानी अड़तालीस अंगुल का कुण्ड बनाना चाहिये। दस लाख आहुति में छः हाथ यानी अट्ठावन अंगुल छः यव का कुण्ड बनाना चाहिये। एक करोड़ आहुति में आठ हाथ यानी सड़सठ अंगुल सात यव का कुण्ड बनाना चाहिये।

कुण्डों के निर्माण प्रमाण के अनुसार करना चाहिये अन्यथा उसका विपरीत फल प्राप्त होता है। कहा गया है कि-

खाताधिके भवेद्रोगी, हीने धेनु क्षयस्तथा।
वक्रकुण्डे च सन्तापो, मरणं छिन्नमेखले।
मेखला रहिते शोको अभ्यधिके वित्तसंक्षयः।
भार्यादिनाशनं प्रोक्तं कुण्डं योन्याविनाकृते।
कुण्डं यत्कण्ठरहितं सुतानां तन्मृतिप्रदम्।
अनात्मके मृत्युमुपैति बन्धुस्तथैवमानाधिककेस्वयंचेति।। परशरामकारिकायाम्।।

कुण्डों के निर्माण में यह ध्यान रखना चाहिये कि प्रमाण के अनुसार ही उसमें खात हो। यदि ऐसा नही होता है तो उसका विपरीत फल देखने को मिलता है। जैसे-

जिस कुण्ड में गड्ढा मान से अधिक होता है तो उसका फल रोगी होना बतलाया गया है। जिस कुण्ड में गड्ढा मान से कम होता है तो उसका फल धेनु का क्षय बतलाया गया है। यदि कुण्ड टेढ़ा मेढ़ा हो तो सन्ताप होता है। यदि कुण्ड में मेखलायें टूटी फटी हो तो उसका फल मरण बतलाया गया है। मेखला से रहित कुण्ड यदि निर्मित किया जाता है उससे शोक की प्राप्ति होती है। यदि अधिक मेखला हो तो धन का क्षय होता है। योनि के बिना कुण्ड निर्माण करने पर भार्या का विनाशक फल होता है। कण्ठ रहित कुण्ड का फल पुत्र की मृत्यु बतलायी गयी है। इस प्रकार यथा शास्त्रोक्त कुण्ड निर्माण करके पंचभूसंस्कार करना चाहिये । तदनन्तर हवन का विधान करना चाहिये ।

इस प्रकार कुण्ड के प्रकार एवं फल के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- पूर्व दिशा में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- चतुष्कोण, ख- योनि, ग- अर्धचन्द्र, घ- त्रिकोण।

प्रश्न 2- अग्नि कोण में ....कुण्ड बनाना चाहिये।

क- चतुष्कोण, ख- योनि, ग- अर्धचन्द्र, घ- त्रिकोण।

प्रश्न 3- दक्षिण में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- चतुष्कोण, ख- योनि, ग- अर्धचन्द्र, घ- त्रिकोण।

प्रश्न 4- नैर्ऋत्य कोण में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- चतुष्कोण, ख- योनि, ग- अर्धचन्द्र, घ- त्रिकोण।

प्रश्न 5-पश्चिम दिशा में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

प्रश्न 6- वायव्य में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

प्रश्न 7- उत्तर में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

प्रश्न 8- ईशान कोण में .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

प्रश्न 9- ईशान एवं उत्तर के बीच में चतुष्कोण या त्रिकोण या .... कुण्ड बनाना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

प्रश्न 10- शान्ति के लिये किस कुण्ड में हवन करना चाहिये।

क- वृत्त कुण्ड, ख- षडस्र, ग- पद्मकोण कुण्ड, घ- अष्टास्र कुण्ड।

1.4 कुण्ड निर्माण विधान एवं पंचभूसंस्कार-

इसमें आपको कुण्ड या स्थण्डिल के निर्माण का विधान बतलाया जायेगा। इसके ज्ञान से आप कुण्ड का निर्माण कर सकेगें। जहां कुण्ड बनाने की आवश्यकता न हो वहां स्थण्डिल बनाकर पंचभूसंस्कार करके हवन किया जा सकता है। इस प्रकार इस प्रकरण के अध्ययन से कुण्ड निर्माण संबंधी ज्ञान आपका प्रगाढ़ हो जायेगा।

1.4.1-चतुरस्रादि कुण्ड निर्माण विधान-

इससे पूर्व के प्रकरण में आप अच्छी तरह जान चुके हैं कि किस कुण्ड का निर्माण किस दिशा में करना चाहिये। साथ ही साथ आपको यह भी भान हो गया है कि किस कुण्ड का क्या फल होता है। अब हम इन कुण्डों को कैसे बनाते हैं इसका विचार करने जा रहे हैं।

चतुरस्र कुण्ड निर्माण विधान-

द्विघ्नं व्यासं तुर्यचिन्हं सपाशं सूत्रं शंकौ पश्चिमे पूर्वगेपि।

दत्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्यं स्यादेवं वा वेदकोणं समानम्।।

अर्थात् एक हाथ के व्यास को दुगूना करने पर यानी जितने व्यास का कुण्ड बनाना हो उसका दुगूना कर पाश के चार चिन्ह बनाना चाहिये। उसके बाद दोनों पाशों को पूर्व एवं पश्चिम की कील में फंसाकर दोनों की चतुर्थांश गांठ को पकड़कर अग्नि तथा नैर्ऋत्य की तरफ खीचें। उसी प्रकार वायव्य तथा ईशान कोण की ओर भी खीचें तो चतुरस्र कुण्ड सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार सभी प्रकार के कुण्डों में सबसे पहले चतुरस्र का क्षेत्र निर्धारित करना चाहिये। इसी के आधार पर अन्य कुण्ड बनाये जा सकते हैं।

योनिकुण्ड निर्माण विधान-

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान् संवर्ध्य च स्वीयरदांश युक्तान्।
कर्णांघ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डं प्रत्यंकुरो अंकाद् गुणतो भगाभम्।।

अर्थात् प्रकृतक्षेत्र का चौबीस भाग कर उसके पांच भाग को ग्रहण करें। और उसको बत्तीसवां हिस्सा से युक्त करने पर पांच अंगुल एक यव दो यूका हुआ। इतनें को प्रकृतक्षेत्र के मध्य में आगे बढ़ावे और पीछे के दोनों भाग चतुरस्र में चारों कोण से रेखा देकर कर्णांघ्रि में परकाल रखकर दो आधार वृत्त तैयार करें। पार्श्व से आगे चिन्ह से रेखा देने पर शुद्ध योनि कुण्ड होता है।

अर्धचन्द्रकुण्ड निर्माण विधान-

स्वशतांशयुतेषु भागहीनः स्वधरित्रिमितकर्कटेन लब्ध्यात्।
कृतवृत्तदले अग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधु सिद्ध्यै।।

अर्थात् प्रकृतक्षेत्र का पांचवां अंश लेकर उसमें शतांश को युत करने पर 4 अंगुल, 6 यव, 6 यूका, 2 लिक्षा, 1 बालाग्र को 24 अंगुल के क्षेत्र में से घटाने पर 19 अंगुल, 1यव, 1 यूका, 6 लिक्षा, 4 बालाग्र इतनें से चतुरस्र के मध्य में परकाल रखकर वृत्त का आधा भाग खीचें। वृत्तार्ध के आगे सूत्र देने पर अर्धचन्द्र कुण्ड सिद्ध होता है।

त्रिकोण एवं वृत्त कुण्ड निर्माण विधान-

वह्न्यंशं पुरतो निधाय चपुनः श्रोण्यश्चतुर्थांशकः।
चिन्हेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्यस्त्रिकष्टोज्झितम्।
विश्वांशैः स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते।
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्यात् वृत्तसंज्ञं शुभम्।।

अर्थात् प्रकृति क्षेत्र का 24 हिस्सा करें, उसमें से तृतीयांश अंगुल लेकर प्रकृत क्षेत्र जो चतुरस्र उसमें आगे पूर्व की तरफ बढ़ावें। 24 का चौथा हिस्सा छः अंगुल चतुरस्र की दोनों श्रेणी में दक्षिण उत्तर की तरफ बढ़ावे। बाद में तीनों चिन्ह से मिलकर सूत्र देने से त्रिकोण कुण्ड सिद्ध होता है। वृत्त कुण्ड हेतु प्रकृत क्षेत्र को चौबीस भाग करके उसमें 24 अंगुल लेवें। उसमें से तेरह अंगुल की अपने चौबीसवें हिस्से के सहित हो तब चतुरस्र के मध्य में परकाल रखकर वृत्त बनाने से वृत्त कुण्ड होता है।

षट्कोण कुण्ड निर्माण विधान-

भक्तेक्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तै।
व्यासार्द्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे चेन्दुदिक्तः।
षट् चिन्हेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकं तु हित्वा।
नाशे सन्ध्यर्तुदोषामपि च वृत्तिकृतर्नेत्ररम्यं षडस्रम्।

अर्थात् प्रकृत क्षेत्र 24 अंगुल में से 18 अंगुल लेवें। उस 18 अंगुल का 72वां हिस्सा युक्त करना हो तो 2 यव हुआ। अर्थात् 18 अंगुल 2 यव के परकाल से उत्तर तरफ से वृत्त करना चाहिये। उसी परकाल से वृत्त में 6 चिन्ह करना चाहिये। एक - एक चिन्ह को छोड़कर तीसरे चिन्ह पर सूत्र देने से और सब सन्धि की रेखा को मिटाने से षट्कोण सिद्ध होता है।

पद्मकुण्ड निर्माण विधान-

अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके तत्रादिमं कर्णिका।
युग्मे षोडशके पराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते।
भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटे अष्टौ छदाः।
सर्वां तां खनकर्णिकां त्यज निजायामोच्चकां स्यात्कजम्।।

अर्थात् प्रकृत क्षेत्र 24 के अष्टमांश से एक-एक वृत्त में अष्टमांश बढ़ा - बढ़ा कर पांच वृत्त बनावें। परन्तु पांचवें वृत्त में वह अष्टमांश अपने 38 वें हिस्से से हीन करके उस अष्टमांश के व्यासार्ध से 2 अंगुल, 6 यव, 2 यूका, 1 लिक्षा, 2 बालाग्र से पांचवां वृत्त करें। पहला वृत्त 3 अंगुल, दूसरा वृत्त 6 अंगुल, तीसरा वृत्त 9 अंगुल, चौथा वृत्त 12 अंगुल, पांचवां वृत्त 14 अंगुल, 6 यव, 2 यूका, 1 लिक्षा, 2 बालाग्र के परकाल से करके अन्तिम वृत्त में 16 चिन्ह करें। दिशा विदिशा एवं विदिशा दिशा के बीच में पांचवें चिन्ह पर परकाल रखकर दिशा विदिशा में आठ पत्र करें। पत्र के मध्य तथा केसर को छोड़कर कर्णिका के मध्य में रखें तो स्वच्छ पद्मकुण्ड होता है।

अष्टकोण कुण्ड निर्माण विधान-

क्षेत्रे जिनांशेगजचन्द्रभागैः स्वाश्लिष्टभागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्विशोरन्तरतो अष्टसूतैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम्।।

अर्थात् प्रकृत क्षेत्र 24 उसमें से 10 हिस्सों को अपने अट्ठाइसवें हिस्से के सहित लेवें तो 18 अंगुल, 5 यव, 1यूका, 1लिक्षा, एक बालाग्र हुआ। इतने के व्यासार्द्ध को परकाल से वृत्त करें। और दिशा-विदिशा के मध्य में आठ चिन्ह करें। बाद में दो-दो चिन्ह के मध्य में छोड़कर तीसरे चिन्हों को मिलाकर आठ चिन्ह देवें। इस प्रकार अष्टास्र कुण्ड तैयार होता है।

स्थण्डिल निर्माण विधान-

हवन करने के लिये दो ही स्थान कर्मकाण्ड में निर्धारित किये गये हैं जिसमें एक है कुण्ड एवं दूसरा है स्थण्डिल । कुण्डों के बारे में आप जान चुके हैं अतः स्थण्डिल का विचार यहां किया जा रहा है।

अथवापि मृदा सुवर्णभाषा करमानं चतुरंगुलोच्चमल्पे।

हवने विदधीत वांगुलोच्चं विबुधः स्थण्डिलमेव वेदकोणम्।

सुवर्ण जैसी मृत्तिका लेकर 1 हाथ लम्बी, 1 हाथ चौड़ी , चार अंगुल ऊंची या 1 अंगुल ऊंची चौकोर वेदी बनावें। थोड़े हवन में या स्थण्डिल में भी योनी व मेखला करना किसी आचार्य के मत से प्राप्त होता है। इसका प्रमाण देते हुये कहा गया है कि- सूतसंहितायाम्-

स्थण्डिले मेखला कार्या कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः।
योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तत्रवेदिभिः।।
समेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्तं होमकर्मणि।
कण्ठं तु वर्जयस्तत्र खाते तत्र कण्ठः प्रकीर्तितः।

अर्थात् स्थण्डिल में भी मेखला करना चाहिये। उसकी आकृति कुण्डोक्त स्थण्डिल आकृति के समान है। कुण्ड के समान योनि भी बनाने का विधान है। मेखला सहित स्थण्डिल होम में प्रशस्त माना गया है। कण्ठ को वर्जित करते हुये खात में उसको विहित किया गया है।

इस प्रकार यथोक्त रीति से कुण्ड या स्थण्डिल का निर्माण करके पंचभूसंस्कार करना चाहिये।

इस प्रकार कुण्ड निर्माण विधान एवं स्थण्डिल निर्माण विधान के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- द्विघ्नं .... तुर्यचिन्हं सपाशं ।

क- व्यासं, ख- पश्चिमे, ग- पाशतुर्यं, घ- वेदकोणं।

प्रश्न 2- सूत्रं शंकौ .... पूर्वगेपि।

क- व्यासं, ख- पश्चिमे, ग- पाशतुर्यं, घ- वेदकोणं।

प्रश्न 3- दत्वा कर्षेत्कोणयोः .... ।

क- व्यासं, ख- पश्चिमे, ग- पाशतुर्यं, घ- वेदकोणं।

प्रश्न 4- स्यादेवं वा .... समानम्।।

क- व्यासं, ख- पश्चिमे, ग- पाशतुर्यं, घ- वेदकोणं।

प्रश्न 5-अथवापि मृदा सुवर्णभाषा ....चतुरंगुलोच्चमल्पे।

क- करमानं, ख- स्थण्डिलमेव, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

प्रश्न 6- हवने विदधीत वांगुलोच्चं विबुधः .... वेदकोणम्।

क- करमानं, ख- स्थण्डिलमेव, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

प्रश्न 7- स्थण्डिले .... कार्या कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः।

क- करमानं, ख- स्थण्डिलमेव, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

प्रश्न 8- .... प्रकर्तव्या कुण्डवत्तत्रवेदिभिः।।

क- करमानं, ख- स्थण्डिलमेव, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

प्रश्न 9- समेखलं .... तु प्रशस्तं होमकर्मणि।

क- करमानं, ख- स्थण्डिलं, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

प्रश्न 10-........... तु वर्जयस्तत्र खाते तत्र कण्ठः प्रकीर्तितः।

क- कण्ठं, ख- स्थण्डिलमेव, ग- मेखला, घ- योनिस्तत्र।

1.4.2- पंचभूसंस्कारार्थ कुशों का महत्त्व - पंच भू संस्कार कुशों से करने का विधान है। इस प्रकरण में अपको कुशों के महत्त्व और उसके विकल्पों पर विचार किया जायेगा। इसके ज्ञान से आप कुशों के साथ या अभाव में विकल्प के द्वारा पंच भू संस्कार कर सकते हैं। लिखा गया है कि-

कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया।

उदकेन विना पूजा विना दर्भेण याक्रिया।

आज्येन च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते। यज्ञ मीमांसा पृष्ठ 371.

अर्थात् कुश के बिना जो पूजा होती है वह निष्फल कही गयी है। कहा गया है कि कुश के बिना जो यज्ञादि क्रिया है, जल के बिना जो पूजा है एवं घृत के बिना जो होम है वह कदापि फलप्रद नही होता है।

बिना दर्भेण यत्स्नानं यच्च दानं विनोदकम्।

असंख्यातं च यज्जप्यं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।। प्रयोग पारिजात।

अर्थात् बिना दर्भ के स्नान, जल के बिना दान, संख्या के विना किया हुआ जप निष्फल हो जाता है।

बिना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।

राक्षसं तद्भवेत् सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्।।

कुश एवं यज्ञोपवीत के बिना किया हुआ समस्त कर्म राक्षस कहलाता है। और वह इहलोक में फलप्रद नही होता है।

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः।

कुशाग्रे शंकरो देवः त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।।

अर्थात् कुश के मूल में ब्रह्मा, कुश के मध्य में जनार्दन और कुश के अग्र भाग में शंकर इन तीनों देवताओं का निवास रहता है।

कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मंगलस्याभिवृद्धये।

मांगलिक कार्यों की अभिवृद्धि के लिये कुश के स्थान पर दूर्वा का प्रयोग किया जा सकता है।

कुश काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणिव्रीहयः।

बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्तप्रकीकर्तताः।।

अर्थात् कुशा, काशा, दूर्वा, जौ का पत्ता, धान का पत्ता, बल्वज और कमल ये सात प्रकार के कुश कहे गये है।

इस प्रकार कुशा के महत्त्व एवं उसके विकल्प के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- कुशेन रहिता पूजा ....कथिता मया।

क- विफला, ख- दर्भेण, ग- आज्येन, ध- दानं।

प्रश्न 2 -उदकेन विना पूजा विना .... याक्रिया।

क- विफला, ख- दर्भेण, ग- आज्येन, ध- दानं।

प्रश्न 3-.......... च विना होमः फलं दास्यन्ति नैव ते।

क- विफला, ख- दर्भेण, ग- आज्येन, ध- दानं।

प्रश्न 4- बिना दर्भेण यत्स्नानं यच्च .... विनोदकम्।

क- विफला, ख- दर्भेण, ग- आज्येन, ध- दानं।

प्रश्न 5- असंख्यातं च .... तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध- ब्रह्मा।

प्रश्न 6- बिना .... यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध- ब्रह्मा।

प्रश्न 7-.............तद्भवेत् सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्।।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध- ब्रह्मा।

प्रश्न 8- कुशमूले स्थितो ....।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध- ब्रह्मा।

प्रश्न 9- कुशमध्ये ....।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध-जनार्दनः।

प्रश्न 10-कुशाग्रे .... देवः त्रयो देवाः कुशे स्थिताः।।

क-यज्जप्यं, ख- दर्भेण, ग- राक्षसं, ध- शंकरो।

1.4.3 पंच भू संस्कार-

इसमें आप पंच भू संस्कार के बारे में जानेगें। जिस भूमि पर अग्नि स्थापन किया जाना है उस भूमि के पांच संस्कार को पंच भू संस्कार कहते हैं। वे पंच भू संस्कार अधोलिखित हैं-

परिसमुह्योपलिप्योल्लिख्योद्धृत्याभ्युक्ष्येतिपंचभूसंस्काराः।

तत्र क्रमः- प्राङ्मुखोपविश्य आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ स्मृत्वा अमुक् कर्मांगतया पंचभूसंस्कारान् करिष्ये इति संकल्पं कुर्यात्। तथा च संकल्प एव मुख्य स्यात् स्नानदानादिकर्मसु। कर्म संकल्परहितं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्। ततः शुद्धायां भूमौ चतुर्विंशति अंगुलायतं स्थण्डिलं परिकल्पयेत्। तथा चोक्तम् स्थण्डिलं मृन्मयं कार्यं चतुर्विंशांगुलायतम्। द्विरंगुलं भवेत्कण्ठं व्यासस्य वचनं यथा। कर्मप्रदीपे विषेषः अष्टांगुलसमुत्सेधं चतुर्विंशांगुलायतम्। पन्नगास्तत्र सीदन्ति तदर्थं स्थण्डिलं भवेत्।

परिसमुह्यादि से क्वचिद्धोमः तक सूत्र पारस्कर गृह्यसूत्र में पाया जाता है। पारस्कर गृह्योक्त कुशकण्डिका सूत्रों के ऊपर हरिहर भाष्य सहित विभिन्न व्याख्यायें लिखी गयी है। उनके अनुसार कर्ता स्नानादि करके शुद्ध होकर सफेद वस्त्र धारण करके उत्तरीय पूर्वक कर्म स्थान में आकर वारणादि यज्ञीय वृक्षों के आसन पर प्रागग्र या उदगग्र कुशों को बिछाकर पूर्व मुख बैठकर आचमन प्राणायाम पूर्वक देशकाल का स्मरण करके अमुक कर्म के लिये पंचभूसंस्कार कर रहा हूँ ऐसा संकल्प करे। कहा गया है कि स्नान दानादि कर्मों में संकल्प ही मुख्य है। संकल्प रहित सारे कर्म निष्फल हो जाते है। शुद्ध भूमि पर चौबीस अंगुल के क्षेत्र में स्थण्डिल की परिकल्पना करनी चाहिये। कहा गया है- चौबीस अंगुल वाला स्थण्डिल मिट्टी का बनाना चाहिये। व्यास का वचन है कि दो अंगुल का कण्ठ होता है। कर्मप्रदीप में लिखा है आठ अंगुल ऊँचा एवं चौबीस अंगुल आयतन वाला स्थण्डिल बनावें। ऐसा नही करने पर पन्नग लोग दुखी होते हैं।

1- परिसमूह्य इति सूत्रे त्रिभिर्दर्भैः पांसूनपसार्य इति हरिहरभाष्यम्। वादरायणोऽपि कृमि कीट पतंगाश्च विचरन्ति महीतले। तेषां संरक्षणार्थाय परिसमूह्येति कथ्यते। दर्भसंख्या- धृत्वांगुष्ठकनिष्ठाभ्यां मूलैः साग्रैः कुशत्रयम्। तदग्रैस्तस्य रजसां पूर्वस्यामपसर्पणम्।

2-उपलिप्य इति सूत्रम्। गोमयोदकेन इति हरिहरः पुरा इन्द्रेण बज्रेण हतो वृत्रो महासुरः। व्यापिता मेदसा पृथ्वी तदर्थमुपलेपनम्। गोमये वसते लक्ष्मीः पवित्रा सर्वमंगला। यज्ञार्थे संस्कृता भूमिः

तदर्थमुपलेपनम्। गोमयलक्षणम् रुग्णा वृद्धा प्रसूता च बन्ध्या सन्धिन्यमेध्यभुक्। मृतवत्सा च नैतासां ग्राह्यं मुत्रं सकृत्पयः। स्वच्छं तु गोमयं ग्राह्यं स्थाने च पतिते शुचौ। उपर्यधः परित्यज्य आर्द्रं जन्तु विवर्जितम्।

3-त्रिरुल्लिख्य इति सूत्रम् त्रिः खादिरेण हस्तमात्रेण खंगाकृतिनास्फ्येन उल्लिख्य प्रागग्रा उदक् संस्थाः स्थण्डिलपरिमाणास्तिस्रो रेखाः कृत्वा इति हरिहरः।कल्पवल्यामपि उल्लेखनं ततः कुर्यादस्थिकण्टकमेव च। तेषामुद्धरणार्थाय उल्लेखः कथितो बुधैः। रेखात्रयमुदक्संस्थं प्रागग्रमस्थिण्डलावधि। अथवा तत्र कुर्वीत द्वादशांगुलमानतः।

फलेन फलमाप्नोति पुष्पेण श्रियमृच्छति। पत्रेण धनलाभं च दीर्घमायुः कुशेन तु।

भवेन्नखेन कुनखी कीलेन व्याधिमृच्छति। भस्मना हुतनाशः स्यान्मृन्मयेन कलिधर्वम्।

तस्मात् फलेन पत्रेण कुशेन कुसुमेन वा। प्राग्लेखोल्लेखने विप्र सिद्धिः कर्मसु सर्वदा।

प्रथमा सात्विकी ज्ञेया द्वितीया राजसी मता। तृतीया तामसी तासां देवा ब्रह्माच्युतेश्वराः।

4-उद्धृत्य इति सूत्रम्। अनामिकांगुष्ठाभ्यामग्निकार्ये तथोत्करम्। तेषां संरक्षणार्थाय उद्धृत्य कथितं बुधैः।

5-अभ्युक्ष्य इति सूत्रम्। मणिकाद्भिरभ्युक्ष्याभिषिच्य इति हरिहरः। कारिकायामपि आपो देवगणाः सर्वे आपः पितृगणाः स्मृताः। तेनैवाभ्युक्षणं प्रोक्तमृषिभिर्वेदवादिभिः। संग्रहे विशेषः उत्तानेन तु हस्तेन कर्त्तव्यं प्रोक्षणं बुधैः अवाचीनेन हस्तेन कर्तव्यं तदवेक्षणम्। मुष्टिकृतेन हस्तेन चाभ्युक्षणमुदाहृतम्। एते पंचभूसंस्काराः।

1-अग्निकार्य में परिसमूहनादि विचार- पंचभूसंस्कार का पहला सूत्र परिसमूह्य है। इस सन्दर्भ में हरिहर भाष्य में लिखा गया है कि तीन कुशों से स्थण्डिल के धूल को झाड़ना। कारण बताते हुये आचार्य वादरायण जी ने कहा है कि कृमी, कीट, पतंग इत्यादि इस पृथ्वी पर विचरते रहते हैं उनके संरक्षण के लिये परसमूहन कहा गया है। दर्भ की संख्या कितनी होनी चाहिये इस पर कहा गया अंगुष्ठ एवं कनिष्ठा अंगुलि से तीन कुशाओं के मूल को पकड़कर अग्रभाग से झाड़ना चाहिये। धूल को पूर्व की ओर सरकाना चाहिये।

2-उपलिप्य इस सूत्र की व्याख्या में हरिहर जी गोमय से उपलेपन का विधान करते हैं। पूर्व काल में इन्द्र के वज्र से वृत्र नामक महा असुर मारा गया। उसके मेद से यह पृथ्वी व्याप्त हो गयी इसलिये उपलेपन किया जाता है। गोबर में लक्ष्मी का वास होता है, वह पवित्र एवं मंगल करने वाला होता है। यज्ञीय भूमि के संस्कारार्थ उपलेपन किया जाता है। गोमय का लक्षण करते हुये कहा गया है कि रोगी, वृद्ध, सद्यः व्यायी हुयी, बन्ध्या, गाभिन, अपवित्र पदार्थों का भक्षण करने वाली एवं मृतवत्सा का गोमय, गोमूत्र, गोदुग्ध नही ग्रहण करना चाहिये। स्वच्छ स्थान में स्वच्छ गोमय ऊपर एवं नीचे के भाग तथा जल भाग को छोड़कर गोमय स्वीकार करना चाहिये।

3-त्रिरुल्लिख्य इस सूत्र की व्याख्या में हस्त मात्र खदिर के स्फ्य से प्रागग्र करके उदक् संस्थित तीन रेखा स्थण्डिल के परिमाण के बराबर खीचनी चाहिये। कल्पवल्ली नामक ग्रन्थ में वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि अस्थिकण्टक के उद्धरणार्थ उल्लेखन करना चाहिये। इसमें तीन रेखा उदक्

संस्थ प्रागग्र स्थण्डिलावधि तक होनी चाहिये या बारह अंगुल के मान से रेखा करनी चाहिये। फल से फल, पुष्प से श्रिय, पत्र से धन लाभ एवं कुश से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। नख से रेखा करने पर कुनखी, कील से करने पर व्याधि, भस्म से हुतनाश एवं मिट्टी से कलि की प्रप्ति होती है। इसलिये फल से, पत्र से, कुश से एवं पुष्प से उल्लेखन कर्म विप्र को कर्मों में सिद्धि प्रदान करता है। उल्लेखन में जो तीन रेखायें की जाती हैं उनमें पहली रेखा सात्विकी, दूसरी रेखा राजसी एवं तीसरी रेखा तामसी मानी जाती है। इनके ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर क्रमशः देवता बतलाये गये हैं।

4-उद्धृत्य इस सूत्र में अनामिका एवं अंगुष्ठ अंगुलियों की सहायता से रेखाओं से किंचिद् पांसु यानी धूल लेकर उत्कर यानी कुण्ड या स्थण्डिल से बाहर कर देना चाहिये। कारिका में लिखा गया है कि आकाशपथगामी पिशाचादि जो पृथ्वी तल पर विचरण करते हैं उनसे संरक्षण के लिये उद्धृत्य कहा गया है।

5- पॉचवा सूत्र अभ्युक्ष्य है इसके विषय में हरिहर जी व्याख्या करते है कि अंजली में जल भरकर अभ्युक्षण करना चाहिये। कारिका में आया है कि जल में देवगण व पितृगण होते हैं इसलिये जल से अभ्युक्षण करना चाहिये। उत्तान हस्त से अभिषिंचन प्रोक्षण, अधो हस्त से अवेक्षण एवं मुष्टिकृद्धस्त से अभ्युक्षण किया जाता है। ये अग्नि स्थापनार्थ स्थण्डिल के किये जाने वाले पाँच भूमि के संस्कार है।

इस प्रकार पंचभूसंस्कार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-फलेन फलमाप्नोति .... श्रियमृच्छति।

क- पुष्पेण, ख- कुशेन, ग- कीलेन, घ- मृन्मयेन।

प्रश्न-2 पत्रेण धनलाभं च दीर्घमायुः .... तु।

क- पुष्पेण, ख- कुशेन, ग- कीलेन, घ- मृन्मयेन।

प्रश्न 3- भवेन्नखेन कुनखी .... व्याधिमृच्छति।

क- पुष्पेण, ख- कुशेन, ग- कीलेन, घ- मृन्मयेन।

प्रश्न 4-भस्मना हुतनाशः स्यान्.............. कलिधर्वम्।

क- पुष्पेण, ख- कुशेन, ग- कीलेन, घ- मृन्मयेन।

प्रश्न 5- तस्मात् फलेन .... कुशेन कुसुमेन वा।

क- पत्रेण, ख- सिद्धिः, ग- राजसी, घ- तामसी।

प्रश्न 6- प्राग्लेखोल्लेखने विप्र .... कर्मसु सर्वदा।

क- पत्रेण, ख- सिद्धिः, ग- राजसी, घ- तामसी।

प्रश्न 7-प्रथमा सात्विकी ज्ञेया द्वितीया ....मता।

क- पत्रेण, ख- सिद्धिः, ग- राजसी, घ- तामसी।

प्रश्न 8- तृतीया .... तासां देवा ब्रह्माच्युतेश्वराः।

क- पत्रेण, ख- सिद्धिः, ग- राजसी, घ- तामसी।

प्रश्न 9- पहला पंचभूसंस्कार है-

क-परिसमुह्य ,ख- उपलिप्य ग-उल्लिख्य, घ-उद्धृत्य।

प्रश्न 9- दूसरा पंचभूसंस्कार है-

क-परिसमुह्य ,ख- उपलिप्य ग-उल्लिख्य, घ-उद्धृत्य।

1.5 सारांश-

इस इकाई में पंच भू संस्कार विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आपने किया । पंचभूसंस्कार के ज्ञान के अभाव में पूर्णिमा आदि के अवसर पर हवन विधियों का आयोजन, विष्णु यज्ञादि अनुष्ठानों के अवसर पर हवनादि का सम्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा ठीक ढंग से नही हो सकता है। क्योकि इसके बिना अग्नि स्थापन ही नही होगा तो हवन कैसे किया जा सकता है।

स्नानादि करके शुद्ध होकर सफेद वस्त्र धारण करके उत्तरीय पूर्वक कर्म स्थान में आकर वारणादि यज्ञीय वृक्षों के आसन पर प्रागग्र या उदगग्र कुशों को बिछाकर पूर्व मुख बैठकर आचमन प्राणायाम पूर्वक देशकाल का स्मरण करके अमुक कर्म के लिये पंचभूसंस्कार कर रहा हूँ ऐसा संकल्प करें। कहा गया है कि स्नान दानादि कर्मों में संकल्प ही मुख्य है। संकल्प रहित सारे कर्म निष्फल हो जाते है। शुद्ध भूमि पर चौबीस अंगुल के क्षेत्र में स्थण्डिल की परिकल्पना करनी चाहिये। कहा गया है- चौबीस अंगुल वाला स्थण्डिल मिट्टी का बनाना चाहिये। व्यास का वचन है कि दो अंगुल का कण्ठ होता है। कर्मप्रदीप में लिखा है आठ अंगुल ऊँचा एवं चौबीस अंगुल आयतन वाला स्थण्डिल बनावें। ऐसा नही करने पर पन्नग लोग दुखी होते हैं। पंचभूसंस्कार का पहला सूत्र परिसमूह्य है। इसमें लिखा गया है कि तीन कुशों से स्थण्डिल के धूल को झाड़ना। कारण बताते हुये आचार्य वादरायण जी ने कहा है कि कृमी, कीट, पतंग इत्यादि इस पृथ्वी पर विचरते रहते हैं उनके संरक्षण के लिये परसमूहन कहा गया है। उपलेपन में विधान करते हैं- पूर्व काल में इन्द्र के वज्र से वृत्र नामक महा असुर मारा गया। उसके मेद से यह पृथ्वी व्याप्त हो गयी इसलिये उपलेपन किया जाता है। गोबर में

लक्ष्मी का वास होता है, वह पवित्र एवं मंगल करने वाला होता है। यज्ञीय भूमि के संस्कारार्थ उपलेपन किया जाता है।

तीसरे संस्कार की व्याख्या में हस्त मात्र खदिर के स्फ्य से प्रागग्र करके उदक् संस्थित तीन रेखा स्थण्डिल के परिमाण के बराबर खीचनी चाहिये। कल्पवल्ली नामक ग्रन्थ में वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि अस्थिकण्टक के उद्धरणार्थ उल्लेखन करना चाहिये। इसमें तीन रेखा उदक् संस्थ प्रागग्र स्थण्डिलावधि तक होनी चाहिये या बारह अंगुल के मान से रेखा करनी चाहिये। फल से फल, पुष्प से श्रिय, पत्र से धन लाभ एवं कुश से दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। नख से रेखा करने पर कुनखी, कील से करने पर व्याधि, भस्म से हुतनाश एवं मिट्टी से कलि की प्रप्ति होती है। इसलिये फल से, पत्र से, कुश से एवं पुष्प से उल्लेखन कर्म विप्र को कर्मों में सिद्धि प्रदान करता है। उद्धृत्य इस सूत्र में अनामिका एवं अंगुष्ठ अंगुलियों की सहायता से रेखाओं से किंचिद् पांसु यानी धूल लेकर उत्कर यानी कुण्ड या स्थण्डिल से बाहर कर देना चाहिये। पॉचवा सूत्र अभ्युक्ष्य है इसके विषय में हरिहर जी व्याख्या करते है कि अंजली में जल भरकर अभ्युक्षण करना चाहिये। कारिका में आया है कि जल में देवगण व पितृगण होते हैं इसलिये जल से अभ्युक्षण करना चाहिये। उत्तान हस्त से अभिषिंचन प्रोक्षण, अधो हस्त से अवेक्षण एवं मुष्टिकृद्धस्त से अभ्युक्षण किया जाता है। ये अग्नि स्थापनार्थ स्थण्डिल के किये जाने वाले पाँच भूमि के संस्कार है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

शुक्ल- सफेद, मृत्स्ना- मिट्टी, ब्राह्मणी - ब्राह्मण वर्ण वाली, सा- वह, प्रकीर्तिता- कही गयी है, क्षत्रिया- क्षत्रिय वर्ण वाली, रक्तमृत्स्ना- लाल मिट्टी, च- और, हरिद्वैश्या- हरे रंग की वैश्य वर्ण की, कृष्णा- काली, चतुर्धा- चार प्रकार की, भूः- भूमि, कुशोपेता- कुश सहिता, सर्वतृणाकुला-सब प्रकार के तृणों से युक्त भूमि , सुगन्धा- सुन्दर गन्ध वाली, रक्त गन्धा- खून के गन्ध वाली, मधुगन्धा- मधु के गन्ध वाली, मद्यगन्धा- मदिरा की गन्ध वाली, अम्ला- अम्लयुक्ता, तिक्ता- तीखी, पूर्वप्लवा- पूर्व की ओर झुकी हुयी, वृद्धिकरी- वृद्धि करने वाली, धनदा- धन देने वाली, अर्थक्षयकरी-अर्थ क्षय करने वाली, विद्यात्- जानी जाती है, पश्चिमप्लवा- पश्चिम की ओर ठाल वाली, दक्षिणप्लवा- दक्षिण की ओर ठाल वाली, मृत्तिदा-मिट्टी देने वाली, नवकुण्डी- नव कुण्ड, पंचकुण्डी- पांच कुण्ड, प्राच्या- पूर्व, चतुष्कोण- चतुरस्र, भग- योनि, इन्दुखण्ड- अर्धचण्ड, त्रिकोण- तीन कोना, अंगभुजा- छ कोण, अम्बुज- कमल, अष्टास्त्र- अष्टास्र, शक्रेश्वर-इन्द्र, शत्रुनाशः- शत्रु का नाश, खाताधिके- गड्ढा अधिक होना, भवेद्रोगी- रोगी होता है, हीने - गड्ढा से हीन , धेनु क्षय- गाय की हानि, वक्रकुण्डे- टेढ़ा कुण्ड,सन्तापा- दुख, छिन्नमेखले- टूटी हुयी मेखला वाला, मेखला रहिते - मेखला से हीन, शोक- दुख, अभ्यधिके - अधिक, वित्तसंक्षयः- धनहानि, भार्यादिनाशनं - स्त्री विनाश, प्रोक्तं- कहा गया है, कुण्डं योन्याविनाकृते- योनि के बिना कुण्ड करने से, कण्ठरहितं - कण्ठ से रहित, द्विघ्नं -

दुगूना, व्यासं - व्यास, तुर्यचिन्हं - चार चिन्ह, सपाशं- फन्दा सहित, सूत्रं - सूता, शंकौ - शंकु में, पश्चिमे- पश्चिम में, पूर्वगेपि- पूर्व से भी, दत्वा- देकर, कर्षेत्कोणयोः- कोणों में खीचें, पाशतुर्यं -चार फन्दे, वेदकोणं - चतुष्कोण, समानम्- समान, क्षेत्रे - क्षेत्र, पुरतः - पूर्व से, शरांशान् - पंचमांश, रदांश- चौबीसवां अंश, युक्तान्- युक्त, लिखेत्- रेखा आरेख, शतांश- सौंवां अंश, अग्रतः- आगे से, वह्न्यंशं - त्र्यंश, पुरतो - सामने, चतुर्थांशकः-चौथा अंश, अष्टांशा- अष्टमांश, आदिमं -पहला, कर्णिका- कोणों, युग्मे - जोड़ा, षोडशधा - सोलह भाग, शर- पांच, जिनांशे- चौबीसवां अंश, गज- आठ, चन्द्रभागः- एक भाग, विदिग्- कोण, मृदा- मिट्टी, करमानं - एक हाथ के मान के बराबर, चतुरंगुलोच्च- चार अंगुल उचाई, हवने - हवन में, उदकेन - जल से, दर्भेण- दर्भ से, आज्येन- घी से, विनोदकम्- बिना जल के, प्राङ्मुखोपविश्य - पूर्व मुख बैठकर।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

1.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

1.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-क।

1.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-क।

1.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-घ ।

1.4.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-कुण्डमण्डप सिद्धि।

2-वृह्द वास्तु मालाः।

3-वास्तुराज वल्लभ।

4-शब्दकल्पद्रुमः।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-नित्य कर्म पूजा प्रकाश।

7-पूजन- विधान।

8-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

1.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- यज्ञ मीमांसा।

2- प्रयोग पारिजात।

3- अनुष्ठान प्रकाश।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- भूमि का परिचय बतलाइये।

2- चतुरस्र का स्वरूप बतलाइये।

3- त्रिकोण कुण्ड का परिचय लिखिये।

4- अर्धचन्द्र कुण्ड निर्माण की विधि लिखिये।

5- वृत्त कुण्ड निर्माण की विधि लिखिये।

6- षडस्र कुण्ड निर्माण की विधि लिखिये।

7- पद्म कुण्ड की विधि लिखिये।

8- अष्टास्र कुण्ड निर्माण की विधि लिखिये।

9- कुशे का महत्त्व लिखिये ।

10- पंच भू संस्कार लिखिये।

इकाई – 2 अग्नि स्थापन

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अग्नियों के नाम एवं अग्नि जिह्वाओं के नाम का विचार

2.3.1 कर्म विशेष में अग्नियों के नाम

2.3.2 अग्नि जिह्वाओं के नाम

2.4 अग्निस्थापन की विधि

2.4.1 अग्निप्रज्वालनविचारः

2.4.2 अग्नि का स्वरूप

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में अग्निस्थापन की प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कर्मकाण्ड में अनुष्ठानादि की सम्पन्नता हेतु हवन का विधान सर्वविदित है। हवन के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नही हो पाती है। हवन कार्य का प्रारभ अग्नि स्थापन से होता है । यदि यह कहा जाय कि अग्नि स्थापन के अभाव में हवन कार्य हो ही नही सकता तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

वास्तविक रूप से देखा जाय तो अग्नि स्थापन का मतलब है अग्नि की स्थापना। अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि अग्नि को कैसे स्थापित करना चाहिये? उत्तर में आता है कि जिस भूमि पर अग्नि स्थापन करना हो उस भूमि के पांच संस्कार किये जाते हैं तदनन्तर अग्नि स्थापन किया जाता हैं। अग्नि स्थापन की विधि को बिना जाने यदि कोई अग्नि स्थापन करता है तो उसे उसके किये गये हवनीय कृत्य के फल की प्राप्ति नही होती है। हालांकि शास्त्रों में अलग- अलग कार्यों के लिये अलग- अलग अग्नियों का विधान पाया जाता है, जिसका ज्ञान स्थापन के समय अवश्य होना चाहिये, क्योंकि जब हम अग्नि स्थापन करते हैं तो उस समय संकल्प करते हैं कि अमुक नाम की अग्नि को अमुक कार्य की सिद्धि हेतु स्थापित करने जा रहा हूँ । अग्नि को स्वाभिमुख स्थापित करने का विधान है। कई लोग स्वप्रतिकूलाभिमुख ही अग्नि स्थापित करके अनुष्ठान करते हैं जो उचित नही है। कर्मकाण्ड के प्रमुख महत्वपर्ण कार्यों में अग्नि का स्थापन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है , इसलिये अग्नि स्थापन की सम्यक् विधि का ज्ञान आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से आप अग्नि स्थापन के विचार करने की विधि एवं सम्पादन करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे यज्ञादि कार्यों या अनुष्ठानादि के अवसर किये जाने वाले अग्नि स्थापन विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

2.2 उद्देश्य-

अब अग्नि स्थापन विचार एवं सम्पादन की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

-कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

-अग्नि स्थापन के सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

- अग्नि स्थापन के सम्पादन में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

2.3. अग्नियों के नाम एवं अग्नि जिह्वाओं के नाम का विचार -

अग्नि स्थापन में सर्व प्रथम अग्नि के नामों को जानना अति आवश्यक है। इसके ज्ञान से आपको यह पता चल जायेगा कि किस काम के लिये किस नाम की अग्नि का ध्यान , आवाहन या पूजन किया जायेगा। इसके साथ ही साथ अग्नि जिह्वाओं के बारे में पुष्ट ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। जो अधोलिखित है-

2.3.1-कर्म विशेष में अग्नियों के नाम-

पावको लौकिके अग्निः प्रथमः संप्रकीर्तितः। अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने विधीयते।

पुंसवने चन्द्र नामा शुभ कर्मणि शोभनः। सीमन्ते मंगलो नाम प्रगल्भो जात कर्मणि।

नाम्नि वै पार्थिवो ह्यग्निः प्राशाने तु शुचिः स्मृतः।

सभ्यो नाम स चौले तु व्रतादेशे समुद्भवः। गोदानेसूर्यनामाग्निर्विवाहे योजको मतः।

आवसथ्ये द्विजो ज्ञेयो वैश्वदेवे तु रुक्मकः। प्रायश्चित्ते विटश्चैव पाकयज्ञेषु पावकः।

देवानां हव्यवाहश्च पितृणां कव्यवाहनः। शान्तिके वरदः प्रोक्तः पौष्टिके बलबर्धनः।

पूर्णाहुत्यां मृडो नाम क्रोधाग्निश्चाभिचारिके। वश्यार्थे कामदो नाम वनदाहे तु दूषकः।

कुक्षौ तु जाठरो ज्ञेयः क्रव्यादौ मृतदाहके। वह्निनामा लक्षहोमे कोटिहोमे हुताशनः।

वृषोत्सर्गे ध्वरो नाम शुचये ब्राह्मणः स्मृतः। समुद्रे वाडवो ह्यग्निः क्षये संवर्तकस्तथा।

ब्रह्मा वै गार्हपत्यश्च ईश्वरो दक्षिणस्तथा। विष्णुरावहनीयः स्यात् अग्निहोत्रे त्रयोग्नयः

ज्ञात्वैवमग्निनामानि गृह्यकर्म समाचरेत्।

ग्रहहोमे विशेषः आदित्ये कपिलो नाम पिंगलः सोम उच्यते। धूमकेतुस्तथा भौमे जाठरोऽग्निर्बुधे स्मृतः।

गुरो चैव शिखी नाम शुक्रे भवति हाटकः। शनैश्चरे भवति महातेजा राहुकेत्वोर्हुताशनः।

-कर्म विशेष के अनुसार अग्नियों के नाम इस प्रकार है। लौकिक अग्नियों में पावक नाम की अग्नि को प्रथम माना गया है। गर्भाधान संस्कार में मारुत नाम के अग्नि का आवाहन होता है। पुंसवन में पावमान, सीमन्त में मंगल, जातकर्म में प्रबल, अन्नप्राशन में पार्थिव चौल संस्कार में सभ्य, उपनयन में समुद्भव, गोदान में सूर्य, विवाह में योजक, वैश्वदेव में रुक्मक, प्रायश्चित्त में विट, पाकयज्ञों में पावक, देवों को हव्यवाहन, पितरों को कव्यवाहन, शान्तिक कार्यों में वरद, पौष्टिक कार्यों में बलबर्धन, पूर्णाहुति में मृड, अभिचारि कर्मो में क्रोधाग्नि, वश्यार्थ कामद, वनदाह में दूषक, कुक्षि में

जठर, मृतदाह कार्य में क्रव्याद, लक्षहोम या कोटि होम में हुताशन, वृषोत्सर्ग में अध्वर, समुद्र में वाडव, क्षय में संवर्तक अग्नियों के नाम है। गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि एवं आहवनीयाग्नि ये तीन अग्निहोत्र की अग्नियों को क्रमशः ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु के रूप में जाना जाता है। अग्नियों के नाम जानकर के ही गृह्य कर्म का आचरण करना चाहिये। ग्रहों के हवन में भी अग्नियों के नाम क्रमशः लिखे गये हैं। सूर्य हेतु कपिल, चन्द्रमा हेतु पिंगल, भौम हेतु धूमकेतु, बुध हेतु जाठर, गुरु के लिये शिखी, शुक्र के लिये हाटक, शनि के लिये महातेजा तथा राहु एवं केतु के लिये हुताशन अग्नियों के नाम बतलाये गये है।

इस प्रकार अग्नि के नामों के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-पावको लौकिके अग्निः प्रथमः संप्रकीर्तितः। अग्निस्तु .... नाम गर्भाधाने विधीयते।

क- मारुतो, ख- प्रगल्भो, ग- पार्थिवो, घ- सभ्यो।

प्रश्न 2- पुंसवने चन्द्र नामा शुभ कर्मणि शोभनः। सीमन्ते मंगलो नाम .... जात कर्मणि।

क- मारुतो, ख- प्रगल्भो, ग- पार्थिवो, घ- सभ्यो।

प्रश्न 3- नाम्नि वै .... ह्यग्निः प्राशने तु शुचिः स्मृतः।

क- मारुतो, ख- प्रगल्भो, ग- पार्थिवो, घ- सभ्यो।

प्रश्न 4- .... नाम स चौले तु व्रतादेशे समुद्भवः। गोदानेसूर्यनामाग्निर्विवाहे योजको मतः।

क- मारुतो, ख- प्रगल्भो, ग- पार्थिवो, घ- सभ्यो।

प्रश्न 5- आवसथ्ये द्विजो ज्ञेयो वैश्वदेवे तु रुक्मकः। प्रायश्चित्ते विटश्चैव पाकयज्ञेषु ....।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- वश्यार्थे, घ- कोटिहोमे।

प्रश्न 6-देवानां हव्यवाहश्च पितृणां कव्यवाहनः। शान्तिके .... प्रोक्तः पौष्टिके बलबर्धनः।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- वश्यार्थे, घ- कोटिहोमे।

प्रश्न 7- पूर्णाहुत्यां मृडो नाम क्रोधाग्निश्चाभिचारिके। .... कामदो नाम वनदाहे तु दूषकः।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- वश्यार्थे, घ- कोटिहोमे।

प्रश्न 8- कुक्षौ तु जाठरो ज्ञेयः क्रव्यादौ मृतदाहके। वह्निनामा लक्षहोमे .... हुताशनः।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- वश्यार्थे, घ- कोटिहोमे।

प्रश्न 9- वृषोत्सर्गे ध्वरो नाम शुचये ब्राह्मणः स्मृतः। समुद्रे .... ह्यग्निः क्षये संवर्तकस्तथा।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- वश्यार्थे, घ-वाडवो।

प्रश्न 10- ब्रह्मा वै गार्हपत्यश्च ईश्वरो दक्षिणस्तथा। विष्णुरावहनीयः स्यात् .... त्रयोग्नयः।

क- पावकः, ख- वरदः, ग- अग्निहोत्रे, घ- कोटिहोमे।

2.3.2.-अग्नि जिह्वाओं के नाम-

याभिर्हव्यं समश्नाति हुतं सम्यक् द्विजोत्तमैः।

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता चैव सुधूम्रवर्णा।

स्फुलिंगिनी विश्वरुचिस्तथा च चलायमाना इति सप्तजिह्वाः।

एताश्चोक्ता विशेषेण ज्ञातव्या ब्राह्मणेन तु। आहूय चैव होतव्यो यो यत्र विहितो विधिः।

अविदित्वा तु यो ह्यग्निं होमयेदविचक्षणः। न हुतं न च संस्कारो न तु यज्ञफलं भवेत्।

अन्यत्र- जिह्वैककरणं प्रोक्तं सप्तानामेकया ऋचा। समुद्रादुर्मिरनया होतव्यं कर्मसिद्धये।

जिह्वा स्थानानि- कुण्डस्य पूर्वदिग्भागे काली जिह्वा प्रकीर्तिता। आग्नेये तु करालाख्या दक्षिणे तु मनोजवा।

सुलोहिता नैर्ऋते च धूम्रवर्णा तु वारुणे। स्फुलिंगिनी तु वायव्ये सौम्ये विश्वरुचिस्तथा।

काल्यां कराल्यां वा कुर्याच्छान्तिकं पौष्टिकं तथा। मनोजवायां जिह्वायामभिचारो भिधीयते।

सुलोहितायां जिह्वायां तस्यामुच्चाटनं विदुः। सर्वार्थसिद्धिकां विश्वरुचिं मन्त्रविदो विदुः।

अपरे वसुधारेति जिह्वां पूर्वोदितां जगुः। उपजिह्वेति सा प्रोक्ता लक्ष्मीस्तत्र प्रतिष्ठिता।

कुण्डस्य मध्यमं पार्श्वमग्नेरास्यं प्रकीर्तितम्। तस्मिन् सर्वाणि कार्याणि साधनीयानि नित्यशः।

संग्रहे विशेषः विवाहे वारुणी जिह्वा मध्यमा यज्ञकर्मसु। उत्तरा चोपनयने दक्षिणा पितृकर्मसु।

प्राचीना सर्वकार्येषु ह्याग्नेयी ऐषानी चोग्रकार्येषु बुद्ध्येतद्धोमलक्षणम्।

-अग्नि जिह्वाओं के नाम- द्विजोत्तमों के द्वारा प्रदत्त आहुतियों को जिससे देवताओं तक पहुचाया जाता है उसन अग्नि जिह्वाओं के नाम काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरुचि और चलायमाना ये सात जिह्वायें हैं। इनका आवाहन करके विधि के अनुसार हवन करना चाहिये। बिना जाने जो अग्नि में हवन करता है उसका हवन न तो हुत होता है न ही संस्कृत होता है तथा न ही यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। अन्यत्र स्थलों पर एक ही ऋचा से सातों जिह्वाओ कें एकीकरण का विधान है। समुद्रादुर्मि नामक ऋचा से कर्म के सिद्ध्यर्थ अवश्य हवन करना चाहिये। जिह्वा के स्थान के बारे में वर्णन मिलता है कि कुण्ड के पूर्व भाग में काली , आग्नेय में कराली, दक्षिण में मनोजवा, नैर्ऋत्य में सुलोहिता, पश्चिम में धूम्रवर्णा, वायव्य में स्फुलिंगिनी, उत्तर में विश्वरुचि नामक जिह्वायें मन्त्रज्ञ लोग जानते है। काली अथवा कराली नामक जिह्वा में पौष्टिक कर्म करना चाहिये। मनोजवा में अभिचार करना चाहिये। दूसरे आचार्यगण पूर्व में वसुधा नाम की जिह्वा बताते हैं। इसको उपजिह्वा कहा जाता है यहॅा लक्ष्मी विराजमान रहती है। कुण्ड के मध्य पार्श्व में अग्नि का मुख होता है। उसमें व्यक्ति को अपने सभी कार्यो का साधन करना चाहिये। संग्रह नामक ग्रन्थ में

विशेष करके लिखा गया है कि विवाह में वारुणी जिह्वा, यज्ञकर्म में मध्यमा, उपनयन में उत्तरा, पितृ कर्मो में दक्षिणा, सभी कार्यों में प्राचीना तथा उग्र कामों में ऐशानी अग्नि जिह्वाओं को जानना चाहिये।

इस प्रकार अग्नि के जिह्वाओं के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- काली कराली च मनोजवा च .... चैव सुधूम्रवर्णा।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 2- स्फुलिंगिनी विश्वरुचिस्तथा च .... इति सप्तजिह्वाः।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 3- अविदित्वा तु यो ह्यग्निं होमयेदविचक्षणः। न हुतं न च संस्कारो न तु .... भवेत्।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 4- जिह्वैककरणं प्रोक्तं सप्तानामेकया ....। समुद्रादुर्मिरनया होतव्यं कर्मसिद्धये।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 5- कुण्डस्य पूर्वदिग्भागे .... जिह्वा प्रकीर्तिता। आग्नेये तु करालाख्या दक्षिणे तु मनोजवा।

क- सुलोहिता, ख- काली, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 6- .... नैर्ऋते च धूम्रवर्णा तु वारुणे। स्फुलिंगिनी तु वायव्ये सौम्ये विश्वरुचिस्तथा।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 7- काल्यां कराल्यां वा कुर्याच्छान्तिकं पौष्टिकं तथा। .... जिह्वायामभिचारो भिधीयते।

क- सुलोहिता, ख- मनोजवायां, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 8- .... जिह्वायां तस्यामुच्चाटनं विदुः। सर्वार्थसिद्धिकां विश्वरुचिं मन्त्रविदो विदुः।

क- सुलोहितायां, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- ऋचा।

प्रश्न 9- अपरे वसुधारेति जिह्वां पूर्वोदितां जगुः। उपजिह्वेति सा .... लक्ष्मीस्तत्र प्रतिष्ठिता।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- यज्ञफलं, घ- प्रोक्ता।

प्रश्न 10- कुण्डस्य मध्यमं पार्श्वमग्नेरास्यं प्रकीर्तितम्। तस्मिन् सर्वाणि कार्याणि साधनीयानि ....।

क- सुलोहिता, ख- चलायमाना, ग- नित्यशः , घ- ऋचा।

इस प्रकार से आपने अग्नियों के नाम एवं अग्नि जिह्वाओं के नामों को जाना। आशा है आपको

इसका सम्यक् ज्ञान हो गया होग। अब हम अग्नि सथापन की विधि का वर्णन करने जा रहे हैं जो इस प्रकार है-

2.4- अग्निस्थापन की विधि-

अग्निमुपसमाधाय इति सूत्रम्।

कर्मसाधनभूतं लौकिकं स्मार्तं श्रौतं वाग्निम् आत्माभिमुखं स्थापयित्वा इति हरिहरः। पात्रान्तरेणपिहितं ताम्रपात्रादिके शुभे। अग्निप्रणयनं कुर्याच्छरावे तादृशेऽपि वा। शुभ्रं पात्रं तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद्‌ध्रुतः। तस्याभावे शरावेण नवेनापि दृढ़ेन च । शरावे भिन्नपात्रे वा कपाले चोल्मुकेऽपि वा। नाग्निप्रणयनं कुर्याद् व्याधिहानिभयावहम्। इत्यत्र शरावनिशेधकं वचनं मुख्यपात्र संभवे वेदितव्यम्। कपालं खर्प्परम्। उल्मुकं ज्वलदग्नेरेकदेषमित्यर्थः। संपुटेनाग्निमानीय स्थाप्याग्नेर्दिशि कुण्डतः। आमक्रव्यभुजौ तस्मात्यक्त्वा कुण्डे विनिक्षिपेत्। अग्निमानीयपात्रे तु प्रक्षिपेदक्षतोदकम्। यद्येवं नैव कुर्वीत् यजमानभयावहम्। आनीतपात्रयोरेव प्लावनं तत्क्षणे भवेत्। नो चेत्कर्तुमनस्ताप स्यात्संतापस्तयोरपि। अग्निनियमः उत्तमो अरणिजन्यो अग्निर्मध्यमः सूर्यकान्तजः। उत्तमः श्रोत्रियागारान्मध्यमः स्वगृहादिजः। सूर्यकान्तादिसंभूतं यद्वा श्रोत्रियगेहजम्। आनीय चाग्निं पात्रेण क्रव्यादांशां परित्यजेत्। सूर्यकान्तादरणितः श्रोत्रियागारतोपिऽवा। पात्रेण पिहिते पात्रे वह्निमेवानयेत्ततः। अस्त्रेणादाय तत्पात्रं वर्मणोद्धाटयेत्तु तम्। अस्त्र मन्त्रेण नैर्ऋत्ये क्रव्यादांशं ततस्त्यजेत्। मूलेन पुरतो धृत्वा संस्कारांश्च ततश्चरेत्। त्याज्याग्निः- चाण्डालाग्निरमेध्याग्निः सूतकाग्निश्च कर्हिचित्। पतिताग्निश्चिताग्निश्च न शिष्टग्रहणोचितः।

अर्थत् इस विधि से अग्नि स्थापन करना चाहिये- अग्निमुपसमाधाय इस सूत्र से अग्नि के स्थापन के क्रम का निर्देश होता है। कर्म के साधन भूत लौकिक, स्मार्त या श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख यानी अपनी ओर करके स्थापित करना चाहिये। ताम्रादि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। अथवा शराव यानी मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है। संस्कारभास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुक पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नही करना चाहिये क्योकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है। यहॉ शराव निषेधक वचन मिलता है। कपाल का मतलब खप्पर, उल्मुक पात्र यानी पूर्व में प्रज्वलित अग्नि वाला पात्र। संपुटपात्र में अग्नि लाकर अग्नि कोण में स्थापित करके आमक्रव्यभुक् अग्नि का त्याग करके अग्नि प्रणयन करना चाहिये। कुशकण्डिका भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि लाया जाय उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नही तो यजमान के लिये वह भयावह होता है।

जिस पात्र में अग्नि को लाया जाय उस पात्र का प्लावन तुरत करना चाहिये। नही तो कर्ता के मन में एवं कराने वाले दोनों के मन में संताप की प्राप्ति होती है। अग्नि नियम की व्याख्या करते हुये बतलाया गया है कि अरणी जन्य अग्नि उत्तम, सूर्यकान्त जन्य मध्यम एवं श्रोत्रियागार की अग्नि उत्तम तथा अपने घर की अग्नि मध्यम होती है। सूर्यकान्त से या श्रोत्रिय के घर से लायी गयी अग्नि से

क्रव्यादांश निकालकर अग्नि का प्रयोग करना चाहिये। मन्त्र महोदधि में कहा गया है कि सूर्यकान्त से या अरणी से निःसृत अग्नि को ढँक कर यत्न पूर्वक लाना चाहिये। उसके बाद मूल मन्त्र से उसका संस्कार करते हुये स्थापित करना चाहिये। त्याज्य अग्नि का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि चाण्डाल की, अमेध्य, सूतकाग्नि, चिताग्नि और पतिताग्नि को शिष्ट ग्रहण नही माना गया है।

इस प्रकार अग्नि के स्थापन के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-अग्नियों को स्थापित करना चाहिये-

क- आत्माभिमुख, ख- परात्माभिमुख, ग- सूर्याभिमुख, घ- चन्द्राभिमुख।

प्रश्न 2- किस दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है।

क- प्राचीन, ख- नवीन, ग- टूटे हुये, घ- विदीर्ण।

प्रश्न 3- संस्कारभास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुक पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नही करना चाहिये क्योकि उससे क्या भय रहता है?

क-मित्र हानि, ख- शत्रु हानि, ग- क्षत्र हानि,घ- व्याधि।

प्रश्न 4- अग्नि को किस कोण से स्थापित करना चाहिये?

क- ईशान, ख-वायव्य, ग- अग्नि, घ- नैर्ऋत्य।

प्रश्न 5- कुशकण्डिका भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि लाया जाय उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नही तो यजमान के लिये वह .... होता है।

क- भयावह, ख- सुखद, ग- मिश्रित, घ- कुछ भी नही।

प्रश्न 6- जिस पात्र में अग्नि को लाया जाय उस पात्र का .... तुरत करना चाहिये।

क- मिलावन, ख- प्लावन, ग- सुलावन, घ- दिखावन।

प्रश्न 7- अरणी जन्य अग्नि है-

क- उत्तम, ख- मध्यम, ग- अधम, घ- सभी।

प्रश्न 8-सूर्यकान्त जन्य अग्नि है-

क- उत्तम, ख- मध्यम, ग- अधम, घ- सभी।

प्रश्न 9- श्रोत्रियागार की अग्नि है-

क- उत्तम, ख- मध्यम, ग- अधम, घ- सभी।

प्रश्न 10- अपने घर की अग्नि क्या होती है?

क- उत्तम, ख- मध्यम, ग- अधम, घ- सभी।

2.4.1 अग्निप्रज्वालनविचारः-

इस प्रकरण में अग्नि के प्रज्वालन यानी जलाने का विचार किया जायेगा। असल में लोगों के मन में एक सामान्य प्रकार की धारणा है कि किसी भी तरह अग्नि को जलाना है ,परन्तु शास्त्रों में इसके लिये नियम बनाये गये हैं । उन नियमों को ध्यान में रखकर ही अग्नि का प्रज्वालन शास्त्र सम्मत हो सकेगा तथा उस अग्नि में किये हवनादि कार्य फलप्रदायी होंगे।

न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना। मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणुजातया।

जुहुतश्चाथपर्णेन पाणि शूर्पपटादिना। न कुर्याग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना।

पर्णेनैव भवेद्व्याधिः शूर्पेणधननाशनम्। पाणिना मृत्युमाप्नोति पटेन विफलं भवेत्।

व्यजनेनातिदुःखाय आयुः पुण्यं मुखाद्धमात्। मुखेन धमयेदग्निं मुखादग्निरजायत।

अग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेत्तु तत्। वेणुरग्निप्रसूतित्वाद्वेणोरग्नश्चपातनः।

तस्माद्वेणुधमन्यैव धमेदग्निविचक्षणः।

यो अनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः। मन्दाग्निश्चामयावी च दरिद्रश्चैव जायते।

तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कथंचन। आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम्।

इन संबंधित श्लोकों को जहां से संग्रहीत किया गया है उनका सन्दर्भ विवरण अंक क्रमांक से दे दिया गया है। उपरोक्त श्लोकों के अर्थों को समझने से आपको अग्नि प्रज्वालन संबंधी विषय ज्ञात हो जायेगा।

कभी भी पंखे से अग्नि को नही जलाना चाहिये। मुख से या वेणु धमनी से अग्नि का प्रज्वालन किया जा सकता है। वेणु धमनी का मतलब है बांस की धमनी। आजकल लोग लोहे की या स्टील की धमनी बना लेते हैं और उसी से फूक मारते है। लेकिन इसका कोई प्रमाण दृष्टिगोचर नही होता है। प्रमाण वेणु धमनी का मिलता है उसका प्रयोग करना उचित है। पत्ते से, हाथ से, सूप से, पटे से या पंखे से कभी अग्नि का प्रज्वालन नही करना चाहिये। पत्ते से अग्नि जलाने से व्याधि, सूप से धन का नाश, हाथ से मृत्यु की प्राप्ति एवं पटे से अग्नि धमन से विफलता की प्राप्ति होती है। व्यजन से अति दुख की प्राप्ति एवं मुख से आयु तथा पुण्य की प्राप्ति होती है। मुख से अग्नि का धमन करना चाहिये क्योकि मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुयी है। लौकिक में मुख से अग्नि धमन को देखा जाता है। वेणु से अग्नि की उत्पत्ति हुयी है इसलिये विद्वान् व्यक्ति को वेणु से अग्नि धमन करना चाहिये। यहाँ वेणु का मतलब बांस की बनी हुयी फोफी से लगाया जाना चाहिये। जो बिना अग्नि की पूजा किये अग्नि में हवन करता है या बिना अंगार वाली अग्नि में हवन करता है वह मन्दाग्नि वाला एवं दरिद्र होता है इसलिये आरोग्य, आयु, श्रिय एवं मुक्ति की इच्छा रखने वाले को अच्छी प्रकार से जलती हुयी अग्नि में हवन करना चाहिये। अप्रज्वलित अग्नि में कभी भी हवन नही करना चाहिये।

इस प्रकार अग्नि के प्रज्वालन के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे

आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना। मुखेनैव धमेदग्निं .... वेणुजातया।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 2-जुहुतश्चाथपर्णेन .... शूर्पपटादिना। न कुर्याग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 3- पर्णेनैव भवेद्व्याधिः शूर्पेणधननाशनम्। पाणिना मृत्युमाप्नोति .... विफलं भवेत्।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 4- व्यजनेनातिदुःखाय आयुः पुण्यं मुखाद्धमात्। .... धमयेदग्निं मुखादग्निरजायत।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेन।

प्रश्न 5- अग्निं .... तु यल्लौकिके योजयेत्तु तत्। वेणुरग्निप्रसूतित्वाद्वेणोरग्नश्चपातनः।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 6- तस्माद्वेणुधमन्यैव ....ग्निविचक्षणः।

क- धमेद, ख- पाणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 7- यो अनर्चिषि जुहोत्यग्नौ .... च मानवः। मन्दाग्निश्चामयावी च दरिद्रश्चैव जायते।

क- धमन्या, ख- व्यंगारिणि, ग-पटेन, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 8- तस्मात्समिद्धे होतव्यं .... कथंचन। आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम्।

क- धमन्या, ख- पाणि, ग-नासमिद्धे, घ- मुखेनेति।

प्रश्न 9- अग्नि की उत्पत्ति कहां से है-

क- मुख से, ग- कान से, ग- आंख से, घ - नाक से।

प्रश्न 10- अप्रज्वलित अग्नि में हवन क्या किया जाता है?

क- किया जाता है, ख- नही किया जाता है, ग- पूछ कर किया जाता है, घ- जैसा मन करे।

2.4.2 अग्नि का स्वरूप-

इस प्रकरण में अग्नि के स्वरूप पर विचार किया जायेगा। क्योकि इससे पूर्व के प्रकरण में एक वचन आया है कि यदि अग्नि पूजन बिना किये अग्नि में हवन किया जाता है तो वह हवन फलदायी नही होता। इसलिये यह जानना परम आवश्यक है अग्नि का स्वरूप क्या है? क्योंकि इसके अभाव में ध्यान नही हो पायेगा तथा ध्यान के अभाव में पूजन नही हो पायेगा। आइये इसमें हम अग्नि का स्वरूप जानें जो इस प्रकार है-

सप्तहस्तश्चतुःश्रृंगः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः।

त्रिपात्प्रसन्नवदनः सुखासीनः शुचिस्मितः।

मेषारूढो जटाबद्धो गौरवर्णो महौजसः।।

धुम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः सर्वकामदः।

शिखाभिर्दीप्यमानाभिः उर्ध्वगाभिस्तु संयुतः।

स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा।

विभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं स्रुचं स्रुवम्।

तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन्।

आत्माभिमुखमासीनं एवं रूपो हुताशनः।।

अर्थात् अग्नि देवता के सात हाथ, चार सींग, सात जिह्वायें, दो सिर और तीन पैर है। वे प्रसन्नमुख और मन्द हास्ययुत सुखपूर्वक आसन पर आसीन रहते हैं। वे मेष पर आरूढ़ जटाबद्ध, गौरवर्ण, महातेजस्वी, धूम्रध्वज, लाल नेत्रवाले, सात ज्वाला वाले, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले, देदीप्यमान, उर्ध्वगामी ज्वालाओं से युक्त हैं। अग्नि के दक्षिण भाग में स्वाहा और वाम भाग में स्वधादेवि विराजमान रहती है। अग्नि अपने दाहिने हाथों में शक्ति, अन्न, स्रुक्, स्रुव, तोमर, पंखा और बांयें हाथ में घृतपात्र धारण किये हुये है। अग्नि का दूसरा ध्यान इस प्रकार है-

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चै-

दीर्घैर्दोर्भिर्धारयन्तं जपाभम्।

हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं,

ध्यायेद् वह्निं वह्निमौलिं जटाभिः।। शारदातिलके 5.34

इसमें अग्नि नारायण का वर्णन करते हुये कहा गया है कि जो अपनी उंची भुजाओं में इष्टमुद्रा, शक्ति, स्वस्तिक, अभय मुद्रा को धारण किये हुये हैं, जपा कुसुम की तरह कान्तिवाले हैं, सुवर्ण के आभूषणों को धारण किये हुये हैं, कमल पर बैठे हुये हैं, तीन नेत्रों वाले हैं और जिनका मस्तक अग्नि की ज्वालाओं से धधक रहा है ऐसा स्वरूप श्री अग्नि नारायण का बतलाया गया है।

एक दूसरे ध्यान में अग्नि के स्वरूप को बतलाते हुये कहा गया है कि अग्नि के दो मुख, एक हृदय चार कान, दो नाक , दो मस्तक, छः नेत्र, पिंगल वर्ण और सात जिह्वायें हैं। उनके वाम भाग में तीन हाथ और दक्षिण भाग में चार हाथ है। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति ये सब उनके दाहिने हाथो में है। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र और दो चंवर धारण किये हुये हैं। छाग पर सवार हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्य के सदृश उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलों से सुशोभित है।

इसी सातत्य में एक और महत्वपूर्ण विचार आया है कि धूम सहित अग्नि को अग्नि का सिर जानना चाहिये। धूम रहित अग्नि अग्नि का नेत्र हैं, जलता हुआ मन्द अग्नि अग्नि का कान हैं, काठ से सटा

हुआ अग्नि अग्नि की नासिका है। शुद्ध स्फटिक से युक्त अग्नि ज्वालायुक्त है। वहां से नाप से चार अंगुल ही अग्नि का मुख जानना चाहिये।

इस प्रकार अग्नि के स्वरूप के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- सप्तहस्तश्चतुःश्रृंगः .... द्विशीर्षकः।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 2- त्रिपात्प्रसन्नवदनः .... शुचिस्मितः।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 3- मेषारूढो .... गौरवर्णो महौजसः।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 4- धुम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः ....।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 5- शिखाभिर्दीप्यमानाभिः उर्ध्वगाभिस्तु ....।

क- सयुतः, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 6- स्वाहां तु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे .... तथा।

क- सप्तजिह्वो, ख- स्वधां, ग-जटाबद्धो, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 7- विभ्रद्दक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्नं .... स्रुवम्।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग- स्रुचं, घ- सर्वकामदः।

प्रश्न 8- तोमरं व्यजनं वामे घृतपात्रं च धारयन्।

क- सप्तजिह्वो, ख- सुखासीनः, ग-जटाबद्धो, घ- घृतपात्रं।

प्रश्न 9-आत्माभिमुखमासीनं एवं रूपो ....।।

क- सप्तजिह्वो, ख- हुताशनः, ग-जटाबद्धो, घ- जटाभिः।

प्रश्न 10- ध्यायेद् वह्निं वह्निमौलिंः।।

क- सप्तजिह्वो, ख- हुताशनः, ग-जटाबद्धो, घ- जटाभिः।

2.5 सारांश-

इस इकाई में अग्नि स्थापन विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आपने किया। अग्नि स्थापन के ज्ञान के अभाव में पूर्णिमा आदि के अवसर पर हवन विधियों का आयोजन, विष्णु यज्ञादि अनुष्ठानों के अवसर पर हवनादि का सम्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा ठीक ढंग से नही हो सकता है। क्योकि इसके बिना अग्नि स्थापन ही नही होगा तो हवन कैसे किया जा सकता है।

कर्म के साधन भूत लौकिक, स्मार्त या श्रौत अग्नियों को आत्माभिमुख यानी अपनी ओर करके स्थापित करना चाहिये। ताम्र्रदि पात्रों में पात्र से ढँककर अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। अथवा शराव यानी मिट्टी के पात्र से या शुभ्र कांस्य पात्र से या नवीन दृढ़ पात्र से अग्नि का प्रणयन किया जा सकता है। संस्कारभास्कर में लिखा गया है कि शराव पात्र में, कपाल पात्र में या उल्मुक पात्र में रखी हुयी अग्नि से अग्नि प्रणयन नही करना चाहिये क्योकि उससे व्याधि एवं हानि का भय रहता है। यहॉ शराव निषेधक वचन मिलता है। कपाल का मतलब खप्पर, उल्मुक पात्र यानी पूर्व में प्रज्वलित अग्नि वाला पात्र। संपुटपात्र में अग्नि लाकर अग्नि कोण में स्थापित करके आमक्रव्यभुक् अग्नि का त्याग करके अग्नि प्रणयन करना चाहिये। कुशकण्डिका भाष्य में लिखा गया है कि जिस पात्र में अग्नि लाया जाय उस पात्र में प्रणयन के बाद अक्षत एवं जल डालना चाहिये नही तो यजमान के लिये वह भयावह होता है।

जिस पात्र में अग्नि को लाया जाय उस पात्र का प्लावन तुरत करना चाहिये। नही तो कर्ता के मन में एवं कराने वाले दोनों के मन में संताप की प्राप्ति होती है। अग्नि नियम की व्याख्या करते हुये बतलाया गया है कि अरणी जन्य अग्नि उत्तम, सूर्यकान्त जन्य मध्यम एवं श्रोत्रियागार की अग्नि उत्तम तथा अपने घर की अग्नि मध्यम होती है। सूर्यकान्त से या श्रोत्रिय के घर से लायी गयी अग्नि से क्रव्यादांश निकालकर अग्नि का प्रयोग करना चाहिये। मन्त्र महोदधि में कहा गया है कि सूर्यकान्त से या अरणी से निःसृत अग्नि को ढँक कर यत्न पूर्वक लाना चाहिये। उसके बाद मूल मन्त्र से उसका संस्कार करते हुये स्थापित करना चाहिये। त्याज्य अग्नि का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि चाण्डाल की, अमेध्य, सूतकाग्नि, चिताग्नि और पतिताग्नि को शिष्ट ग्रहण नही माना गया है। अग्नि के स्वरूप को बतलाते हुये कहा गया है कि अग्नि के दो मुख, एक हृदय चार कान, दो नाक , दो मस्तक, छः नेत्र, पिंगल वर्ण और सात जिह्वायें हैं। उनके वाम भाग में तीन हाथ और दक्षिण भाग में चार हाथ है। स्रुक्, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति ये सब उनके दाहिने हाथो में है। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृतपात्र और दो चंवर धारण किये हुये हैं। छाग पर सवार हैं। उनके चार सींग हैं। बालसूर्य के सदृश उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलों से सुशोभित है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

कुर्यात्- करना चाहिये, दग्निधमनं - अग्नि को धौकना, व्यजन- पंखा, मुखेनैव- मुख से ही, धमेदग्निं

– अग्नि जलाना चाहिये, धमन्या- धमनी से, वेणुजातया- बांस से, पर्णेन- पत्ते से, पाणि- हाथ , शूर्प- शूप, पट- वस्त्र, व्याधिः- रोग, धननाशनम्- धन का नाश, पाणिना- हाथ से, मृत्युमाप्नोति - मृत्यु प्राप्त होती है, विफलं - बिना फल वाला, भवेत्- होता है, लौकिके- लौकिक, योजयेत्- योजन करना चाहिये, विचक्षणः- विद्वान्, अनर्चिषि- बिना प्रज्वलित अग्नि में, जुहोत्यग्नौ- अग्नि में हवन करता है, व्यंगारिणि- बिना अंगार वाली, मन्दाग्नि- अग्निमान्द्य हो जाना, सप्तहस्तः- सात हाथ, चतुःश्रृंगः- चार सीगें, सप्तजिह्वो- सात जिह्वा, द्विशीर्षकः- दो शिर, त्रिपात्प्रसन्नवदनः - तीन पैर है , प्रसन्न मुख, सुखासीनः- सुख से बैठे हुये, मेषारूढो - मेष पर आरुढ़, जटाबद्धो - जटा बधी हुयी है, गौरवर्णो - गौर वर्ण, महौजसः- महा तेज, धुम्रध्वजो - धूम्र वर्ण की ध्वजा, लोहिताक्षः- लाल लाल आखें, सप्तार्चिः- सात जिह्वायें, सर्वकामदः- सभी प्रकार के कामनाओं को देने वाला, शिखाभिर्दीप्यमानाभिः- जलती ज्वालाये शिखा है, उर्ध्वगाभिस्तु - ऊपर की ओर ही जाने वाली, दक्षिणे पार्श्वे - दाहिनी ओर, वामे स्वधां तथा- बायें भाग में स्वधा, विभ्रद्- धारण की हुयी, दक्षिणहस्तैस्तु - दाहिने हाथ में, शक्तिम्- शक्ति, अन्नं- अन्न, स्रुचं- यज्ञ पात्र, स्रुवम्- हवनार्थ यज्ञ पात्र, घृतपात्रं - घी का पात्र, धारयन्- धारण किये हुये है, आत्माभिमुखमासीनं - अपनी ओर मुख करके बैठे हुये, एवं - इस प्रकार, हुताशनः- अग्नि, अर्थात् - इसका मतलब, इष्टं - अभिष्ट, शक्तिं- शक्ति, स्वस्तिक- स्वस्ति, आभीति- अभय, दीर्घै- विस्तृत, हेमाकल्पं- स्वर्ण के समान, पद्मसंस्थं- कमल पर स्थित, त्रिनेत्रं- तीन नेत्र वाले ध्यायेद् - ध्यान करना चाहिये, वह्निं - अग्नि, वह्निमौलिं- अग्नि का सर्वोच्च भाग, जटाभिः- जटाओं से, इष्टमुद्रा- अभिलषित मुद्रा, धेनु क्षय- गाय की हानि, वक्रकुण्डे- टेढ़ा कुण्ड, सन्तापा- दुख, छिन्नमेखले- टूटी हुयी मेखला वाला, मेखला रहिते - मेखला से हीन, शोक- दुख, अभ्यधिके - अधिक, वित्तसंक्षयः- धनहानि, भार्यादिनाशनं - स्त्री विनाश, प्रोक्तं- कहा गया है, कुण्डं योन्याविनाकृते- योनि के बिना कुण्ड करने से, कण्ठरहितं - कण्ठ से रहित, द्विघ्नं - दुगूना, व्यासं - व्यास, तुर्यचिन्हं - चार चिन्ह।

2.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

2.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-ग।

2.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-.ख, 6-क, 7-ख, 8-क, 9-घ, 10-ग।

2.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-घ, 4-ग, 5-क, 6-ख, 7-क, 8-ख, 9-क, 10-ख।

2.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-घ, 6-क, 7-ख, 8-ग, 9-क, 10-ख ।

2.4.3 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-घ।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-कुण्डमण्डप सिद्धि।

2-वृह्द वास्तु मालाः।

3-वास्तुराज वल्लभ।

4-शब्दकल्पद्रुमः।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-नित्य कर्म पूजा प्रकाश।

7-पूजन- विधान।

8-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

2.9- सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री -

1- यज्ञ मीमांसा ।

2- प्रयोग पारिजात ।

3- अनुष्ठान प्रकाश ।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- अग्नि का परिचय बतलाइये।

2- अग्नि का स्वरूप बतलाइये।

3- अग्निओं के नामों को लिखिये।

4- अग्नि के जिह्वाओं को लिखिये।

5- अग्नि के शिर, कान, नाक आदि लिखिये।

6- अग्नि स्थापन की विधि संस्कृत में लिखिये।

7- हिन्दी में अग्नि स्थापन की विधि लिखिये।

8- अग्नि जिह्वाओं के नाम संस्कृत में लिखिये।

9- अग्नि प्रज्वालन विचार लिखिये।

10- अग्नियों के नाम कर्म के अनुसार संस्कृत में लिखिये।

इकाई 3 कुश कण्डिका

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्रों एवं वृक्षों का परिचय

3.3.1 पात्रादि विचार एवं समिधाओं का परिचय

3.3.2 कुश कण्डिका कृत्य में विशेष विचार

अभ्यास प्रश्न

3.4 कुश कण्डिका का विधान

3.4.1 कुशकण्डिकाविधानम्

अभ्यास प्रश्न

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में कुश कण्डिका की प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कर्मकाण्ड में अनुष्ठानादि की सम्पन्नता हेतु हवन का विधान सर्वविदित है। हवन के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नही हो पाती है। हवन कार्य का प्रारभ अग्नि स्थापन से होता है । अग्नि स्थापन के बाद कुश कण्डिका किया जाता है। यदि यह कहा जाय कि कुश कण्डिका के अभाव में हवन कार्य हो ही नही सकता तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

वास्तविक रूप से देखा जाय तो कुश कण्डिका का मतलब है कुश से की जाने वाली क्रियायें। अब यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि कुशों को कैसे स्थापित करना चाहिये? उत्तर में आता है कि जिस तरह गृह्य सूत्रों मे लिखा गया है उस प्रकार कुशों को अग्नि कुण्ड या स्थण्डिल के चारो ओर स्थापित करना कुश कण्डिका कहलाता है। पारस्कर गृह्य सूत्र में लिखा गया है कि एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः अर्थात् जहां कही भी हवन होता है वहां इस विधि का प्रयोग करना चाहिये। कुशकण्डिका ही वह विधि है जिसमें अग्नि का तथा अग्नि में डाले जाने वाले समस्त पदार्थों को सुसंस्कृत किया जाता है। इस प्रकार से विशेष संस्कार सम्पन्न करने वाले इस कुशकण्डिका नामक उपक्रम का सम्पादन किया जाता है तो हमारे द्वारा प्रदत्त आहुति उस देवता को प्राप्त होती है जिसके लिये हमने आहुति प्रदान किया है। कुश कण्डिका का संस्कार होने के कारण घी की आज्य संज्ञा हो जाती है। इसी उपक्रम में दिये प्रक्रम के कारण अग्नि सम्मुख होकर आहुतियों को स्वीकार करते हैं अन्यथा अग्नि स्वाभाविक रूप से अधोमुख होकर पड़े रहते हैं। उस समय दी जाने वाली आहुतियां उनके मस्तक पर गिरती है, मुख में नही, इसलिये उसमे दोष आ जाता है। अतः कुशकण्डिका का ज्ञान आवश्यक है।

इस इकाई के अध्ययन से आप कुश कण्डिका के विचार करने की विधि एवं सम्पादन करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे यज्ञादि कार्यों या अनुष्ठानादि के अवसर किये जाने वाले कुष्कण्डिका विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

3.2 उद्देश्य-

अब कुश कण्डिका विचार एवं सम्पादन की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य

भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

-कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

- कुश कण्डिका के सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

- कुश कण्डिका के सम्पादन में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

3.3 कुश कण्डिका में प्रयुक्त पात्रों एवं वृक्षों का परिचय -

कुशकण्डिका में सर्व प्रथम प्रयुक्त पात्रों का परिचय जानना अति आवश्यक है। इसके ज्ञान से आपको यह पता चल जायेगा कि किन- किन पात्रों का नाम क्या है और उसका नाम क्या है? इससे सही तरीके से कोइ्र भी प्रयोग करने आ जायेगा। कुश कण्डिका के बारे में पुष्ट ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी। जो अधोलिखित है-

3.3.1- पात्रादि विचार एवं समिधाओं का परिचय-

इसके अन्तर्गत आपको कुश कण्डिका में प्रयुक्त होन वाले पात्रों एवं वृक्षों का परिचय कराया जायेगा। जिससे आपको कुशकण्डिका का सम्यक् प्रकार से ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

चरुस्थाली- चरुस्थाली दृढ़ा प्रादेशमात्रोर्ध्वं तिर्यङ् नाति बृहन्मुखी। मृन्मयौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते।

सम्मार्जन कुशा- **सम्मार्जनकुशानाह बादरायणः -स्रुवसम्मार्जनार्थाय पंच वाथ त्रयोपि वा। प्रादेशमात्रान्गृह्णीयात्सम्मार्जन कुश संज्ञकान्।**

उपयमन कुशा- उपयमन कुशाः सप्त पंच वाथ त्रयोपि वा।

समिद्वृक्षाः-

समिद्वृक्षानाह मरीचिः पलाशः खदिरो ऽश्वत्थ शमी वट उदुम्बरः। अपामार्गार्क दूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः। शमीपलाशन्यग्रोधप्लक्षवैकंकतोद्भवाः। अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनस्सरलस्तथा।

सालश्चदेवदारुश्च खदिरश्चैव यज्ञियाः।

स्रुव- स्रुवलक्षणम् खदिरादेः स्रुवः कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः। अंगुष्ठपर्वखातं तत्रिभागं दीर्घपुष्करम्।

शमीमयः स्रुवः कार्यस्तदलाभे ऽन्यवृक्षजः। खादिरस्तु स्रुवः कार्यः सर्वकामार्थ सिद्धये।

स्रुवे देवता विचारः- स्रुवोन्तष्चतुर्विंशः स्यात्षड्देवास्तत्र संस्थिताः।

अग्निरुद्रौ यमश्चैव विष्णुः शक्रः प्रजापतिम्। विष्णुस्थेन च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम्।

स्रुवधारणफलम्-

अग्रे धृत्वा तु वैधव्यं मध्ये धृत्वा प्रजाक्षयः। मूले च म्रियते होता स्रुवस्थानं कथं भवेत्।

अग्रान्मध्यस्तु यन्मध्यं मूलान्मध्यस्तु मध्यमः। स्रुवं च धारयेद्विद्वानायुरारोग्यदं सदा।

अरत्निमात्रकः स्रुवः-

अग्निः सूर्यश्च सोमश्च विरंचरनिलो यमः। एते वै षड्देवाश्च चतुरंगुलभागिनः।

अग्निभागे अर्थनाशाय सूर्ये व्याधिकरो भवेत्। सोमे च निष्फलो धर्मो विरंचिः सर्वकामदः।

अनिले रोगमाप्नोति यमे मृत्युः प्रजायते।

शौनकेन विशेषः उक्तः-

खादिरेण स्रुवः कार्यः पालाशेन जुहूर्भवेत्। तदभावे पलाशस्य पर्णाभ्यां हूयते हविः।

पलाशपर्णाभावे तु पर्णैर्वा पिप्पलोद्भवैः। पलाशपर्णं मध्यमं ग्राह्यम् मध्यमेन पर्णेन जुहोति इति श्रुतिः।

स्रुचिधारणे कारिका-

अग्निः सोमो हरिर्ब्रह्मा वायुः कीनाश एव च। षडंगुलविभागेन स्रुचि देवा व्यवस्थिताः।

स्रुचिस्वरूपम्-

षट्त्रिंशांगुलं स्रुचं कारयेद् खदिरादिभिः। कर्दमे गोपदाकारं पुष्करं तद्वदेव हि।

पुष्कराग्रं षडंशं तु खातं द्वयंगुलविस्तृतम्। अंगुष्ठैकं स्थूलतरे दण्डे तस्य च कंकणम्।

अर्थात् इसको इस प्रकार समझना चाहिये-

चरुस्थाली- चरुस्थाली दृढ़, प्रादेश मात्र उची, ताम्र पात्र की या मिट्टी की होनी चाहिये परन्तु अति बृहद्मुख वाली नही होनी चाहिये।

सम्मार्जन कुशा- स्रुव सम्मार्जन के लिये पॉच या तीन कुशाओं का प्रादेश मात्र लम्बा परिमाण ग्रहण करना चाहिये।

उपयमन कुशा- उपयमन कुशा में सात, पॉच या तीन कुशाओं का समूह होता है।

समिधा- समिधाओं हेतु वृक्षों का वर्णन करते हुये मरीच ने पलाश, खैर, पीपल, शमी, वड़, गूलर, चिचिड़ी, दूर्वा, कुशा बतलाया है। अन्य आचार्यगणों ने इसके अलावा पाकड़, बिल्व, चन्दन, आम, साल, देवदारु को भी स्वीकार किया है।

स्रुव-खैर के लकड़ी का एक हाथ का स्रुव अंगुष्ठ पर्व के बराबर गड्ढा वाला होना चाहिये। खैर के अभाव में शमी का या उसके अभाव में अन्य लकड़ियों का भी बनाया जा सकता है। सभी कामनाओं की सिद्धि के लिये खैर का स्रुव माना गया है।

स्रुव में देवता का विचार-चौबीस अंगुल के स्रुव में अग्नि, रुद्र, यम, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति ये छः देवताओं का निवास बतलाया गया है। विष्णु जी के स्थान में धारण करना शुभप्रदायक माना गया है।

स्रुव धारण का फल- स्रुव धारण के फलों का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि स्रुव को आगे से पकड़ने से वैधव्य, मध्य में पकड़ने से सन्तान क्षय तथा मूल में धारण कर आहुतियाँ देने से हवन करने वाले की मृत्यु का फल प्राप्त होता है। अग्र एवं मध्य का मध्य भाग तथा मूल एवं मध्य का मध्य भाग

स्रुव का धारण कर हवन करने से आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है। अग्नि, सूर्य, सोम, ब्रह्मा, वायु एवं यम चार-चार अंगुल के अन्तर पर स्रुव में पाये जाते हैं। अग्नि से अर्थनाश, सूर्य भाग से व्याधि, सोम से निष्फलता, ब्रह्मा से सर्व कामना की प्राप्ति, वायु भाग से रोग एवं यम भाग से मृत्यु की प्राप्ति होती है। आचार्य शौनक ने कहा है कि खदिर का स्रुव एवं पलाश का जुहू बनाना चाहिये उसके अभाव में पलाश पत्ते से हवन करना चाहिये। पलाश पर्ण का अभाव होने पर पिप्पलादि किसी पत्ते का प्रयोग किया जा सकता है।

स्रुचि धारण कारिका- अग्नि, सोम, हरि, ब्रह्मा, वायु एवं यमराज छः अंगुल के विभाग से स्रुचि में देवता के रूप में व्यवस्थित होते हैं।

स्रुचि का स्वरूप- खदिर की समिधा से छत्तीस अंगुल का स्रुचि बनाना चाहिये। एक अंगुष्ठ के बराबर दण्ड के षष्ठांश में दो अंगुल का विस्तृत खात होना चाहिये।

इस प्रकार सामान्य रूप से कुशकण्डिका में प्रयुक्त होन वाले पात्रों के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- दृढ़ा प्रादेशमात्रोर्ध्वं तिर्यंङ् नाति बृहन्मुखी। मृन्मयौदुम्बरी वापि ....प्रशस्यते।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 2-स्रुवसम्मार्जनार्थाय पंच वाथ त्रयोपि वा। प्रादेशमात्रान्गृह्णीयात्........ कुश संज्ञकान्।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 3- ....कुशाः सप्त पंच वाथ त्रयोपि वा।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 4- मरीचिः पलाशः खदिरो ऽश्वत्थ शमी वट उदुम्बरः। अपामार्गार्क ....कुशाश्चेत्यपरे विदुः।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 5- शमीपलाशन्यग्रोधप्लक्षवैकंकतोद्भवाः। ....दुम्बरौ बिल्वश्चन्दनस्सरलस्तथा।

क- अश्वत्थो, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 6- खदिरादेः ....कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः। अंगुष्ठपर्वखातं तत्रिभागं दीर्घपुष्करम्।

क- चरुस्थाली, ख- स्रुवः, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 7- .... स्रुवः कार्यस्तदलाभे ऽन्यवृक्षजः। खादिरस्तु स्रुवः कार्यः सर्वकामार्थ सिद्धये।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- शमीमयः, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 8- स्रुवोन्तष्चतुर्विंशः स्यात्षड्देवास्तत्र ....।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- संस्थिताः।

प्रश्न 9- अग्निरुद्रौ यमश्चैव .... शक्रः प्रजापतिम्। विष्णुस्थेन च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम्।

क- चरुस्थाली, ख- विष्णुः, ग- उपयमन, घ- दूर्वाश्च।

प्रश्न 10- अग्रे धृत्वा तु वैधव्यं मध्ये धृत्वा प्रजाक्षयः। ....च म्रियते होता स्रुवस्थानं कथं भवेत्।

क- चरुस्थाली, ख- सम्मार्जन, ग- उपयमन, घ- मूले।

3.3.2 कुश कण्डिका कृत्य में विशेष विचार-

इस प्रकरण में कुश कण्डिका कृत्य से संबंधित विशेष विचार किया जायेगा। इससे कुश कण्डिका में आने वाले विशेष शब्दावलियों के आते ही उनके प्रयोग की विधि का भान आसानी से हो सकेगा।

आज्यादिविचारः- उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते।

चरुविचारः- त्रिभिः प्रक्षालितं दैवे सकृत्पित्र्ये च कर्मणि। पात्रासादनकाले च तेषां प्रक्षालनं भवेत्।

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृता। यथेक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यौ तदनुकारि यत्।

यवानामिवगोधूमा ब्रीहिणमिवशालयः। अभावे ब्रीहियवयोः दध्ना वा पयसापि वा।

आज्यादिविचार- गाय का घृत उत्तम, भैंस का घृत मध्यम एवं बकरी का घृत अधम बतलाया गया है।

चरु विचार- देव कार्य में तीन बार एवं पितृ कार्य में एक बार पात्रासादन काल में चरु द्रव्यों का प्रक्षालन होता है। हविर्द्रव्यों में यव मुख्य है, उसके बाद ब्रीहि मुख्य है। यव के समान गेंहू तथा ब्रहि के समान चावल है। ब्रीहि एवं यव के अभाव में दधि या दूध का प्रयोग किया जा सकता है।

पूर्णपात्रविचार- अकृते पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते। पूर्णपात्रे च संपूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत्।

अष्टमुष्टिर्भवेत्किंचित् किंचिदष्टौ च पुष्कलम्। पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्षते।

यावतान्नेन भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते। तद्वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः।

यवैर्वा ब्रीहिभिर्पूर्णं भवेत्पूर्णपात्रकम्। वराभिलषितं द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते।

पवित्रकरणविचारः- पवित्रे कृत्वा इति सूत्रम्। प्रथमं त्रिभिः कुशतरुणैरग्रतः प्रादेशमात्रं विहाय द्वे कुशतरुणे प्रच्छिद्य इति हरिहरः। एवमासादनं कृत्वा पवित्रच्छेदने कुशैः। अंगुष्ठांगुलिपर्वभ्यां छिन्द्यात्प्रादेशसम्मितम्। इति अंगुलिरनामिकापर्व।

प्रोक्षणी संस्कारविचारः- प्रोक्षणीपात्रं प्रणीता सन्निधौ निधाय तत्र पात्रान्तरेण हस्तेन वा प्रणीतोदकमासिच्य पवित्राभ्यामुत्पूय पवित्रे प्रोक्षणीषु निधाय दक्षिणेन हस्तेन प्रोक्षणीपात्रमुत्थाप्य सव्ये कृत्वा तदुदकं दक्षिणेनोच्छाल्य प्रणीतोदकेन प्रोक्ष्य इति हरिहरभाष्यम्।

प्रोक्षणविचारः- अर्थवत्प्रोक्ष्य इति सूत्रम्। अर्थवन्ति प्रयोजनवन्ति आज्यस्थाल्यादीनि पूर्णपात्रपर्यन्तानि प्रोक्षणीभिरद्भिरासादनक्रमेणैकैकशः प्रोक्ष्य असंचरे प्रणीताग्न्योरन्तराले प्रोक्षणीपात्रं निधाय इति हरिहर भाष्यम्। कारिकायाम् पात्राणि क्रमशः प्रोक्ष्य निदध्यात्तामसंचरे। असंचरः प्रणीताग्न्ययोरन्तरेण प्रकीर्तितः।

पूर्णपात्र का विचार- बिना पूर्णपात्र के यज्ञ छिद्र वाला होता है इसलिये संपूर्णता हेतु पूर्णपात्र आवश्यक है। आठ मुट्ठी का एक किंचित् होता है, आठ किंचित् का एक पुष्कल एवं चार पुष्कल का एक पूर्णपात्र होता है। गदाधर भाष्य में लिखा गया है कि जितने अन्न से भोजन करने वाले की पूर्ण तृप्ति हो जाय उतने अन्न को वरान्न कहते हुये पूर्णपात्र कहा जाता है। पूर्णपात्र यव या व्रीहि से पूर्ण होना चाहिये।

पवित्र करण विचार- पवित्रक बनाने के लिये हरिहर जी कहते है पहले तीन तरुण कुशों के आगे से प्रादेश मात्र छोड़कर दो कुशों से छेदन करें। पवित्रच्छेदन के लिये अगूंठे एवं अंगुलि से विधान किया गया है। यहाँ अंगुलि का मतलब अनामिका से है।

प्रोक्षणी का संस्कार का विचार- प्रोक्षणीपात्र को प्रणीता के सन्निधि में रखकर पात्रान्तर से या हाथ से प्रणीता के जल से आसिंचन कर पवित्रक से उत्पवन कर प्रोक्षणी में पवित्र को रखकर दाहिने हाथ से प्रोक्षणी पात्र को उठाकर बायें हाथ में करके उसके जल को दहिने हाथ से उछालकर प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का प्रोक्षण करना चाहिये।

प्रोक्षण विचार- उस कार्य के लिये प्रयोजनवान् जितने भी पदार्थ वहाँ रखे गये हैं उन सभी पदार्थों का प्रोक्षणी के जल से प्रोक्षण करना चाहिये। सबसे पहले प्रोक्षणी का प्रोक्षण करके उसे अग्नि एवं प्रणीता के बीच में रखकर अन्य पात्रों एवं पदार्थों का प्रोक्षण करें।

इस प्रकार सामान्य रूप से कुशकण्डिका में प्रयुक्त होन वाले विशेष विचारों के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवम्। अधमं छागलीजातं तस्माद् ....प्रशस्यते।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- व्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 2- त्रिभिः प्रक्षालितं दैवे सकृत्पित्र्ये च कर्मणि। पात्रासादनकाले च तेषां ....भवेत्।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 3- हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु .... स्मृता। यथेक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यौ तदनुकारि यत्।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 4- यवानामिवगोधूमा ब्रीहिणमिवशालयः। अभावे ब्रीहियवयोः ....वा पयसापि वा।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 5- .... पूर्णपात्रे च छिद्रयज्ञः प्रजायते। पूर्णपात्रे च संपूर्णे सर्वं संपूर्णता भवेत्।

क- अकृते, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 6- अष्टमुष्टिर्भवेत्किंचित् किंचिदष्टौ च पुष्कलम्। .... च चत्वारि पूर्णपात्रं प्रचक्षते।

क- गव्यं, ख- पुष्कलानि, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 7- यावतान्नेन भोक्तुस्तु .... पूर्णैव जायते। तद्वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- तृप्तिः, घ- दध्ना।

प्रश्न 8- यवैर्वा व्रीहिभिर्पूर्णं भवेत्पूर्णपात्रकम्। वराभिलषितं .... सारभूतं तदुच्यते।

क- गव्यं, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- द्रव्यं।

प्रश्न 9- पवित्रकरणविचारः- पवित्रे कृत्वा इति ....।

क- सूत्रम्, ख- प्रक्षालनं, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

प्रश्न 10- अंगुष्ठांगुलिपर्वभ्यां छिन्द्यात्प्रादेशसम्मितम्। इति अंगुलि................।

क- गव्यं, ख- अनामिकापर्व, ग- ब्रीहयः, घ- दध्ना।

3.4 कुश कण्डिका का विधान-

इसमें कुश कण्डिका की विधि का निरूपण किया जा रहा है। इसके ज्ञान से आप आसानी से कुश कण्डिका प्रयोग का सम्पादन कर सकते है।

3.4.1 कुशकण्डिकाविधानम्-

दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य इति सूत्रम् । तस्याग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि ब्रह्मणे आसनं वारणादियज्ञीयदारुनिर्मितं पीठमास्तीर्य कुशैः स्तीर्त्वा तत्र वरणाभरणाभ्यां पूर्वसम्पादितं कर्मसु तत्वज्ञं ब्राह्मणं तदभावे पंचाशतकुशनिर्मितमुपवेश्य इति हरिहर भाष्यम्। तथा चोक्तं कारिकायाम् अग्नेर्दक्षिणतो ब्रह्मासनं कृत्वा कुशास्तृतम्। ब्रह्माणं वरयेदग्निमुत्तरेणगुणान्वितम्। आसनं ब्रह्मणः कार्यं वारणं वा विकंकतम्। चतुरस्रं हस्तमात्रं मूलदण्ड समन्वितम्। द्विषडंगुलसंख्यातो मूलदण्डो विकंकतात्। करिष्ये अमुक शर्माऽ हं ब्रह्मा त्वं तत्र मे भव। ब्रह्मा भवामि चेत्युक्त्वा गच्छेदग्नेस्तु पूर्वतः। अपरेणाथवा कुर्यादासनस्येक्षणं ततः। एकदेशं तृणस्यापि स्वासने चोपवेश्येत्।

उत्तरे सर्व पात्राणि प्रणीतादीन्यनुक्रमात्। पूर्वेपौर्व द्विजाः सर्वे ब्रह्माकिमुत दक्षिणे?

दक्षिणे दानवाः प्रोक्ताः पिशाचो रगराक्षसाः। तेषां संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे।

ब्रह्मलक्षणं- वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं कुलीनं श्रोत्रियं शुचिम्। स्वशाखाठ्यमनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्।

ब्रह्मवरणार्थमलंकरणमाह वस्त्रयुग्मं तथाप्पूरं केयूरं कर्णभूषणम्। अंगुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्यभूषणम्।

कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे सर्वकर्मणि। विप्राभावे दर्भवटुमाह कुशग्रन्थिमयं विप्रं ब्रह्माणमुपवेशयेत्।

तल्लक्षणं पंचाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः। उर्ध्वकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः।

दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु विष्टरः।

प्रणीय इति सूत्रम् अप इति शेषः। तद्यथा अग्नेरुत्तरतः प्रागग्रं कुशैरासनद्वयं कल्पयित्वा वारणं द्वादशांगुलदीर्घं चतुरंगुलविस्तारं चतुरंगुलखातं चमसं सव्यहस्ते कृत्वा दक्षिणहस्तोद्धृतपात्रस्थोदकेन पूरयित्वा पश्चिमासने निधायालभ्य पूर्वासने स्थापयित्वा इति हरिहरभाष्यम्। कर्मप्रदीपे द्वादशांगुलदीर्घेण चतुरस्रः सगर्तकः प्रस्थमात्रोदकग्राही प्रणीता चमसो भवेत्।

कुशकण्डिका विधि- अग्नि के दक्षिण दिशा में ब्रह्मा के लिये आसन यज्ञीय समिधाओं से निर्मित कर बिछावें उस पर तत्वज्ञ ब्रह्मा बैठें। उसके अभाव में पचास कुशाओं से निर्मित करके ब्रह्मा को बिठाया जाय ऐसा हरिहर जी ने कहा है। कारिका में कहा गया है कि अग्नि के दक्षिण में ब्रह्मा का आसन रखकर उस पर कुश बिछावें। ब्रह्मा का आसन वारण या विकंकत यानी कण्टाई की लकड़ी का होना चाहिये। यह एक हाथ का चतुरस्र हो। छब्बीस अंगुल विकंकत का भी बनाया जा सकता है। ब्रह्मा होऊँ ऐसा कहकर ब्रह्मा अपने आसन पर बैठे। दूसरे आचार्य गण कहते हैं या तो आसन को देखना चाहिये। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि सभी पात्र उत्तर में प्रणीता के क्रम से पौर्वापर्य रखे जाते हैं लेकिन ब्रह्मा को दक्षिण में क्यों रखा जाता है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा गया है कि दक्षिण में दानव, पिशाच एवं राक्षस इत्यादि रहते हैं इसलिये ब्रह्मा को दक्षिण में बिठाया जाता है। ब्रह्मा का लक्षण बतलाते हुये बतलाया गया है वेद में एकनिष्ठ धर्मज्ञ कुलीन श्रोत्रिय पवित्र एवं अपने शाखाध्ययन में आलस्य रहित होकर रत रहने वाला विप्र हो। ब्रह्मवरणार्थ अलंकरण का वर्णन करते हुये कहा गया दो वस्त्र, केयूर, कर्णभूषण, अंगुलिभूषण, मणिबन्ध भूषण एवं कण्ठाभरण कहा गया है। विप्र के अभाव में दर्भ वटु बनाने का विधान मिलता है। इसे कुशे को ग्रन्थियुक्त करके बनाया जाता है। इसका लक्षण बताते हुये कहा गया पचास कुशे का ब्रह्मा एवं उसके आधे का विष्टर बनाता है। उर्ध्वकेश ब्रह्मा एवं लम्बकेश विष्टर होता है। दक्षिणावर्त ब्रह्मा एवं वामावर्त विष्टर होता है।

अगला सूत्र प्रणीय आता है इसमें अप शब्द शेष है अर्थात् जल। अग्नि के उत्तर प्रागग्र दो कुशों को आसन के लिये रखकर बारह अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा एवं चार अंगुल गहरा चमस को बायें

हाथ में करके दाहिने हाथ में स्थित जल पात्र से पूरित कर पश्चिम के आसन पर रखकर पूर्व के आसन पर रखना चाहिये। कर्म प्रदीप में प्रणीता को प्रस्थ मात्र जल ग्रहण करने की छमता वाला बतलाया गया है।

परिस्तीर्य इति सूत्रम्। अग्निं बर्हि मुष्टिमादाय ईशानादिप्रागग्रैर्बार्होमरुदक्संस्थमग्नेः परिस्तरणम् इति हरिहरभाष्यम्।

परिस्तरणप्रयोजनम् वेदिका दर्भहीना तु विनग्ना प्रोच्यते बुधैः। परिधानं ततः कुर्याद्दर्भेणैव विशेषतः।

स्थाननियमः एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत्। द्विमेखले द्वितीयायां तृतीयायां त्रिमेखले।

दर्भसंख्या अग्निं षोडशभिर्दर्भैः परिस्तीर्य दिशं प्रति। प्रागादीशानपर्यन्तमुदक्संस्था परिस्तृतिः।

एकैकस्यां दिशि चत्वारो चत्वारि एवं षोडश। तच्च प्रागुदगग्रैः दक्षिणतः प्रागग्रैः, प्रत्यगुदगग्रैः, उत्तरतः प्रागग्रैरिति संस्कार भास्करे।

बर्हिर्लक्षणम् कात्यायनेनोक्तम् कुशा दीर्घाश्च बर्हिषः। उपमूललूनबर्हिषां मुष्टिबर्हिः इति कुशकण्डिकाटीकाकारः।

परिस्तीर्य इस सूत्र की व्याख्या में अग्निकुण्ड के चारों तरफ मुष्टि में कुशों को लेकर प्रागग्र करके बिछाना चाहिये। परिस्तरण का प्रयोजन बतलाते हुये कहा गया है कि दर्भहीन वेदिका को नग्न वेदिका माना जाता है। दर्भ वेदिका का परिधान विशेष माना जाता है। एक मेखला वाले कुण्ड में मेखला के अधो भाग में परिस्तरण करना चाहिये। दो मेखला वाले कुण्ड में दूसरी के तथा त्रिमेखला वाले कुण्ड में तीसरी मेखला के नीचे कुशों का आस्तरण करना चाहिये। सोलह कुशाओं का परिस्तरण यानी एक-एक दिशा में चार-चार कुशाओं को बिछाना चाहिये। पूर्व दिशा में उदगग्र, दक्षिण दिशा में प्रागग्र, पश्चिम दिशा में उदगग्र एवं उत्तर दिशा में प्रागग्र ऐसा संस्कार भास्कर में लिखा है। बर्हि का लक्षण बतलाते हुये कहा गया दीर्घ कुशा बर्हि है। जिसका मूल छिन्न हो उस कुशा को भी बर्हि की उपमा दी गयी है। मुष्टि में जितना कुशा आ जाता है उसे बर्हि कहा जाता है।

अर्थवदासाद्य इति सूत्रम्। यावद्भिः पदार्थैरर्थः प्रयोजनं तावतः पदार्थान् द्वन्द्वं प्राक्संस्थान् उदगग्रानग्नेरुत्तरतः पश्चाद्वा आसाद्य इति हरिहरः। अग्नेरुत्तरतस्तानि आसाद्योदग्विलानि च। प्रागग्राणि यदा पश्चात्सादये प्राग्विलानि च। आसादनं तु पात्राणां प्रादेशान्तरके बुधः। अंगुलद्वयमानेन द्वन्द्वं द्वन्द्वान्तरे न्यसेत्। उत्तरतश्चेदुदकसंस्थम् असंभवे प्राक्संस्थं पश्चिमसंस्थमुदक् संस्थमपीतिदेवयाज्ञिकभाष्ये। पवित्रलक्षणम् अनन्तगर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्। पवित्रप्रयोजनम् इन्द्रवज्रं हरेश्चक्रं त्रिशूलं शंकरस्य च। दर्भरूपेण ते त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च।

पुरा वृत्रवधं प्राप्ते रक्तपूर्णा वसुन्धरा। द्वो दर्भौ देवता त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च।
प्रोक्षणी विचारः वारणं पाणिपात्रं च द्वादशांगुलविस्तृतम्। पद्मपत्राकृतिर्वापिप्रोक्षणीपात्रमीरितम्।
आज्यस्थाली कांस्यमयी यद्वा ताम्रमयी तथा। प्रादेशमात्रदीर्घा सा ग्रहीतव्या अव्रणा शुभा।
आज्यस्थाली च कर्त्तव्या तैजसी द्रव्य संभवा। महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च।
आज्यस्थाली प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत्। सुदृढ़ामव्रणां भद्रामाज्यस्थालीं प्रचक्षते।

अर्थवदासाद्य इस सूत्र की व्याख्या करते हुये आचार्य हरिहर कहते हैं जितने पदार्थों की तत्कार्य हेतु आवश्यकता है उतने पदार्थों को अग्नि के उत्तर में प्राक्संस्थ, उदक्संस्थ या पश्चिमसंस्थ रखें। दो-दो अंगुलों के अन्तराल पर प्रत्येक पदार्थों को रखा जायेगा। विद्वान् लोग पात्रों का आसादन प्रादेश मात्र में करने का निर्देश करते है। पवित्र का लक्षण करते हुये कहा गया है कि अनन्तगर्भी कुशाओं के दो दलों के अग्र भाग से प्रादेश मात्र परिमाण से सर्वत्र पवित्र बनाना चाहिये। पवित्र का प्रयोजन इस प्रकार है। इन्द्र के वज्र, हरि के चक्र एवं शंकर के त्रिशूल के रूप में तीन दर्भ होते हैं जिससे पवित्र छेदन किया जाता है। वृत्र वध के समय यह पृथ्वी रक्त पूर्णा हो गयी थी जिसे पवित्र करने के लिये दर्भों की उत्पति हुई। प्रोक्षणी का विचार करते हुये बतलाया गया है कि प्रोक्षणी वारण का बारह अंगुल विस्तृत् होना चाहिये। पद्मपत्र के आकृति वाली भी हो सकती है। आज्यस्थाली कांस्यमयी अथवा ताम्रमयी प्रादेशमात्र दीर्घा एवं छिद्र रहिता होनी चाहिये। किसी धातु की आज्यस्थाली बनाई जा सकती है या मिट्टी की भी सभी प्रकार की आहुतियों में आज्यस्थाली हो सकती है। कामना के अनुसार आज्यस्थाली को बतलाया गया है जो सुदृढ़, अव्रण व देखने में सुन्दर हो।

निरुप्याज्यमिति सूत्रम्। आसादितमाज्यं आज्यस्थाल्यां पश्चादग्नेर्निहितायां प्रक्षिप्य चरुश्चेद्चरुस्थाल्यां प्रणीतोदकमासिच्य आसादितांस्तण्डुलान्प्रक्षिप्य अधिश्रयणं कुर्यात्। तत्राज्यं ब्रह्माधिश्रयति तदुत्तरतः स्वयं चरुमेवं युगपदग्नावारोप्य ज्वलदुल्मुकं प्रदक्षिणमाज्यचर्वोः समन्ताद्भ्रामयेत् अर्द्धश्रिते चरौ। द्वयोः पर्यग्निकरणं कृत्वा दक्षिणहस्तेन स्रुवमादाय प्रांचमधोमुखमग्नौ तापयित्वा सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणेन संमार्गाग्रैर्मूलतो अग्रपर्यन्तं मूलैरग्रमारभ्य अधस्तान्मूलपर्यन्तं सम्मार्जयेत्। पुनः प्रतप्य दक्षिणतो निदध्यात्। आज्यमुत्थाप्य चरोः पूर्वेण नीत्वा अग्नेरुत्तरतः स्थापयित्वा चरुमुत्थाप्य आज्यस्य पश्चिमतो नीत्वा आज्यस्योत्तरतः स्थापयित्वा आज्यमग्नेः पश्चादानीय चरुं चानीय आज्यस्योत्तरतो निधाय उत्पूय अवेक्ष्य अपद्रव्यस्य निरसनं कृत्वा उपयमन कुशानादाय समिधोभ्याधाय तिष्ठन्समिधः अग्नौ प्रक्षिपेत्। लाजहोमे समिद्धोमे उर्ध्वहोमे तथैव च। तिष्ठतैव हि कर्तव्याः स्वाहाकारा अपि ध्रुवम्। ततो प्रोक्षण्युदकेन सर्वेण सपवित्रेण दक्षिणचुलुकेन गृहीतेन अग्निमीशानादि उदगपवर्गं परिषिच्य जुहुयात्। आघारादीन् संस्रव धारणार्थं पात्रं प्रणीताग्न्ययोर्मध्ये निदध्यात्।

आज्यस्थाली में आज्य एवं चरुस्थाली में आसादित चरुपदार्थों को डालकर अधिश्रयण करना चाहिये। आज्य के उत्तर में चरु को अग्नि पर चढ़ाकर जलते हुये उल्मुक से प्रदक्षिण क्रम से आज्य

एवं चरु का पर्यग्निकरण करके इतरथावृत्ति करनी चाहिये। तदनन्तर दाहिने हाथ से स्रुव लेकर अधो मुख अग्नि में तपा कर बायें हाथ में करके दाहिने हाथ से सम्मार्जन कुशा के अग्र भाग से स्रुव के अग्र भाग का मध्य भाग से स्रुव के मध्य भाग का एवं अन्त्य भाग का अन्त्य भाग से मार्जन करना चाहिये। इसके बाद पुनः स्रुव का प्रतपन कर दक्षिण स्थान में रखना चाहिये। आज्य को उठाकर चरु के पूर्व से लाकर अग्नि के उत्तर में स्थापित कर चरु लाकर आज्य के उत्तर में रखें। पवित्रक से उत्पवन करके आज्य का सावधानी पूर्वक निरीक्षण करना चाहिये। यदि उस आज्य में अपद्रव्य हो तो उसे निकाल देना चाहिये। उपयमन कुषाओं को बाये हाथ में लेकर तीन समिधाओं को अग्नि में प्रक्षिप्त करना चाहिये। कारिका में मिलता है कि लाज होम में, समिद्ध होम एवं उर्ध्व होम में खड़े होकर हवन करना चाहिये। तदनन्तर सपवित्रक प्रोक्षणी के जल को चुलू में लेकर अग्नि कोण से प्रदक्षिण क्रम से ईशानादि तक परिषिंचन करना चाहिये। आघारादीन् संस्रव के धारणार्थ पात्र को प्रणीता एवं अग्नि के बीच में रखते है।

पारस्कर गृह्य सूत्र में आता है कि-

अग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य प्रणीय परिस्तीर्यार्थवदासाद्य पवित्रे कृत्वा प्रोक्षणीः संस्कृत्यार्थवत् प्रोक्ष्य निरूप्याज्यमधिश्रित्य पर्यग्निं कुर्यात्। स्रुवं प्रतप्य समृज्याभ्युक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यादाज्यमुद्वास्योत्पूयावेक्ष्य प्रोक्षणीश्च पूर्ववदुपयमनकुशानादाय समिधो- भ्यादाय पर्युक्ष्य जुहुयादेष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः।

लिखा गया है कि प्रणीता के जल को प्रोक्षणी पात्र में तीन बार डालें। फिर प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का मार्जन करें। तदनन्तर प्रोक्षणी पात्र को प्रणीता पात्र वाले आसन पर रखकर प्रणीता का जल सभी आसादित वस्तुओं पर छिड़कें। तदनन्तर यज्ञाग्नि और प्रणीता के बीच में प्रोक्षणी पात्र को रख दें। पुनः घी को देखें , यज्ञाग्नि के पीछे रखे घी को आज्य स्थाली में डालकर आग पर घी को पिघलाने के लिये रखे। उसके बाद पर्यग्नि करें । पर्यग्नि का मतलब जलती हुयी समिधा की लकड़ी को चरुपात्र आच्यस्थाली के चारो ओर घुमाकर पिघला दें। अधोमुख स्रुवा को होमाग्नि में तपाकर मूल भाग से अन्त तक सम्मार्जन कुशा से उसे छाड़कर, प्रणीता के जल से उसे अभिषिंचित कर पहले की ही तरह उसे आग पर फिर से तपाकर वेदी के दाहिनी ओर रख दें। घृतपात्र को आग पर से उतार कर पवित्र कर घी में कोई अपद्रव्य हो तो उसे निकाल दें। फिर उपयमन नामक कुशों को दायें हाथ से उठाकर बायें हाथ में लेकर आग में समिधायें डालकर जल छिड़ककर हवन करें। जहां कहीं भी हवन होगा यही विधि अपनायी जायेगी।

इस प्रकार सामान्य रूप से कुशकण्डिका के विधान के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- .... सर्व पात्राणि प्रणीतादीन्यनुक्रमात्। पूर्वेपौर्व द्विजाः सर्वे ब्रह्माकिमुत दक्षिणे?

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 2-दक्षिणे दानवाः प्रोक्ताः पिशाचो रगराक्षसाः। तेषां संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति ....।

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 3- वेदैकनिष्ठं धर्मज्ञं .... श्रोत्रियं शुचिम्। स्वशाखाठ्यमनालस्यं विप्रं कर्तारमीप्सितम्।

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 4- वस्त्रयुग्मं तथाप्पूरं .... कर्णभूषणम्। अंगुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्यभूषणम्।

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 5- कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे सर्वकर्मणि। विप्राभावे दर्भवटुमाह कुशग्रन्थिमयं .... ब्रह्माणमुपवेशयेत्।

क- विप्रं, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 6- पंचाशता भवेद् ब्रह्मा तदर्द्धेन तु विष्टरः। उर्ध्वकेशो भवेद् .... लम्बकशस्तु विष्टरः।

क- उत्तरे, ख- ब्रह्मा, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 7- दक्षिणावर्तको ब्रह्मा वामावर्तस्तु ....।

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-विष्टरः, घ-केयूरं।

प्रश्न 8- .... दर्भहीना तु विनग्ना प्रोच्यते बुधैः। परिधानं ततः कुर्याद्दर्भेणैव विशेषतः।

क- उत्तरे, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-वेदिका।

प्रश्न 9- एकमेखलके कुण्डे मेखलाधः परिस्तरेत्। द्विमेखले द्वितीयायां तृतीयायां ....।

क- त्रिमेखले, ख- दक्षिणे, ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

प्रश्न 10- अग्निं षोडशभिर्दर्भैः परिस्तीर्य दिशं प्रति। प्रागादीशानपर्यन्तमुदक्संस्था ....।

क- उत्तरे, ख- परिस्तृतिः , ग-कुलीनं, घ-केयूरं।

3.5 सारांश-

इस इकाई में कुश कण्डिका विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आपने किया। कुश कण्डिका के ज्ञान के अभाव में पूर्णिमा आदि के अवसर पर हवन विधियों का आयोजन, विष्णु यज्ञादि अनुष्ठानों के अवसर पर हवनादि का सम्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा ठीक ढंग से नही हो सकता है। क्योकि इसके बिना हवन प्रारम्भ ही नही होगा तो हवन कैसे किया जा सकता है।

कुश कण्डिका का मतलब है कुश से की जाने वाली क्रियायें। अब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि

कुशों को कैसे स्थापित करना चाहिये? उत्तर में आता है कि जिस तरह गृह्य सूत्रों मे लिखा गया है उस प्रकार कुशों को अग्नि कुण्ड या स्थण्डिल के चारो ओर स्थापित करना कुश कण्डिका कहलाता है। पारस्कर गृह्य सूत्र में लिखा गया है कि एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः अर्थात् जहां कही भी हवन होता है वहां इस विधि का प्रयोग करना चाहिये। कुष्कण्डिका ही वह विधि है जिसमें अग्नि का तथा अग्नि में डाले जाने वाले समस्त पदार्थों को सुसंस्कृत किया जाता है। इस प्रकार से विशेष संस्कार सम्पन्न करने वाले इस कुशकण्डिका नामक उपक्रम का सम्पादन किया जाता है तो हमारे द्वारा प्रदत्त आहुति उस देवता को प्राप्त होती है जिसके लिये हमने आहुति प्रदान किया है। कुश कण्डिका का संस्कार होने के कारण घी की आज्य संज्ञा हो जाती है।

कुश कण्डिका में अग्निकुण्ड के चारों तरफ मुष्टि में कुशों को लेकर प्रागग्र करके बिछाना चाहिये। परिस्तरण का प्रयोजन बतलाते हुये कहा गया है कि दर्भहीन वेदिका को नग्न वेदिका माना जाता है। दर्भ वेदिका का परिधान विशेष माना जाता है। एक मेखला वाले कुण्ड में मेखला के अधो भाग में परिस्तरण करना चाहिये। दो मेखला वाले कुण्ड में दूसरी के तथा त्रिमेखला वाले कुण्ड में तीसरी मेखला के नीचे कुशों का आस्तरण करना चाहिये। सोलह कुशाओं का परिस्तरण यानी एक-एक दिशा में चार-चार कुशाओं को बिछाना चाहिये। पूर्व दिशा में उदगग्र, दक्षिण दिशा में प्रागग्र, पश्चिम दिशा में उदगग्र एवं उत्तर दिशा में प्रागग्र ऐसा संस्कार भास्कर में लिखा है। बर्हि का लक्षण बतलाते हुये कहा गया दीर्घ कुशा बर्हि है। जिसका मूल छिन्न हो उस कुशा को भी बर्हि की उपमा दी गयी है। लिखा गया है कि प्रणीता के जल को प्रोक्षणी पात्र में तीन बार डालें। फिर प्रणीता के जल से प्रोक्षणी का मार्जन करें। तदनन्तर प्रोक्षणी पात्र को प्रणीता पात्र वाले आसन पर रखकर प्रणीता का जल सभी आसादित वस्तुओं पर छिड़कें। तदनन्तर यज्ञाग्नि और प्रणीता के बीच में प्रोक्षणी पात्र को रख दें। पुनः घी को देखें , याग्नि के पीछे रखे घी को आज्य स्थाली में डालकर आग पर घी को पिघलाने के लिये रखे। उसके बाद पर्यगिन करें । पर्यगिन का मतलब जलती हुयी समिधा की लकड़ी को चरुपात्र आच्यसथाली के चारो ओर घुमाकर पिघला दें। अधोमुख स्रुवा को होमाग्नि में तपाकर मूल भाग से अनत तक सम्मार्जन कुशा से उसे छाड़कर, प्रणीता के जल से उसे अभिषिंचित कर पहले की ही तरह उसे आग पर फिर से तपाकर वेदी के दाहिनी ओर रख दें।

3.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

दक्षिणतो- दक्षिण की ओर, ब्रह्मासनमास्तीर्य - ब्रह्मा का आसन बिछाकर, तस्याग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि- उस अग्नि के दक्षिण दिशा में, ब्रह्मणे- ब्रह्मा के लिये, आसनं - आसन, वारणादियज्ञीयदारुनिर्मितं पीठमास्तीर्य - वारणादि यज्ञीय लकड़ी का पीठ बनाकर, कुशैः स्तीर्त्वा - कुशा बिछाकर, तत्वज्ञं - तत्व को जानने वाले, ब्राह्मणं - ब्राह्मण को, तदभावे - उसके अभाव में, पंचाशतकुशनिर्मितमुपवेश्य- पचास कुशे का निर्मित करके बैठाया जाय, अग्नेर्दक्षिणतो - अग्नि से दक्षिण तरफ, ब्रह्मासनं - ब्रह्मा का आसन करके कुशे को बिछाना चाहिये, चतुरस्रं - चार भुजाओं वाले, हस्तमात्रं - एक हाथ का, उत्तरे - उत्तर में, सर्व- सभी, पात्राणि- पात्र, प्रणीता- पात्र का नाम, पूर्वेपौर्व - पूर्वापर्य, द्विजाः - द्विज,-

द्विज, दक्षिणे- दक्षिण में, संरक्षणार्थाय- संरक्षण के लिये, तिष्ठति- विराजतान होते है, वेदैकनिष्ठं - केवल वेद में निष्ठा रखने वाला, धर्मज्ञं- धर्म को जानने वाला, कुलीनं- उच्च कुल वाला, श्रोत्रियं - वैदिक, शुचिम्- पवित्र, स्वशाखाठ्यमनालस्यं - अपनी शाखा में आलस्य न रखने वाला, कर्तारमीप्सितम्- कर्म करने की अभिलाषा वाला, ब्रह्मवरणार्थमलंकरणमाह- ब्रह्मा वरण के लिये अलंकरण कहा गया है, वस्त्रयुग्मं - दो वस्त्र, केयूरं - आभूषण का नाम, कर्णभूषणम्- कान का आभूषण, अंगुलीभूषणं - अंगुली का आभूषण, मणिबन्धस्यभूषणम्- मणिबन्ध का आभूषण, कण्ठाभरण- कण्ठ का आभूषण, विप्राभावे - विप्र के अभावमें दर्भवटुमाह- कुशे का वटु कहा गया है, कुशग्रन्थिमयं- कुशा जो गांठ से युक्त हो, विप्रं ब्रह्माणमुपवेशयेत्- उसका विप्र बनाकर ब्रह्मा को उपवेशित करना चाहिये, तल्लक्षणं - उसका लक्षण, पंचाशता- पचास का भवेद् - होता है ,ब्रह्मा- ब्रह्मा, तदर्द्धेन - उसके आधे का, विष्टरः- विष्टर, उर्ध्वकेशो- उपर केश वाला, लम्बकेशस्तु - लम्बा केश वाला, दक्षिणावर्तको- दक्षिण की ओर आवर्तन वाला, वामावर्तस्तु - वामावर्त वाला, प्रणीय- प्रणयन करके, अप - जल, तद्यथा- इस प्रकार, अग्नेरुत्तरतः- अग्नि के उत्तर से, प्रागग्रं- पूर्व की ओर अग्र भाग हो जिसका, कुशैरासनद्वयं - कुशों से दो आसन, कल्पयित्वा- कल्पना करके, द्वादशांगुलदीर्घं - बारह अंगुल लम्बा, चतुरंगुलविस्तारं- चार अंगुल चौड़ा, चतुरंगुलखातं - चार अंगुल का गड्ढा, सव्यहस्ते - बायें हाथ में करके, दक्षिणहस्तोद्धृतपात्रस्थोदकेन- दक्षिण हस्त स्थित पात्र के जल से, पूरयित्वा - पूरा करके, पश्चिमासने - पश्चिम दिशा में आसन रखकर, कर्मप्रदीपे - कर्म प्रदीप नामक ग्रन्थ में, द्वादशांगुलदीर्घेण- बारह अंगुल लम्बा, सगर्तकः- गड्ढे को, प्रस्थमात्रोदकग्राही - प्रस्थ मात्र जल से, शाखाध्ययन- शाखा का अध्ययन, मुष्टिमादाय - मुष्टि में लेकर, दर्भहीना- कुशे से हीन, प्रोच्यते - कहा गया है, बुधैः- विद्वानों के द्वारा, परिधानं - वस्त्र, मेखलाधः- मेखला के नीचे, परिस्तिरेत्- फैलाना चाहिये, द्विमेखले - दो मखला वाले में, द्वितीयायां - दूसरे मेखला पर, तृतीयायां- तीसरे मेखला पर, त्रिमेखले- तीन मेखला वाले में।

3.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

2.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-घ।

2.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

2.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मनोभिलषितव्रतानुवर्णनम्।

2-पारस्कर गृह्य सूत्रम्।

3- अनुष्ठान निधानम्।

4-शब्दकल्पद्रुमः।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-संस्कार भास्करः।

7-पूजन- विधान।

8-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

3.9- सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री-

1- यज्ञ मीमांसा।

2- प्रयोग पारिजात।

3- अनुष्ठान प्रकाश।

4- पूर्त्तकमलाकरः।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1- चरुस्थाली का परिचय बतलाइये।

2- प्रोक्षणी का स्वरूप बतलाइये।

3- यज्ञीय वृक्ष विचार को लिखिये।

4- स्रुव धारण नियम लिखिये।

5- स्रुचि का लक्षण लिखिये।

6- प्रोक्षण की विधि लिखिये।

7- कुश परिस्तरण की विधि लिखिये।

8- कुश कण्डिका की विधि लिखिये।

9- स्रुव संस्कार की विधि लिखिये।

10- कुश वटु बनाने की विधि लिखिये ।

इकाई - 4 हवन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 हवन में मुद्रा आदि विविध विचार

4.3.1 होममुद्राविचारः

4.3.2 कुश कण्डिका कृत्य में विशेष विचार

अभ्यास प्रश्न

4.4 कुश कण्डिका का विधान

4.4.1 कुशकण्डिकाविधानम्

अभ्यास प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हवन की प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कर्मकाण्ड में अनुष्ठानादि की सम्पन्नता हेतु हवन का विधान सर्वविदित है। हवन के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नही हो पाती है। हवन कार्य का प्रारभ अग्नि स्थापन से होता है । अग्नि स्थापन के बाद कुश कण्डिका किया जाता है। कुश कण्डिका के बाद हवन कार्य प्रारम्भ होता ह।

शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो हवन का मतलब है आहुति प्रदान करना। अब यहॉ प्रश्न उपस्थित होता है कि हवन कैसे करना चाहिये? उत्तर में आता है कि जिस तरह गृह्य सूत्रों में लिखा गया है उस प्रकार से किया गया हवन फलदायी माना गया है। पारस्कर गृह्य सूत्र में लिखा गया है कि एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः अर्थात् जहां कही भी हवन होता है वहां इस विधि का प्रयोग करना चाहिये। वस्तुतः हवन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत हवनीय पदार्थ को मन्त्र पाठ के द्वारा अग्नि में प्रदान किया जाता है जिसके बाद अग्नि देवता उस हवि पदार्थ को जिस देवता के लिये प्रदान किया है वहां तक पहुचाते हैं। जिसका फल उस यजमान को प्राप्त होता है। यदि हवन शास्त्रोक्त विधि से नही होगा तो हवनीय पदार्थ अग्नि में ही जल कर राख हो जायेगा लेकिन उस देवता तक वह आहुति नही पहुच पायेगी। इसी प्रक्रिया को ठीक ठंग से जानने एवं करने की प्रक्रिया का नाम हवन है। आज हम लोग अपने आस पास बहुत से लोगों को देखते होगें जा हवन तो करते हैं, परन्तु उसमें प्रदत्त विधियों का अनुपालन नही करते हैं। ऐसी स्थिति में उनको लाभ सही पहुचें इसके लिये आवश्यक है कि हवन की सम्यक् विधि का ज्ञान होता को यानी हवन करने वाले या कराने वाले को हो।

इस इकाई के अध्ययन से आप हवन करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे यज्ञादि कार्यों या अनुष्ठानादि के अवसर किये जाने वाले हवन विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि ।

4.2 उद्देश्य-

अब कुश कण्डिका विचार एवं सम्पादन की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

-कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

-हवन के सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

- हवन के सम्पादन में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

4.3 हवन में मुद्रा आदि विविध विचार -

हवन कैसे किया जाय, इसका उत्तर हमें हवन मुद्रा इत्यादि विचार में मिलेगा। क्योकि हवन का मतलब हम लोग समझते हैं कि किसी भी तरह हवनीय पदार्थो को अग्नि में डालना है। लेकिन ऐसा नही है। अग्नि के प्रकरण में आप देख चुके है कि अग्नि के मुख का परिमाण क्या है और उसी में आहुति डालने से हवन की संज्ञा हो सकेगी। अतः मुद्रा इत्यादि के ज्ञान से हवन करने की विधि का ठीक ज्ञान हो जायेगा जो अधोलिखित है-

4.3.1 होममुद्राविचारः-

इसके अन्तर्गत आपको आहुतियों को प्रदान करने के लिये किस मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये इस विधि का ज्ञान कराया जायेगा। जिससे आप सम्यक् प्रकार से हवन कर सकेगें।

होममुद्रा त्रिधा ज्ञेया मृगी हंसी च सूकरी।

सूकरीसर्वांगुलीभिर्हंसीमुक्तकनिष्ठिका। मृगी कनिष्ठतर्जन्योर्मुद्रात्रयमुदाहृतम्।

यज्ञे शान्ति कल्याणे मृगी हंसी प्रकीर्तिता। अभिचारादिके होमे सूकरी कथिता बुधैः।

मयूरी कुक्कटी हंसी सूकरी च मृगी तथा। पंचमुद्राविजानीयाद्धोमद्रव्यग्रहे बुधैः।

न्युब्जेन पाणिनाद्रव्यं तर्जनी रहितेन यत्। क्रियते हवनं विप्रैर्मयूरीं तां विदुर्बुधाः।

अंगुष्ठयंत्रिताः सर्वा अंगुल्यो तानलक्षिताः। हवनं क्रियते याभिः कुक्कुटी सा प्रकीर्तिता।

विकनिष्ठिका तु हंसी मुकुलाभा च सूकरी। मध्यमानामिकांगुष्ठैर्मृगी चैवोपलक्षिताः।

फलमूलयजौ ज्ञेया मुद्रा श्रेष्ठा शिखण्डिनी। जारमारण कर्त्तव्ये कुक्कुटी तु प्रकीर्तिता।

वश्योच्चाटनपूर्वाणां कर्मणां सूकरी मता। शान्तिके पौष्टिके कार्ये मृगी हंसी तथोत्तमा।

होम मुद्रा का विचार -होम मुद्रा के तीन प्रकार मृगी, हंसी एवं सूकरी बतलाया गया है। सभी अंगुलियों के साथ सूकरी मुद्रा एवं कनिष्ठिका को छोड़कर की गयी हवन की मुद्रा हंसी कहलाती है। कनिष्ठा एवं तर्जनी को छोड़कर अन्य अंगुलियो से की गयी हवन की मुद्रा हंसी के नाम से जानी जाती है। यज्ञ में, शान्ति एवं कल्याण में मृगी एवं हंसी मुद्राओं को रखा गया है। अभिचारादि कर्मों में सूकरी मुद्रा को स्थान दिया गया है। कुशकण्डिका भाष्य के अनुसार मयूरी, कुक्कुटी, हंसी, सूकरी और मृगी ये पांच मुद्रायें बतलायी गयी है। तर्जनी अंगुली को छोड़कर न्युब्ज हाथ से दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम मयूरी विद्वान् लोग कहते है। अंगुष्ठयंत्रित समस्त अंगुलियों से दी जाने वाली हवन

मुद्रा का नाम कुक्कुटी विद्वान् लोग कहते है। बिना कनिष्ठा के दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम हंसी एवं मुकुल आभा सदृश मुद्रा से दी जाने वाली हवन मुद्रा का नाम सूकरी विद्वान् लोग कहते है। मध्यमा, अनामिका एवं अंगुष्ठ से दी जाने वाली हवन मुद्रा को मृगी कहा गया है। फल मूलों के आहुति के लिये शिखण्डिनी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये। जार या मारण के लिये कुक्कुटी मुद्रा का प्रयोग करना चाहिये। वश्य एवं उच्चाटन के लिये सूकरी एवं शान्तिक, पौष्टिक कार्यो के लिये मृगी तथा हंसी मुद्राओं का प्रयोग होना चाहिये।

शाकल्य का प्रमाण- यव से तिल हमेशा दुगूना होना चाहिये। अन्य सौगन्धिक पदार्थ गुग्गलादि यव के समान होना चाहिये। त्रिकारिका में लिखा है यव की अधिकता से आयु का क्षय एवं तिल के बराबर यव की साम्यता से धन का क्षय होता है। सभी कामनाओं की समृद्धि के लिये शाकल्य में तिल की अधिकता होनी चाहिये।

कोटि होमविचारः- मात्स्ये

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयंभुवा। आहुतिभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च।
पूर्ववद्ग्रहदेवानामावाहनविसर्जने। होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च।
कुण्डमण्डप वेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे। कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं तु सर्वतः।
योनिवक्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्। द्वयंगुलाश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षट् सप्तांगुलविस्तृता। कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चांगुलोच्छ्रिता।
गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता। एतत्सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते।
वेदिश्च कोटिहोमे स्याद्वितस्तीनां चतुष्टयम्। चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता।
वप्रप्रमाणं पूर्वोक्त वेदीनां च तथोच्छ्रयः। तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।
पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम्। यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्।
अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापेद्बुधः। अष्टौ तु होमकाः कार्याः वेदवेदांगवंदिनः।
एवं द्वादशविप्रास्तु वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।

लक्षहोम विचार-बिना दिया हुआ लोभ से लेने पर कुल क्षय होता है। कल्याण की इच्छा से यजमान को यथाशक्ति अन्नदान करना चाहिये। अन्नहीन यज्ञ करने से दुर्भिक्ष का फल प्राप्त होता है। लक्ष होम बहु वित्त पूर्वक होना चाहिये। विधान पूर्वक यज्ञ करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। कोटि होम विचार-मात्स्य के अनुसार कोटि होम में, लक्ष होम से सौ गुना दक्षिणा एवं फल कहा गया है। देवताओं का आवाहन एवं विसर्जन पूर्ववत् होता है। स्नान , दान एवं होमादि में वे ही मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। कुण्ड मण्डप वेदियों में कुछ विशेष होता है इसलिये उसका वर्णन किया जा रहा है। कोटि होम में चार हाथ का चतुरस्र होता है। उसी के अनुसार योनि एवं मेखला होती है। दो-दो अंगुलों का विस्तार किया जा सकता है। वितस्ति मात्र योनि होती है। छ सात अंगुल चौड़ी कूर्म पृष्ठ के समान उन्नत चारो ओर से एक अंगुल ऊँची हाथी के ओठ के समान आयताकार छिद्र से संयुक्त योनि का

लक्षण बताया गया है। कोटि होम में उसी प्रकार का चतुरस्र तीनों वप्र एवं वेदियॉं बनानी चाहिये। चार मुख वाला एवं सोलह हाथ का मण्डप बनाना चाहिये। पूर्व द्वार में ऋग्वेद के विद्वान को, दक्षिण में यजुर्वेद के , पश्चिम में सामवेद के एवं उत्तर द्वार में अथर्व वेद के विद्वान को रखना चाहिये। आठ हवन करने वाले वेद वेदांग पारग व्यक्ति होने चाहिये। इस प्रकार से बारह विप्रों को वस्त्र माला से विभूषित करके पूजना चाहिये।

इस प्रकार सामान्य रूप से हवन के मुद्रा के विधान के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- होममुद्रा त्रिधा ज्ञेया .... हंसी च सूकरी।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 2- सूकरीसर्वांगुलीभि..........मुक्तकनिष्ठिका। मृगी कनिष्ठतर्जन्योर्मुद्रात्रयमुदाहृतम्।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 3- यज्ञे शान्ति कल्याणे मृगी हंसी प्रकीर्तिता। अभिचारादिके होमे .... कथिता बुधैः।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 4- मयूरी .... हंसी सूकरी च मृगी तथा। पंचमुद्राविजानीयाद्धोमद्रव्यग्रहे बुधैः।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 5- न्युब्जेन पाणिनाद्रव्यं .... रहितेन यत्। क्रियते हवनं विप्रैर्मयूरीं तां विदुर्बुधाः।

क- तर्जनी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 6- अंगुष्ठयंत्रिताः सर्वा अंगुल्यो तानलक्षिताः। ...... क्रियते याभिः कुक्कुटी सा प्रकीर्तिता।

क- मृगी, ख- हवनं, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 7 विकनिष्ठिका तु हंसी मुकुलाभा च ....। मध्यमानामिकांगुष्ठैर्मृगी चैवोपलक्षिताः।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 8- फलमूलयजौ ज्ञेया मुद्रा श्रेष्ठा शिखण्डिनी। जारमारण कर्त्तव्ये .... तु प्रकीर्तिता।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 9- वश्योच्चाटनपूर्वाणां कर्मणां सूकरी मता। शान्तिके पौष्टिके कार्ये ....हंसी तथोत्तमा।

क- मृगी, ख- हंसी, ग- सूकरी , घ- कुक्कुटी।

प्रश्न 10-वप्रप्रमाणं पूर्वोक्त .... च तथोच्छ्रयः। तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।

क-वेदीनां, ख-अग्नीनां, ग- देवानां, घ- वेदानां।

4.3.2 कामना के अनुसार अग्नि वास एवं ग्रह मुख आहुति विचार-

इसके अन्तर्गत् कामना के अनुसार हवन कब करना चाहिये तथा किस ग्रह के मुख में आहुति जा रही है एवं उसका परिहारादि क्या होगा, इन सभी विषयों पर विचार किया जायेगा।

काम्यहोमादौ वह्निवासस्तत्फलंच-

सैकातिथिर्वारयुताकृताप्ता शेषे गुणेभ्रे भुवि वन्हिवासः।

सौख्यायहोमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च।

सूर्यभात्रित्रिभे चान्द्रे सूर्य विच्छुक्रपंगवः। चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टहोमाहुतिः खले।

अग्निवासस्य विचारः कदा भवेत् इत्यस्मिन् विषये ग्रन्थान्तरे प्राप्यते -

अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा। आहुतिर्वह्निवासश्च विलोक्यौ शान्ति कर्मणि।

अस्यापवादः-

दुर्गाहोमविधौ विवाह समये सीमन्तपुत्रोत्सवे। गर्भाधानविधौ च वास्तु समये विष्णोः प्रतिष्ठादिषु। मौंजीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके। होमे नित्यभवे न दोषकथनं चक्रं चवन्हेरपि। संस्कारेषु विचारो अस्य न कार्यो नापि वैष्णवे। नित्ये नैमित्तिके कार्यो न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः। अत्र संस्कारेषु गर्भाधानादि षोडशसंस्कारेषु, वैष्णवे विष्णुप्रतिष्ठादिषु, नित्ये नित्यहोमे, नैमित्तिके मूलशान्त्यादौ, आब्दिके युगादिनिमित्तहोमे। जपाद्यंगहोमेऽपि न दिनं शोध्यं तस्य स्वतंत्रकालत्वाभावात्।

काम्य होम में अग्नि वास एवं उसका फल- शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में एक जोड़कर वर्तमान तिथि को भी जोड़ दें। उसमें चार का भाग देने पर तीन एवं शून्य के बचने पर भूमि पर, एक शेष में द्युलोक में एवं दो शेष में भूतल में अग्नि का वास माना गया है। भूतल पर अग्निवास का फल सुख, द्यु लोक में वास का फल प्राणनाश एवं भूतल में अग्नि वास का फल अर्थनाश बतलाया गया है। सूर्य के नक्षत्र से तीन- तीन नक्षत्रों को वर्तमान नक्षत्र तक गिनने पर क्रमश सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्र, मंगल, गुरु, राहु एवं केतु के मुख में आहुतियां जाती है ऐसा जानना चाहिये। दुष्टग्रहों के मुख में जाने वाली आहुतियों को नेष्ट माना गया है। अग्नि वास का विचार कब करना चाहिये इस प्रश्न के उत्तर में ग्रन्थान्तर में यह मिलता है कि अग्नि स्थापन के समय या पूर्णाहुति के समय अग्नि वास का विचार करना चाहिये। इसके अपवाद का वर्णन करते हुये कहा गया कि दुर्गा जी के होम में, विवाह में, सीमन्त संस्कार में, पुत्रोत्सव में, गर्भाधान में, वास्तु शान्ति में, विष्णु प्रतिष्ठा में, मौंजी बन्धन में, वैश्वदेव कर्म में, संस्कार में एवं नैमित्तिक कर्मो में अग्नि वास का विचार नही किया जाता है। शान्तिसार में लिखा गया है कि संस्कार में, विष्णु कार्य में, नित्य कर्म में, नैमित्तिक कर्म में एवं अब्द कर्म में अग्नि चक्र का विचार नही करना चाहिये। यहाँ संस्कारों का मतलब षोडश संस्कार, विष्णु कार्य का मतलब श्रीविष्णु जी की प्रतिष्ठा, नित्य यानी प्रतिदिन, नैमित्तिकादि यानी मूल शान्ति आदि

और अव्द कर्म यानी युगादि कर्म से है। जपादि अंग होम में भी दिन के शोधन की आवश्यकता नही है।

दैवाद्धोमकरणे शान्ति विचारः-

क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम्। गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः।
श्वभ्रे निधाय संपुज्य तत्र होमो विधीयते। होमारम्भे प्रथमतो गणपतये ह्याहुतिर्देया।
गणाधिपतये देया प्रथमा तु वराहुतिः। अन्यथा विफलं विप्र भवतीह न संशयः।
आघारवाज्यभागौ तु आज्येनैव यथाक्रमम्। एकैकस्याहुतिं हुत्वा अन्यहोमं ततः परम्।
केवलं ग्रहयज्ञं च सर्वशान्त्यादिकेषु च। प्रणवादिश्च तल्लिंगः स्वाहाकारान्त एव च।
जुहुयात्सर्वदेवानां वेद्यां ये चोपकल्पिताः।
अन्ते पूर्णाहुतिं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्ततः। सन्ततमाज्यधारान्तां पूर्णाहुतिमथाचरेत्।
मूर्द्धानन्दिव मन्त्रेणावशेषघृत धारया। दद्यादुत्थाय पूर्णां वै नोपविश्य कदाचन।

होम करण में शान्ति विचार- क्रूर ग्रह के मुख में आहुति जाने पर शान्ति करके कुटुम्ब युक्त ब्राह्मण को गाय का दान करना चाहिये। जिस ग्रह के मुख में आहुति जा रही हो उस ग्रह की लोहे की प्रतिमा बनाकर अधोमुख रखकर गोमुत्र, मधु, गन्ध इत्यादि से उसकी अर्चना करना चाहिये। कुण्ड में मूर्ति को रखकर पूजित कर होम करना चाहिये। होम के आरम्भ में प्रथम आहुति गणेश जी को देना चाहिये। अन्यथा वह हवन कार्य विफल हो जाता है। आघार एवं आज्य भाग की आहुतियों को यथाक्रम से देना चाहिये। तदनन्तर अन्य हवन करने चाहिये। सभी प्रकार की शान्तियों में ग्रहों को आहुतियाँ देनी चाहिये। आदि में ¬ एवं अन्त में स्वाहा बीच में तल्लिंगक मन्त्रों से आहुतियाँ देनी चाहिये। वेदी पर आवाहित सभी देवताओं को आहुतियाँ देनी चाहिये। अन्त में समुद्रादुर्मिसूक्त से पूर्णाहुति देनी चाहिये। सन्तत आज्यधारान्त पूर्णाहुति देनी चाहिये। अवशेष घृत की धारा मूर्द्धानन्दिव मन्त्र से देना चाहिये। कभी भी पूर्णाहुति बैठकर नही देना चाहिये।

इस प्रकार हवन में कामना के अनुसार अग्निवास का तथा ग्रहों मुख में जाने वाली अहुतिओं के विधान के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- सैकातिथिर्वारयुताकृताप्ता शेषे गुणेभ्रे ....वन्हिवासः।
क- भुवि, ख- दिवि, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 2- सौख्यायहोमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ ....भूतले च।
क- भुवि, ख- दिवि, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 3- सूर्यभात्रित्रिभे .... सूर्य विच्छुक्रपंगवः। चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टहोमाहुतिः खले।
क- भुवि, ख- दिवि, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 4- अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा। आहुतिर्वह्निवासश्च .... शान्ति कर्मणि।
क- भुवि, ख- दिवि, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 5- दुर्गाहोमविधौ विवाह समये सीमन्तपुत्रोत्सवे। गर्भाधानविधौ च .... समये विष्णोः प्रतिष्ठादिषु।
क- वास्तु, ख- दिवि, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 6- मौंजीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके। .... नित्यभवे न दोषकथनं चक्रं चवन्हेरपि।
क- भुवि, ख- होमे, ग- चान्द्रे, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 7- संस्कारेषु विचारो अस्य न कार्यो नापि वैष्णवे। .... नैमित्तिके कार्यो न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः।
क- भुवि, ख- दिवि, ग-नित्ये, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 8- क्रूरग्रहमुखे चैव संजाते हवने शुभे। शान्तिं विधाय गां दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
क- भुवि, ख- दिवि, ग-नित्ये, घ- विधाय।
प्रश्न 9- आयसीं प्रतिमां कृत्वा निक्षिपेत्तामधोमुखीम्। गोमूत्रमधुगन्धाद्यैरर्चितां प्रतिमां ततः।
क- आयसी, ख- दिवि, ग-नित्ये, घ- विलोक्यौ।
प्रश्न 10- श्वभ्रे निधाय संपुज्य तत्र होमो विधीयते। होमारम्भे प्रथमतो गणपतये ह्याहुतिर्देया।
क- भुवि, ख- संपूज्य, ग-नित्ये, घ- होमे।

4.4. हवन

इसमें हवन एवं हवन से संबंधित विषयों को आप जान सकेगें। इसके ज्ञान से अपको हवन से संबंधित सभी विषयों की जानारी हो जायेगी।

4.4.1 हवन में आहुति विचार:-

अधोमुख उर्ध्वपादः प्राङ्मुखो हव्यवाहनः। तिष्ठत्येव स्वभावेन आहुतिः कुत्र दीयते।
सपवित्राम्बुहस्तेन बह्नेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। हव्यवाट् सलिलं दृष्ट्वा विभेति सम्मुखो भवेत्।
आघारौ नासिका ज्ञेया आज्यभागौ च चक्षुषी। वक्त्रश्चोदरकुक्षी च कटी व्याहतिभिः स्मृता।
शिरौ हस्तौ च पादौ च पंचवारुणकाः स्मृताः। प्रजापति स्विष्टकृतं श्रोत्रे द्वे परिकीर्तते।

सधूमो अग्निः शिरो ज्ञेयः निर्धूमश्चक्षुरेव च। ज्वलत्कृशो भवेत्कर्णः काष्ठमग्नेर्मनस्तथा।
अग्निर्ज्वालायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः। तन्मुखं तस्य विज्ञेयं चतुरंगुलमानतः।
प्रज्वलो अग्निस्तथा जिह्वा एतदेवाग्निलक्षणम्। आस्यान्तर्जुहुयादग्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु।

आहुति का विचार- कारिका में अग्नि के स्वभाव का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि अग्नि का मुख नीचे रहता है, पैर ऊपर की ओर रहता है एवं दिशा उसकी प्राङ् मुख होती है। ऐसे स्वभाव वाले अग्नि को आहुति कहाँ दिया जाय? उत्तर में आता है कि सपवित्रक जल से अग्नि की प्रदक्षिणा करने पर हव्यवाट् अग्नि जल को देखकर भयभीत होकर सम्मुख हो जाता है। आघार संज्ञक आहुतियों को नासिका , आज्य संज्ञक आहुतियों को आंख तथा व्याहृतियों को मुख, उदर, कुक्षि एवं कटि माना गया है। पांच वरुण संज्ञक मन्त्रों को शिर, हाथ एवं पादुका कहा गया है। प्रजापति एवं स्विष्टकृत् आहुतियों को दोनों कान माना गया है। सधूम अग्नि को शिर एवं निर्धूम अग्नि को चक्षु माना गया है। मन्दज्वाला को कर्ण एवं काष्ठ को अग्नि का मन माना गया है। जहाँ अग्नि की ज्वाला शुद्ध स्फटिक के समान हो उसके चार अंगुल के मान तक को अग्नि का मुख माना गया है। प्रज्वलित अग्नि एवं जिह्वा को अग्नि का लक्षण बतलाया गया है। विद्वान् व्यक्ति को सभी कर्मों में इसके अन्तर्गत हवन करना चाहिये।

कर्णहोमे भवेद्व्याधिः नेत्रे ऽन्धत्वमुदाहृतम्। नासिकायां मनः पीड़ा मस्तके च धनक्षयः।
अग्निकर्णे हुतं दद्यात् दुर्भिक्षं मरणं ध्रुवम्। नासिकायां मनो दुःखं नेत्रे ग्रामो विनश्यति।
अन्वारम्भे कृते होमे ब्रह्मणा दक्षिणे करे। बहुः काष्ठैसमिन्धिीयादर्च्चिष्मन्तं क्रिया क्षमम्।
स्रुवेणाज्यं गृहीत्वाग्नेः प्रत्यगुत्तरदेशतः। आरभ्यदिशमाग्नेयीमाज्यधारां ऋजुं हरेत्।
मनसा संस्मरेत् स्वाहायुक्तं चैव प्रजापतिम्। नैर्ऋतिं दिशमाश्रित्यमैशानीं पूर्ववत्क्षिपेत्।
तदेन्द्रायपदं स्वाहायुक्तं चोपांशुकं भवेत्। स्वाहेत्याघारयेदेतावाघाराविति भाषितौ।
प्राच्यौ वा जुहुयादेतावृजूसंततमेव च। जुहुयादग्नये स्वाहा सोमायेति तथापराम्।
प्रथमेशानकोणाग्रे द्वितीयाग्नेयकोणगा। सुसमिद्धे ऽथवा वह्नौ होतव्या चोत्तराहुतिः।
भूरादिनवसु स्विष्टकृते चाद्यचतुष्टये। अन्वारम्भो भवेत्तेषु सो ऽन्वारम्भः कुशेन वै।

अग्नि के कान में हवन करने से व्याधि, नेत्र में करने से अन्धत्व, नाक में करने से मन में पीड़ा एवं मस्तक में करने से धन का क्षय होता है। अग्नि के कान में हवन करने से निश्चित रूप से दुर्भिक्ष एवं मरण की प्राप्ति होती है। नासिका में करने से मन में दुःख एवं नेत्र में करने से ग्राम का विनाश का फल बताया गया है। संस्कार भास्कर में वर्णन मिलता है कि अधिक काष्ठ को प्रज्वलित करके दाहिने हाथ से हवन करना चाहिये। स्रुव से आज्य ग्रहण कर अग्नि के प्रत्यग् उत्तर की ओर से हवन करना चाहिये। आग्नेय कोण से आरम्भ कर सीधी आज्य धारा देनी चाहिये। प्रजापति को आहुति देते समय मन से स्मरण कर स्वाहा करना चाहिये। नैर्ऋत्य दिशा से ईशान तक आज्य प्रक्षेपण करना चाहिये। इन्द्र के लिये उपांशु वाचन पूर्वक हवन होना चाहिये। स्वाहा कहते हुये आघार दिया जाता है इसलिये इस आहुति को आघार की उपमा दी गयी है। अथवा पूर्व दिशा में भी ये आहुतियाँ दी जा सकती है।

आघार संज्ञक आहुतियों के अनन्तर अग्नि एवं सोम के लिये आहुतियाँ देनी चाहिये। इसमें प्रथम आहुति ईशान कोण के अग्र भाग में तथा दूसरी आहुति अग्नि कोण में होगी। सुसमिद्ध अग्नि में स्विष्टकृत् नवाहुति एवं चारो आहुतियाँ देनी चाहिये।

इस प्रकार हवन में आहुति विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1-........... उर्ध्वपादः प्राङ्मुखो हव्यवाहनः। तिष्ठत्येव स्वभावेन आहुतिः कुत्र दीयते।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 2- सपवित्राम्बुहस्तेन बह्नेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्। .... सलिलं दृष्ट्वा विभेति सम्मुखो भवेत्।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 3- आघारौ नासिका ज्ञेया आज्यभागौ च चक्षुषी। वक्त्रश्चोदरकुक्षी च .... व्याहृतिभिः स्मृता।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 4- शिरौ हस्तौ च पादौ च पंचवारुणकाः स्मृताः। प्रजापति स्विष्टकृतं .... द्वे परिकीर्तते।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 5- सधूमो .... शिरो ज्ञेयः निर्धूमश्चक्षुरेव च। ज्वलत्कृशो भवेत्कर्णः काष्ठमग्नेर्मनस्तथा।

क- अग्नि, ख- हव्यवाट्, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 6- अग्निर्ज्वालायते यत्र शुद्धस्फटिकसन्निभः।........... तस्य विज्ञेयं चतुरंगुलमानतः।

क- अधोमुखः, ख- तन्मुखं, ग- कटी, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 7- प्रज्वलो अग्निस्तथा .... एतदेवाग्निलक्षणम्। आस्यान्तर्जुहुयादग्नेर्विपश्चित्सर्वकर्मसु।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- जिह्वा, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 8- कर्णहोमे भवेद्व्याधिः नेत्रे ऽन्धत्वमुदाहतम्। नासिकायां ....पीड़ा मस्तके च धनक्षयः।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- जिह्वा, घ- मनः।

प्रश्न 9- अग्निकर्णे .... दद्यात् दुर्भिक्षं मरणं ध्रुवम्। नासिकायां मनो दुःखं नेत्रे ग्रामो विनश्यति।

क- अधोमुखः, ख- हुतं, ग- जिह्वा, घ- श्रोत्रे।

प्रश्न 10-अन्वारम्भे कृते .... ब्रह्मणा दक्षिणे करे। बहुः काष्ठैसमिन्धियादर्च्चिष्मन्तं क्रिया क्षमम्।

क- अधोमुखः, ख- हव्यवाट्, ग- जिह्वा, घ- होमे।

4.4.2 हवन में विविध विचार-

इसमें हवन से संबंधित विविध विचारों का प्रतिपादन किया जायेगा। जिसके कारण आपको हवन करनें की सर्वांगीण विधि का ज्ञान हो सकेगा।

अग्नि पूजा विचारः- मध्येऽ पिगन्धपुष्पादीन् दद्यादग्नेर्नसंशयः। बहिर्नैवेद्यात्रं तु दातव्यमिति निश्चयः।

व्याहृति होमविचारः- आज्येन व्याहृतिर्हुत्वा भूर्भुवस्वरिति क्रमात्। पंचवारुणकं तद्वदन्ते चैव प्रजापतिः।

प्राङ्महाव्याहृतिभिः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः ।

अस्यार्थः हरिहर भाष्ये प्राप्यते यत्र होमे आज्यादन्यद्धविः स्यात्। अत्र हवि शब्देन चरुरेव हविः। यत्र चरुः स्यात् तत्र महाव्याहृतिभिः प्राक् स्विष्टकृद्भवति। अन्यत्रान्तेऽ पीति भाष्यकारः। स्विष्टकृद्धोमः सर्वहोमद्रव्यैः कार्यः।

अन्वाधानविचारः- यद्पि यजुषामन्वाधानं गोभिलहरिहरगदाधरादिभिर्नोक्तत्वात् स्मार्ते कर्मणि नान्वाधानं तथापि शिष्टचारप्राप्तत्वात् सर्वहोमे प्रत्याहुति त्यागस्य कर्तुमशक्यत्वादन्वाधानं कार्यम्।

अग्नि पूजा का विचार- अग्नि की पूजा हेतु अग्नि के बीच में गन्ध पुष्प दिया जा सकता है इसमें संशय नही है। नैवेद्य बाहर रखना चाहिये ऐसा निश्चय किया गया है।

व्याहृति होम विचार- भूर्भुवः स्वः के क्रम से आज्य से व्याहृतियों का हवन करना चाहिये। पाँच वारुण मन्त्रों से एवं अन्त में प्रजापति को आज्य से आहुतियाँ देनी चाहिये। महाव्याहृतियों से पहले स्विष्टकृद्धवि होनी चाहिये ऐसा पारस्कर जी ने लिखा है। इसका अर्थ करते हुये हरिहर जी भाष्य करते हैं जहाँ होम में आज्य से अन्य हवि हो वहाँ। यहाँ हवि शब्द का अर्थ चरु किया गया है। जहाँ चरु हो वहाँ महाव्याहृति से पहले स्विष्टकृद् हवन किया जाता है। स्विष्टकृद्धोम सभी प्रकार के द्रव्यों से किया जा सकता है।

अन्वाधान का विचार- अन्वाधान के बारे में गोभिल, हरिहर एवं गदाधर ने नही लिखा है फिर भी स्मार्त्त कर्म में अन्वाधान शिष्टाचार प्राप्त है। सम्पूर्ण होम में प्रत्येक आहुति में त्याग के विधान की असमर्थता के कारण ऐसा समझा जाना चाहिये।

शाकल्यविचारः- तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा। अन्ये सौगंधिकाः स्निग्धाः गुग्गुलादि यवैः समाः।आयुक्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्। सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि।

लक्षहोमविचारः-अददल्लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुयात्। अन्नदानयथाशक्तिः कर्त्तव्यः भूतिमिच्छताः।

अन्नहीनः कृतो यस्माद्दुर्भिक्षफलदो भवेत्। लक्षहोमस्तु कर्त्तव्यं यथावित्तं भवेद्बहु।

यतः सर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानतः। इति लक्षहोमः।

सूक्तपाठविचारः- पूर्ववद्पूजयेद्भक्त्या वस्त्रावरणभूषणैः। रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पवमानं सुमंगलम्।
पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युदंमुखः। शान्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च।
पावयेद्दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्। सुवर्णमथवैराजं आग्नेयं रुद्रसंहिताम्।
ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्। शान्तिसूक्तं च सौरं च तथा शाकुनकं शुभम्।
पौष्टिकं च महाराज्यमुत्तरेणाप्यर्थवित्। पंचभिर्वापि होमः कार्योऽत्र पूर्ववत्।
स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एवऋषिसत्तम्। अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्।
सर्वान्कामानवाप्नोति ततो विष्णु पदं व्रजेत्।

सूक्त पाठ का विचार- इस अवसर पर रात्रिसूक्त, रौद्र, पवमान सूक्तों को एवं शान्ति मन्त्रों को उत्तर की ओर मुख करके पाठ करना चाहिये। शान्त, शाक्र,सौम्य, कौष्माण्ड एवं शान्ति सूक्त दक्षिण द्वार वाले को पढ़ना चाहिये। सुवर्ण, वैराज, आग्नेय, रुद्रसंहिता, ज्येष्ठसाम एवं शान्ति मन्त्रों को पश्चिम द्वार पर पढ़ना चाहिये। शान्तिसूक्त, सौर, शाकुन, पौष्टिक आदि सूक्तों को उत्तर द्वार पर अथर्व वेदी को पढ़ना चाहिये। अथवा पॉचों सूक्तों से पूर्ववत् हवन, स्नान दानादि करना चाहिये। इस विधि से जो कोटि होम का आचरण करता है वह सभी कामनाओं को प्राप्त करके विष्णु पद को प्राप्त करता है।

विधिहीनाग्नौ हवनविचारः-

क्षुतृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमन्त्रो जुहोति यः। अप्रवृद्धे सधूमे वा सो अन्धः स्याज्जन्मजन्मनि।
स्वल्प रुक्षे स्फुलिंगे वामावर्त्ते भयानक। आर्द्रकाष्ठैश्च सम्पूर्णे फूत्कारवति पावके।
कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्। आहुतिर्जहुयाद्यस्तु तस्य नाशा भवेद्ध्रुवम्।

विधिहीन अग्नि में हवन विचार-

जो पुरुष भूख, प्यास से व्याकुल तथा क्रोध युक्त होकर मन्त्र रहित, पूर्ण रूप से न सुलगी हुयी अथवा धूयें से व्याप्त अग्नि में हवन करता है वह प्रत्येक जन्म में अन्धा होता है। जो पुरुष स्वल्प रूखी चिनगारियों से भरी, जिसकी ज्वालायें बायीं ओर लपक रही हों, जो देखने में भयानक प्रतीत होती हो, जो गीली लकड़ियों से भरी हो, जिसमें फुफुकार का शब्द हो रहा हो, जिसकी ज्वालायें काली हो, जिसमें से दुर्गन्ध निकल रही हो, जो ज्वालायें भूमि का स्पर्श कर रही हों , ऐसी अग्नि में आहुतियां डालना नाश का कारण होता है।

इस प्रकार हवन में विविध विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न- उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- .... पिगन्धपुष्पादीन् दद्यादग्नेर्नसंशयः। बहिर्नैवेद्यात्रं तु दातव्यमिति निश्चयः।

क- मध्ये, ख-आज्येन, ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 2- .... व्याहृतिर्हुत्वा भूर्भुवस्वरिति क्रमात्। पंचवारुणकं तद्वदन्ते चैव प्रजापतिः।

क- मध्ये, ख-आज्येन, ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 3- प्राङ्गहा...............ः स्विष्टकृदन्यच्चेदाज्याद्धविः ।

क- मध्ये, ख-आज्येन, ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 4- तिलास्तु ....ः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा। अन्ये सौगंधिकाः स्निग्धाः गुग्गुलादि यवैः समाः।

क- मध्ये, ख-आज्येन,ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 5-आयुक्षयं ....यवसाम्यं धनक्षयम्। सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि।

क- यवाधिक्यं, ख-आज्येन,ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 6-अददल्लोभतो .... कुलक्षयमवाप्नुयात्। अन्नदानयथाशक्तिः कर्त्तव्यः भूतिमिच्छताः।

क- मध्ये, ख- मोहात्,ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 7- अन्नहीनः कृतो यस्माद्दुर्भिक्षफलदो भवेत्। कर्त्तव्यं यथावित्तं भवेद्बहु।

क- मध्ये, ख-आज्येन,ग- लक्षहोमस्तु, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 8- पूर्ववद्पूजयेद्भक्त्या वस्त्रावरणभूषणैः। .... च रौद्रं च पवमानं सुमंगलम्।

क- मध्ये, ख-आज्येन,ग- व्याहृतिभिः, घ- रात्रिसूक्तं।

प्रश्न 9- .... बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युदंग्मुखः। शान्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च।

क- पूर्वतो, ख-आज्येन,ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

प्रश्न 10- पावयेद्दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्। सुवर्णमथवैराजं .... रुद्रसंहिताम्।

क- मध्ये, ख-आग्नेयं,ग- व्याहृतिभिः, घ- द्विगुणा।

4.5 सारांश-

इस इकाई में हवन विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आपने किया । हवन विधि के ज्ञान के अभाव में पूर्णिमा आदि के अवसर पर हवन विधियों का आयोजन, विष्णु यज्ञादि अनुष्ठानों के अवसर पर हवनादि का सम्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा ठीक ढंग से नही हो सकता है। क्योकि इसके बिना हवन प्रारम्भ ही नही होगा तो हवन कैसे किया जा सकता है।

हवन का मतलब है आहुति प्रदान करना। अब यहॉं प्रश्न उपस्थित होता है कि हवन कैसे करना चाहिये? उत्तर में आता है कि जिस तरह गृह्य सूत्रों में लिखा गया है उस प्रकार से किया गया हवन फलदायी माना गया है। पारस्कर गृह्य सूत्र में लिखा गया है कि एष एव विधिर्यत्र क्वचिद्धोमः अर्थात् जहां कही भी हवन होता है वहां इस विधि का प्रयोग करना चाहिये। वस्तुतः हवन ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत हवनीय पदार्थ को मन्त्र पाठ के द्वारा अग्नि में प्रदान किया जाता है

जिसके बाद अग्नि देवता उस हवि पदार्थ को जिस देवता के लिये प्रदान किया है वहां तक पहुचाते हैं। जिसका फल उस यजमान को प्राप्त होता है। यदि हवन शास्त्रोक्त विधि से नही होगा तो हवनीय पदार्थ अग्नि में ही जल कर राख हो जायेगा लेकिन उस देवता तक वह आहुति नही पहुच पायेगी। इसी प्रक्रिया को ठीक ठंग से जानने एवं करने की प्रक्रिया का नाम हवन है।

मात्स्य के अनुसार कोटि होम में, लक्ष होम से सौ गुना दक्षिणा एवं फल कहा गया है। देवताओं का आवाहन एवं विसर्जन पूर्ववत् होता है। स्नान , दान एवं होमादि में वे ही मन्त्र प्रयुक्त होते हैं। कुण्ड मण्डप वेदियों में कुछ विशेष होता है इसलिये उसका वर्णन किया जा रहा है। कोटि होम में चार हाथ का चतुरस्र होता है। उसी के अनुसार योनि एवं मेखला होती है। दो-दो अंगुलों का विस्तार किया जा सकता है। वितस्ति मात्र योनि होती है। छ सात अंगुल चौड़ी कूर्म पृष्ठ के समान उन्नत चारो ओर से एक अंगुल ऊँची हाथी के ओठ के समान आयताकार छिद्र से संयुक्त योनि का लक्षण बताया गया है। कोटि होम में उसी प्रकार का चतुरस्र तीनों वप्र एवं वेदियॉ बनानी चाहिये। चार मुख वाला एवं सोलह हाथ का मण्डप बनाना चाहिये। पूर्व द्वार में ऋग्वेद के विद्वान को, दक्षिण में यजुर्वेद के , पश्चिम में सामवेद के एवं उत्तर द्वार में अथर्व वेद के विद्वान को रखना चाहिये। आठ हवन करने वाले वेद वेदांग पारग व्यक्ति होने चाहिये।

भूर्भुवः स्वः के क्रम से आज्य से व्याहृतियों का हवन करना चाहिये। पाँच वारुण मन्त्रों से एवं अन्त में प्रजापति को आज्य से आहुतियाँ देनी चाहिये। महाव्याहृतियों से पहले स्विष्टकृद्धवि होनी चाहिये ऐसा पारस्कर जी ने लिखा है। इसका अर्थ करते हुये हरिहर जी भाष्य करते हैं जहाँ होम में आज्य से अन्य हवि हो वहाँ। यहाँ हवि शब्द का अर्थ चरु किया गया है। जहाँ चरु हो वहाँ महाव्याहृति से पहले स्विष्टकृद् हवन किया जाता है। स्विष्टकृद्धोम सभी प्रकार के द्रव्यों से किया जा सकता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

सैका- एक सहित, तिथिर्वारयुता- तिथि और वार को जोड़कर, कृताप्ता- चार का भाग देने पर, शेषे- शेष गुणेभ्रे - तीन या शून्य, भुवि - भूमि पर, वन्हिवासः- अग्नि का वास जानना चाहिये, सौख्याय- सुख के लिये, होमे - हवन में, शशि- एक, युग्म- दो, प्राणार्थनाशौ- प्राण एवं अर्थ का नाश, दिवि- द्यु लोक, भूतले - पाताल लोक में, सूर्यभात्- सूर्य के नक्षत्र से, त्रित्रिभे- तीन तीन नक्षत्र, चान्द्रे- वर्तमान नक्षत्र, सूर्य - सूर्य,वित्- बुध, छुक्र- शुक्र, पंगवः- शनि, चन्द- चनद्रमा, अ्रार- मंगल, इज्य- गुरू, गु- राहु, शिखिनो- केतु, नेष्ट- न इष्ट, होमाहुतिः- हवन की आहुति, खले- पापग्रहों क मुख में, अग्नेः- अग्नि के, स्थापनवेलायां- स्थापन वेला में, पूर्णाहुत्यामथापि वा- अथवा पूर्णाहुति में, आहुतिर्वह्विवासश्च- आहुति औ अग्नि वास, विलोक्यौ - देखना चाहिये, शान्ति कर्मणि- शान्ति कर्म में, अस्यापवादः- इसका अपवाद, दुर्गाहोमविधौ - दुर्गा होम विधि में, विवाह समये - विवाह समय में , सीमन्तपुत्रोत्सवे- सीमन्त संस्कार में, पुत्रोत्सव में, गर्भाधानविधौ - गर्भाधान विधि में वास्तु समये - वासतु शान्ति में विष्णोः प्रतिष्ठादिषु- विष्णु प्रतिष्ठा में, मौंजीबन्धनवैश्वदेवकरणे - मौंजी बन्धन में,

वैश्वदेव करण में,संस्कार- संस्कारों में, नैमित्तिके- नैमित्तिक कर्म में, होमेनित्यभवे- नित्य हवन में, न दोषकथनं - दोष कथन नही किया गया है, चक्रं चवन्हेरपि- अग्नि चक्र का विचार भी, संस्कारेषु - संस्कारों में, विचारो अस्य न - इसका विचार नही, कार्यो - करना चाहिये, नापि वैष्णवे- न ही विष्णु कार्य मेंया वैशणव के यहां, नित्ये - नित्य कार्य, नैमित्तिके कार्यो - नैमित्तिक कार्य में, न चाब्दे - न वार्षिक कार्य में, मुनिभिः स्मृतः- मुनियों के द्वारा स्मृत है, गर्भाधानादि षोडशसंस्कारेषु- गर्भाधानादि षोडशसंसकारों में, वैष्णवे -विष्णुप्रतिष्ठादि में, नित्ये -नित्यहोम में, नैमित्तिके -मूलशान्ति आदि में, आब्दिके - वार्षिक कृत्य में युगादिनिमित्तहोमे- युगादि निमित्तक वन में, जपाद्यंगहोमेऽपि- जपादि अंग होम में भी, न दिनं शोध्यं - दिन का शोधन नही करना चाहिये, तस्य स्वतंत्रकालत्वाभावात्- उसके स्वतंत्र काल के अभाव के कारण, क्रूरग्रहमुखे - क्रूर ग्रह के मुख में, शान्तिं विधाय- शान्ति करके, गां दद्यात्- गाय देना चाहिये, ब्राह्मणाय- ब्राह्मण के लिये, कुटुम्बिने- कुटुम्बियों के लिये, आयसीं - लोहे की, प्रतिमां कृत्वा- प्रतिमा करके, निक्षिपेत्तामधोमुखीम्- अधोमुख करके कुण्ड में डालें, गोमूत्र- गो मुत्र, मधु- मधु, गन्धाद्यैरर्चितां- गन्ध इत्यादि से अर्चित ,श्वभ्रे- गड्ढे में, निधाय- रखकर, संपुज्य- पूजित करके, होमो विधीयते- हवन का विधान करना चाहिये, होमारम्भे- हवन के आरम्भ में, प्रथमतो- पहले, गणपतये - गणपति के लिये, आहुतिर्देया- आहुति देना चाहिये, प्रथमा - पहली, वराहुतिः- श्रेष्ठ आहुति, अन्यथा- नही तो, विफलं - विफल, भवतीह - यह होता है, न संशयः- संशय नही है, आघारवाज्यभागौ - आघार भाग, आज्य भाग, तु- तो, आज्येनैव- घी से ही, यथाक्रमम्- क्रम के अनुसार, एकैकस्याहुतिं हुत्वा- एक एक आहुति का हवन करके, अन्यहोमं - अन्य होम, ततः परम्- उसके बाद, केवलं - केवल, ग्रहयज्ञं - ग्रह यज्ञा, च- और, सर्वशान्त्यादिकेषु - सभी प्रकार की शान्तियों में, जुहुयात्सर्वदेवानां - सभी देवताओं को हवन करे, वेद्यां- वेदी पर, ये - जो, चोपकल्पिताः- आवाहित स्थापित, अन्ते - अन्त में, पूर्णाहुतिं- पूर्णाहुति को, हुत्वा- हवन करके, समुद्रादूर्मिसूक्ततः- समुद्रादूर्मि सूक्त से, सन्ततमाज्यधारान्तां- लगातार घी की धारा, आचरेत्- आचरण करना चाहिये।

4.7अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

4.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-क।

4.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-घ।

4.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-घ।

4.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-क, 10-ख।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मनोभिलषितव्रतानुवर्णनम्।

2-पारस्कर गृह्य सूत्रम्।

3- अनुष्ठान निधानम्।

4-शब्दकल्पद्रुमः।

5-आह्निक सूत्रावलिः।

6-संस्कार भास्करः।

7-शान्ति- विधान।

8-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

4.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- यज्ञ मीमांसा।

2- प्रयोग पारिजात।

3- अनुष्ठान प्रकाश।

4- पूर्त्तकमलाकरः।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- अग्नि का परिचय बतलाइये।

2- शाकल्य का स्वरूप बतलाइये।

3- विधि हीन अग्नि में हवन विचार को लिखिये।

4- कोटि होम का नियम लिखिये।

5- अग्निवास का विचार लिखिये।

6- ग्रह मुख आहुति विचार लिखिये।

7- पापग्रह मुख आहुति का परिहार लिखिये।

8- हवन में मुद्रा का विचार लिखिये।

9- हवन में आहुति विचार लिखिये।

10- कोटि होम विचार लिखिये।

इकाई - 5 बलि विधान एवं पूर्णाहुति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 हवन में मुद्रा आदि विविध विचार

5.3.1 होममुद्राविचारः

5.3.2 कुश कण्डिका कृत्य में विशेष विचार

अभ्यास प्रश्न

5.4 कुश कण्डिका का विधान

5.4.1 कुशकण्डिकाविधानम्

अभ्यास प्रश्न

5.5 सारांश

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में बलि विधान एवं पूर्णाहुति की प्रविधियों का अध्ययन आप करने जा रहे हैं। इससे पूर्व की प्रविधियों का अध्ययन आपने कर लिया होगा। कर्मकाण्ड में अनुष्ठानादि की सम्पन्नता हेतु बलि विधान एवं पूर्णाहुति का विधान सर्वविदित है। पूर्णाहुति के अभाव में किसी भी अनुष्ठान की पूर्णता नही हो पाती है। इस कार्य का प्रारभ अग्नि स्थापन से होता है । अग्नि स्थापन के बाद कुश कण्डिका किया जाता है। कुश कण्डिका के बाद हवन कार्य प्रारम्भ होता है। उसके समस्त हवन करके बलि विधान कर पूर्णाहुति प्रदान करने से अनुष्ठान पूर्ण होता है।

शास्त्र कहता है कि पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति अर्थात् पूर्णाहुति से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। संसार के समस्त मानव अपने अपने मनोकामनाओं की प्रपूर्ति के लिये विविध यत्न करते रहते हैं जिनमें कर्मकाण्ड के सहारे भी लोग मनोकामनाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं। शास्त्रीय विधि को गीता में सर्वश्रेष्ठ विधि कहा गया है इसलिये भारतीय मनीषा पौरोहित्य के देव पूजनादि कर्मों का सम्पादन कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करती हैं। अनुष्ठानादि कार्यों को शास्त्रीय विधि के अन्तर्गत इसलिये रखा गया है क्योकि इनका एक क्रम और नियम होता है जो गृह्सूत्रादि ग्रन्थों से प्रमाणित होता है। किसी भी कर्मकाण्ड का आरम्भ जब हम करते है तो जब तक पूर्णाहुति नही हो जाती है तब तक वह अनुष्ठान पूर्ण नही माना जाता है। पूर्णाहुति के अनन्तर ही अनुष्ठान पूर्ण फल देना प्रारम्भ करता है। इसलिये यह परम आवश्यक है कि पूर्णाहुति की सम्यक् विधि का ज्ञान प्राप्त किया जाय तथा सम्यक् विधि से उसका सम्पादन किया जाय। इसके साथ साथ बलि भी देने की परम्परा है जो दश दिक्पालों, नवग्रहादि क्षेत्रपालां को प्रदान किया जाता है जो अनिवार्य है।

इस इकाई के अध्ययन से आप बलिदान एवं पूर्णाहुति करने की विधि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकेगें। इससे यज्ञादि कार्यों या अनुष्ठानादि के अवसर किये जाने वाले बलिदान एवं पूर्णाहुति विषय के अज्ञान संबंधी दोषों का निवारण हो सकेगा जिससे सामान्य जन भी अपने कार्य क्षमता का भरपूर उपयोग कर समाज एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगें। आपके तत्संबंधी ज्ञान के कारण ऋषियों एवं महर्षियों का यह ज्ञान संरक्षित एवं सवंर्धित हो सकेगा। इसके अलावा आप अन्य योगदान दें सकेगें, जैसे - कल्पसूत्रीय विधि के अनुपालन का सार्थक प्रयास करना, भारत वर्ष के गौरव की अभिवृद्धि में सहायक होना, सामाजिक सहभागिता का विकास, इस विषय को वर्तमान समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी बनाना आदि।

5.2 उद्देश्य-

अब बलिदान एवं पूर्णाहुति के विचार एवं सम्पादन की आवश्यकता को आप समझ रहे होगें। इसका उद्देश्य भी इस प्रकार आप जान सकते हैं।

-कर्मकाण्ड को लोकोपकारक बनाना।

-बलिदान एवं पूर्णाहुति के सम्पादनार्थ शास्त्रीय विधि का प्रतिपादन।

- बलिदान एवं पूर्णाहुति के सम्पादन में व्याप्त अन्धविश्वास एवं भ्रान्तियों को दूर करना।

-प्राच्य विद्या की रक्षा करना।

-लोगों के कार्यक्षमता का विकास करना।

-समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना।

5.3 बलिदान एवं पूर्णाहुति में विविध विचार -

बलिदान एवं पूर्णाहुति कैसे किया जाय, इसका उत्तर हमें पूर्णाहुति इत्यादि विचार में मिलेगा। क्योकि पूर्णाहुति का मतलब हम लोग समझते हैं कि किसी भी तरह पूर्णाहुति को अग्नि में डालना है। लेकिन ऐसा नही है। पूर्व के के प्रकरण में आप देख चुके है कि अग्नि के मुख का परिमाण क्या है और उसी में आहुति डालने से हवन की संज्ञा हो सकेगी, उसी में पूर्णाहुति भी डाली जाती है। अतः इसके के ज्ञान से पूर्णाहुति करने की विधि का ठीक ज्ञान हो जायेगा जो अधोलिखित है-

5.3.1 होमान्त कृत्य विचारः-

इसके अन्तर्गत आपको हवनान्त कौन से कृत्य है जिनमें बलिदान एवं पूर्णाहुति भी सम्मिलित है को बताने का प्रयास किया जायेगा।जिससे आप सम्यक् प्रकार से हवनान्त कृत्य कर सकेगें।

होमावसाने कृत् तूर्यनादौ गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम्। आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः।

पूर्णाहुतिमथो हुत्वा बर्हिहोमादिकं चरेत्।

बर्हिहुत्वा प्राश्नाति इति सूत्रमस्ति। सर्वहोमं हुत्वा शेषं प्राशनमिति कात्यायनेनोक्तम्। अस्य सूत्रस्य व्याख्यायां श्री हरिहरेनुक्तं सर्वेषामाहुतीनां होमद्रव्यं स्रुवेऽ वशेषितं संस्रवत्वेन प्रसिद्धं पात्रान्तरे प्रक्षिप्यते तत्प्राश्यम्।

ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचा वाथ स्रुवेण वा। अंकनं कारयेत्तेन शिरः कण्ठांसकेषु च।

नारदः- श्रेयः सम्पाद्य दानं च अभिषेको विसर्जनम्।। विप्रशिषः प्रगृह्णीयात्तान्मिष्टान्नेन भोजयेत्।

ब्राह्मणभोजनसंख्या-

शान्तौ वक्ष्ये भोजयेत् होमाद्विप्रान्दशांशतः। उत्तमं तद्भवेद् कर्म तत्वांशेन तु मध्यमम्।

होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधममं तु तत्। शान्तेर्द्विगुणितं विप्रं भोजनं स्तम्भने मतम्।

त्रिगुणं द्वेषणोच्चाटे मारणे होम सम्मितम्।

एकं एकाहुतौ विप्रं होमं त्वन्नेन भोजयेत्। अत्यर्थो मध्यमश्चापि विप्रमेकं शताहुतौ।

सहस्रस्याहुतेर्वैकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत्। अन्यथा दहति क्षिप्रं तद्राष्ट्रं नात्र संशयः।

अतो दातुं अशक्तो यो दक्षिणां चान्नमेव वा। जपै प्रणामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तर्पयेद्गुरुन्।

दक्षिणाविचारः-

यज्ञो दक्षिणया सार्द्धं पुत्रेण च फलेन च। कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः।

कृत्वा कर्म च तस्यैव तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्। तत्कर्मफलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने।

मुहूर्त्ते समतीते च भवेच्छतगुणा च सा। त्रिरात्रे तद्दशगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः।

मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्द्धते। संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत्।

कर्म्म तद्यजमानानां सर्वं च निष्फलं भवेत्। स ब्रह्मस्वापहारी च न कर्मार्हो अशुचिर्नरः।

होमान्त कृत्य विचार-

होमावसान में पुष्प धूपादि से बलि की पूजा करके लोकपतियों को आवाहित कर बलिदान देना चाहिये। तदनन्तर पूर्णाहुति देकर बर्हिहोम करना चाहिये। सूत्र में बर्हि हवन करने के बाद प्राशन करने का विधान दिया है। इसकी व्याख्या करते हुये हरिहर जी ने लिखा है सभी आहुतियों का होमावशेष संस्रव के रूप में जो पात्रान्तर में रखा गया है उसे प्राशन करना चाहिये। स्रुचि अथवा स्रुव से ईशान की ओर से भस्म धारण शिर, कण्ठ एवं कन्धे में करना चाहिये। नारद जी कहते हैं उसके बाद श्रेय का दान सम्पादित करके अभिषेक एवं विसर्जन करना चाहिये। तदनन्तर विप्र से आशीष ग्रहण करके उनको मिष्ठान्न का भोजन कराना चाहिये। ब्राह्मण भोजन संख्या पर विचार करते हुये कहा गया है कि हवन का दशांश ब्राह्मण भोजन कराना शान्ति के कार्यो में उत्तम माना गया है। चौबीसवाँ अंश मध्यम एवं शतांश अधम माना गया है। शान्ति कर्म का दुगूना स्तम्भन कर्म में ब्राह्मणभोजन का विधान है। द्वेषण, उच्चाटन एवं मारण में तिगूना की व्यवस्था बतलायी गयी है। एक आहुति करने पर एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये। सौ आहुतियॉ देकर एक ब्राह्मण को भोजन कराना मध्यम पक्ष है। एक हजार आहुतियाँ देकर एक ब्राह्म को भोजन कराने का पक्ष जघन्य पक्ष कहलाता है। ऐसा नही करने पर वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है। दक्षिणा अथवा अन्न का दान देने में जो असमर्थ होते हैं उन्हें चाहिये कि जप से, प्रणाम से, स्तोत्र से अपने आचार्य को तृप्त करें।

सदक्षिणा वाला यज्ञ पुत्र एवं फल को देने वाला होता है। मुनि लोग कहते है कि कर्म सम्पन्न कर तुरंत दक्षिणा देनी चाहिये। एक मुहूर्त्त बीत जाने पर सौ गूना बढ़ जाता है। तीन रात बीतने पर दश गुना, सात दिन बीतने पर उसका दोगुना, एक मास बीतने पर लाख गुना, एक वर्ष बीतने पर तीन करोड़ गुना दक्षिणा हो जाती है। यजमान का किया गया कर्म सब निष्फल हो जाता है। वह यजमान ब्रह्म धन का अपहर्ता और समस्त कर्मो के लिये अपवित्र माना जाता है ।

इस प्रकार हवन में अन्तिम कृत्य यानी हवनान्त कृत्य विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- होमावसाने कृत् तूर्यनादौ गुरुर्गृहीत्वा ....।

आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 2- पूर्णाहुतिमथो .... बर्हिहोमादिकं चरेत्।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 3- ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचा वाथ .... वा। अंकनं कारयेत्तेन शिरः कण्ठांसकेषु च।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 4- श्रेयः सम्पाद्य .... च अभिषेको विसर्जनम्।। विप्रशिषः प्रगृह्णीयात्तान्मिष्टान्नेन भोजयेत्।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 5- शान्तौ वक्ष्ये भोजयेत् होमाद्विप्रान्दशांशतः। .... तद्भवेद् कर्म तत्वांशेन तु मध्यमम्।

क- उत्तमं, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 6- होमाच्छतांशतो विप्रभोजनं त्वधममं तु तत्। शान्तेर्द्विगुणितं .... भोजनं स्तम्भने मतम्।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- विप्रं, ग- स्रुवेण, घ- दानं।

प्रश्न 7-त्रिगुणं द्वेषणोच्चाटे मारणे होम सम्मितम्।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- होम, घ- दानं।

प्रश्न 8-एकं एकाहुतौ विप्रं होमं त्वन्नेन भोजयेत्। अत्यर्थो मध्यमश्चापि .... शताहुतौ।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- विप्रमेकं।

प्रश्न 9-सहस्रस्याहुतेर्वैकं जघन्योऽपि प्रभोजयेत्। अन्यथा .... क्षिप्रं तद्राष्ट्रं नात्र संशयः।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दहति।

प्रश्न 10-अतो दातुं अशक्तो यो दक्षिणां चान्नमेव वा। जपै प्रणामैः स्तोत्रैश्च तोषयेत्तर्पयेद्गुरुन्।

क- बलिपुष्पधूपम्, ख- हुत्वा, ग- स्रुवेण, घ- दातुं।

5.3.2 पुरश्चरणीयानुष्ठानस्य विचारः-

आदौ भूमेः परिग्रहणं कुर्यात्। ग्रामात्क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ वा स्वेच्छया चयनं कृत्वा तस्य क्षेत्रस्य कीलनं कुर्यात्। तत्र विधिवतं क्षेत्रपालादिकं प्रपूज्य दिग्पतिभ्यो बलिं दद्यात्। पुरश्चरणकर्ता स्नानादिकं कृत्वा हरिस्मरणं कुर्यात्।

शयीत कुशशैयायां प्रार्थयेद्वृषभध्वजम्। भगवन्देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन।

इष्टानिष्टे समाचक्ष्व मम सुप्तस्य शाश्वतः। इत्यादिभिः शिवं प्रार्थ्य निद्रां कुर्यान्निराकुलः।

स्वप्नं दृष्टं निशि प्रातर्गुरवे विनिवेदयेत्। आदौ कुर्याद्व्रतं मन्त्री देहशोधनकारकम्।
पुरश्चर्यां ततः कुर्यात् समस्तफलभाग्भवेत्। पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारकम्।
स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद्विजः। केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा अप्लुतः शुचिः।
तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत् वाग्यतः। यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।
व्याहृतित्रयसंयुक्ता गायत्रीं चायुतं जपेत्। नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा।
बिना जप्त्वा तु गायत्री तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।

पुरश्चरणीय अनुष्ठान का विचार- पुरश्चरण हेतु सर्वप्रथम भूमि का चयन करना चाहिये। गाँव से एक कोश दूर का स्थान या नदी का तट इत्यादि स्वेच्छा से चयनित करना चाहिये। चयनित क्षेत्र का कीलन करके विधिवत् क्षेत्रपालादि को बलिदान दे। पुरश्चरण कर्ता पूर्व दिन में स्नानादि करके हरि का स्मरण करे, कुश की शैया पर भगवान शिव की प्रार्थना करके सोवे। रात्रि में यदि कोई स्वप्न देखे तो उसको गुरू को निवेदित करे। मन्त्र सिद्धि करने वाले मन्त्री को पहले व्रत करके देह शुद्धि करना चाहिये। उसके बाद पुरश्चरण का फल मिलता है। पुरश्चरण के पूर्व किये जाने वाले कृत्य सिद्धिकारक होते हैं इसलिये उन कृत्यों का सम्पादन नियम पूर्वक करना चाहिये। स्वाध्याय का अभ्यास करते हुये प्राजापत्य व्रत का आचरण करे। बाल, दाढ़ी व नख इत्यादि कटवाकर पवित्र होकर वाणी पर संयम रखते हुये दिन एवं रात बितावें। किसी भी मन्त्र का पुरश्चरण करना हो महाव्याहृतियों से संयुक्त गायत्री मन्त्र का दश हजार जप करना चाहिये। नृसिंह, वराह, सूर्य आदि देवताओं का ध्यान एवं पूजन तथा भूमिगायत्री मन्त्र के जप के बिना सब कुछ किया हुआ निष्फल हो जाता है इसलिये गायत्री मन्त्र का जप भी करना चाहिये।

निष्कृतिर्नहि वेदानां मन्त्राणां कलिदोषतः। कलिदोषनिवृत्यर्थं गायत्रीमाश्रयेद्विजः।
गायत्री मन्त्र सिद्ध्यर्थं गायत्रीं त्र्ययुतं जपेत्। सर्वेषां वेद मन्त्राणां सिद्ध्यर्थं लक्षकं जपेत्।
प्रातरुत्थाय शिरसि ध्यात्वा गुरुपदाम्बुजम्। आवश्यकं विनिर्वर्त्य स्नातुं यायात्सरित् तटे।
देशिको विधिवत् स्नात्वा कृत्वापौर्वाह्निकी क्रियाः। यायादलंकृतो मौनी यागार्थं यागमण्डपम्।
गृहद्वारमथागत्य द्वारपूजां समाचरेत्। द्वारमस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य गणेशं चोर्ध्वतो यजेत्।
महालक्ष्मी दक्षभागे वामभागे सरस्वतीम्। पुनर्दक्षे यजेद्विघ्नं गंगां च यमुनामपि।
पुनर्वामे क्षेत्रपालं स्वः सिन्धु यमुने अपि। पुनर्दक्षे तु धातारं विधातारं तु वामतः।
तद्वन्निधिशंखपद्मौ ततो अर्चेद्वारपालकान्। द्वारपूजानन्तरं मण्डपं प्रविशेत्।

अर्चनमन्दिरे प्राङ्मुखोदङ्मुखं वा पद्मासनासीनो भूत्वा सर्वान् सम्भारान् स्वदक्षिणे संस्थाप्य करयोः प्रक्षाल्य घृतदीपान् प्रज्वालयेत्। ततो कृतांजलिपुटो भूत्वा वामदक्षिणपार्श्वयोः गुरुं गणेशं च नत्वा भूतशुद्धिं समाचरेत्।

कलि के दोष के प्रभाव से वेद मन्त्र भी गायत्री मन्त्र का आश्रय करते है इसलिये कलि दोष की

निवृत्ति के लिये गायत्री का आश्रय करना चाहिये। गायत्री मन्त्र की सिद्धि के लिये तीन अयुत गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये। सभी वेद मन्त्रों की सिद्धि के लिये एक लाख जप करना चहिये। प्रातः काल उठकर श्री गुरुचरणकमलों का ध्यान कर आवश्यक कार्य का सम्पादन कर किसी नदी के तट पर स्नान करके पौर्वान्हिकी क्रिया का सम्पादन करके अलंकृत होकर मौन पूर्वक यागमण्डप में आवे। याग मण्डप के गृहद्वार पर आकर द्वारपूजा का आचरण करे। द्वार पर श्री गणेश जी की वन्दना करके दाहिने भाग में महालक्ष्मी एवं बायें भाग में महासरस्वती की अर्चना करनी चाहिये। पुनः दाहिने गंगा, यमुना एवं बायें क्षेत्रपाल, सिन्धु एवं यमुना का ध्यान करे। दायें बायें क्रम से धाता एवं विधाता की भी वन्दना करें। उसी प्रकार निधि एवं शंख इत्यादि की पूजा करके द्वारपालों की पूजा करें। द्वारपूजा के अनन्तर पूजा मण्डप में प्राच्य या उदिच्य मुख होकर पद्मासन से बैठकर सभी सामग्रियों को अपने दक्षिण भाग में स्थापित करके हस्तप्रक्षालन पूर्वक घृतदीप का प्रज्वालन करें। तदनन्तर अंजलि बनाकर बायें एवं दायें भाग में गुरु एवं गणेश जी को नमस्कार करके भूतशुद्धि का आचरण करें।

देवं भूत्वा यजेद्देवं नादेवो देवमर्चयेत्। देवार्चायोग्यताप्राप्त्यै भूतशुद्धिं समाचरेत्।

भूतशुद्धिं विधायैवप्राणस्थापनमाचरेत्। भूतशुद्धिविहीनेन कृता पूजा अभिचारवत्।

विपरीतफलं दद्यादभक्त्यापूजनं यथा। भूतशुद्धिं कृत्वा कूर्मचक्रस्य स्थापन पूर्वकं दीपस्थापनं कृत्वा मन्त्राणां दशसंस्काराः कुर्यात्।

देवता बनकर देवता का यजन करें। अदेव बनकर देवता की अर्चना न करे। देवार्चा की योग्यता प्राप्ति के लिये भूतशुद्धि का आचरण करना चाहिये। भूतशुद्धि का विधान करके प्राणस्थापन करना चाहिये। भूतशुद्धि के बिना की गयी पूजा अभिचार के समान होती है। अभक्ति पूर्वक पूजन करने से विपरीत फल की प्राप्ति होती है। भूतशुद्धि करके कूर्मचक्र की स्थापना करके दीप स्थापन पूर्वक मन्त्र के दश संस्कार करने चाहिये।

इस प्रकार पुरश्चरणीय अनुष्ठानों के हवन में कृत्य विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- .... कुशशैयायां प्रार्थयेद्वृषभध्वजम्। भगवन्देवदेवेश शूलभृद्वृषवाहन।

क- शयीत, ख- मम, ग- आदौ, घ- कर्मर्णां।

प्रश्न 2-इष्टानिष्टे समाचक्ष्व .... सुप्तस्य शाश्वतः। इत्यादिभिः शिवं प्रार्थ्य निद्रां कुर्यान्निराकुलः।

क- शयीत, ख- मम, ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 3- स्वप्नं दृष्टं निशि प्रातर्गुरवे विनिवेदयेत्। .... कुर्याद्व्रतं मन्त्री देहशोधनकारकम्।

क- शयीत, ख- मम, ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 4-पुरश्चर्यां ततः कुर्यात् समस्तफलभाग्भवेत्। पुरश्चरणमादौ च .... सिद्धिकारकम्।

क- शयीत, ख- मम, ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 5-स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद्विजः। केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा .... शुचिः।

क- अप्लुतः, ख- मम, ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 6-तिष्ठेदहनि .... तु शुचिरासीत् वाग्यतः। यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।

क- शयीत, ख-रात्रौ , ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 7-व्याहृतित्रयसंयुक्ता .... चायुतं जपेत्। नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा।

क- शयीत, ख- मम, ग- गायत्रीं, घ- कर्मणां।

प्रश्न 8- बिना .... तु गायत्री तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।

क- शयीत, ख- मम, ग- आदौ, घ- जप्त्वा।

प्रश्न 9- पुनर्वामे क्षेत्रपालं .... सिन्धु यमुने अपि। पुनर्दक्षे तु धातारं विधातारं तु वामतः।

क- शयीत, ख- स्वः, ग- आदौ, घ- कर्मणां।

प्रश्न 10- तद्वन्निधिशंखपद्मौ ततो अर्चेद्द्वारपालकान्। द्वारपूजानन्तरं .... प्रविशेत्।

क- शयीत, ख- मम, ग- मण्डपं, घ- कर्मणां।

5.4.1 पूर्णाहुति विचारः-

चतुर्गृहीतमाज्यं तद्गृहीत्वा स्रुचि मध्यतः।
वस्त्रतांबूलपूंगादिफलपुष्पसमन्विताम्।
अधोमुखस्रुवच्छन्नां गन्धाक्षतसमन्विताम्।
पूर्व दक्षिणहस्तेन पश्चाद्वामेन पाणिना।
अग्रमध्यममध्यस्तं मूलमध्यममध्यतः।
पाणिद्वयेन होतव्य पाणिरेको निरर्थकः।
गृहीत्वाथस्रुवं कर्ता शंखसन्निभमुद्रया।
वामस्तनान्तमानीय नाभिमूलात्स्रुचं ततः।
सप्तेत्यनुवाकान्ते मखे सूक्तान्विशेषतः।
श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्।
महावैश्वानरं चापि चमकानि ततः पठेत्।
विवाहादि क्रियायां च शालायां वास्तुपूजने।
नित्यहोमे वृषोत्सर्गे न पूर्णाहुतिमाचरेत्।

पूर्णाहुति विचार- स्रुचि के मध्य में आज्य रखकर उसमें वस्त्र, तांबूल, पूंगीफल, पुष्प समन्वित पूर्णाहुति रखे। उसको अधोमुख स्रुव से आच्छन्न करके गन्धाक्षत से समन्वित करके दाहिना हाथ पूर्व में एवं बाया हाथ उसके पश्चात् होना चाहिये। ये हाथ स्रुचि के आगे एवं मध्य के मध्य में तथा मूल एवं मध्य के मध्य में होना चाहिये। हमेशा पूर्णाहुति दोनों हाथों से दी जानी चाहिये। एक हाथ से दी गयी पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। शंख के समान मुद्रा बनाकर स्रुचि को वामस्तनान्त तक रखना चाहिये। सप्तते अनुवाक्, आग्नेय सूक्त, वैष्णव, रौद्र, एन्दव, महावैश्वानर एवं चमक मन्त्रों को पढ़ना चाहिये। विवाहादि क्रिया में, शालापूजन में, वास्तुपूजन में, नित्यहोम में एवं वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नही दी जाती है।

इस प्रकार पुर्णाहुति के कृत्य विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- चतुर्गृहीतमाज्यं तद्गृहीत्वा .... मध्यतः।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 2-वस्त्रतांबूलपूंगादिफल.........समन्विताम्।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 3-अधोमुखस्रुवच्छन्नां ....साक्षतसमन्विताम्।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 4- पूर्व दक्षिणहस्तेन पश्चाद्वामेन ....।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 5-अग्रमध्यममध्यस्तं ......मध्यममध्यतः।

क- मूल, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 6- पाणिद्वयेन .... पाणिरेको निरर्थकः।

क- स्रुचि, ख- होतव्यो, ग-गन्ध, घ- पाणिना।

प्रश्न 7-गृहीत्वाथस्रुवं .... शंखसन्निभमुद्रया।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-कर्ता, घ- पाणिना।

प्रश्न 8-वामस्तनान्तमानीय नाभिमूलात्........ ततः।

क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- स्रुचं।

प्रश्न 9-सप्तेत्यनुवाकान्ते .... सूक्तान्विशेषतः।
क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-मखे, घ- पाणिना।
प्रश्न 10-श्रावयेत्सूक्तमाग्नेयं .... रौद्रमैन्दवम्।
क- स्रुचि, ख- पुष्प, ग-गन्ध, घ- वैष्णवं।

5.4.2 पूर्णाहुति में मन्त्र संस्कार-

मन्त्राणां संस्काराः-

मन्त्राणां दश कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धदायिनः। जननं जीवनं पश्चात् ताडनं बोधनं तथा।
अभिषेको विमलीकारणाप्यायने पुनः। तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।
मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम्। प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णांजपेत्सुधीः।
एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रविशारदाः।
मन्त्रवर्णान्समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसां प्रत्येकं वायुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम्।
विलिख्यमन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः। तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद्वातेन बोधनम्।
स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्रार्णसंख्यया। अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिंचेद्विशुद्धये।
संचिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मंत्रेणनिर्द्दहेत्। मन्त्रेमलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम्।
तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डो ज्येतिर्मनुर्मतः। कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं प्रोक्षणं मनोः।
तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनं मतम्। मन्त्रेणवारिणा मन्त्रतर्पणं तर्पणं स्मृतम्।
तारमायारमायोगे मनोर्दीपनमुच्यते। जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्।
संस्कारा दश संप्रोक्ताः सर्वतन्त्रेषु गोपिताः। यान्कृत्वा सम्प्रदायेनमन्त्री वांछितमश्नुते।

61- मन्त्रों के दश संस्कार- मन्त्रों को सिद्धि प्रदान करने वाले दश संस्कार बतलाये गये हैं जिन्हे जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन व गुप्ति के नाम से जाना जाता है।

जनन संस्कार- मातृकाओं के बीच से मन्त्रों का उद्धार जनन कहलाता है।

विशेष- भोजपत्र पर गोरोचन आदि से समत्रिभुज लिखना चाहिये। पश्चिम के कोण से प्रारम्भ कर उसे सात समान भागों में विभक्त करना चाहिये। इसी प्रकार ईशान एवं आग्नेय कोण से भी उसे सात- सात समान भागों में बाँटना चाहिये। ऐसा करने से इसमें 49 योनियाँ बन जायेगीं। इस चक्र में ईशान कोण से आरम्भ कर पश्चिम तक अकार से हकार पर्यन्त समस्त वर्णों को लिखना चाहिये। उसपर मातृका देवी का आवाहन कर चन्दन आदि से उसका पूजन करना चाहिये। फिर उससें मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करना चाहिये। इस प्रक्रिया को जनन संस्कार के नाम से जाना जाता है।

जीवन संस्कार-

प्रणवान्तरित मन्त्रवर्णों का जप जीवन के नाम से जाना जाता है। मन्त्रवर्णों को लिखकर चन्दन एवं जल से ताडन किया जाता है। मन्त्र जप कर्ता उस मन्त्र को करवीर के पुष्पों से लिखकर

मन्त्राक्षरसंख्या के अनुसार बोधन करे। मन्त्र की ऋण संख्या के हिसाब से अश्वत्थ पल्लवों से विशुद्धि हेतु अभिषेक करें। ज्योतिर्मन्त्र से दोहन कर विमलीकरण करे। उसी तरह आप्यायन, तर्पण, दीपनादि करके मन्त्रों का किया गया

कलौ सिद्धिप्रदा मन्त्राः-

सिद्धिप्रदाः कलियुगे ये मन्त्रास्तान्वदाम्यतः। त्र्यर्णएकाक्षरो अनुष्टुप् त्रिविधो नरकेसरी।

एकाक्षरो अर्जुनोनुष्टुप् द्विविधस्तुरगाननः। चिन्तामणिः क्षेत्रपालो भैरवो यक्षनायकः।

गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा। मातंगी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी।

शबर्येकजटावामा काली नीलसरस्वती। त्रिपुरा कालरात्रिश्च कलाविष्टप्रदा इमे।

शापरहिता मन्त्राः- भीष्मपर्वणि या गीता सा प्रशस्ता कलौ युगे। विष्णोः सहस्रनामाख्यं स्तोत्रं पापप्रणाशनम्।

गजेन्द्रमोक्षणं चैव तथा कारुण्यकः स्तवः। नारसिंहं तथा स्तोत्रं स्तोत्रं श्रीरामसंज्ञकम्।

देव्याः सप्तशती स्तोत्रं तथानामसहस्रकम्। श्लोकाष्टकं नीलकण्ठं शैवं नामसहस्रकम्।

त्रिपुरायाः प्रसादाख्यं सूर्यस्य स्तवराजकम्। पैत्रोरुचिस्तवो यश्च इन्द्राक्षीस्तोत्रमेव च।

वैष्णवं च महालक्ष्म्याः स्तोत्रमिन्द्रेणभाषितम्।। भार्गवाख्येन रामेण शप्तान्यन्यानि कारणात्।

62- कलि में सिद्धिप्रद मन्त्र- मन्त्रमहोदधि में कहा गया है कि कलियुग में जो सिद्धिदायक मन्त्र है उन मन्त्रों का वर्णन इस प्रकार है। नृसिंह का त्र्यक्षर मन्त्र, एकाक्षर एवं अनुष्टुप् इस तरह के तीन प्रकार के नृसिंह मन्त्र, एकाक्षर एवं अनुष्टुप् दो प्रकार के अर्जुन मन्त्र, दो तरह के हयग्रीव मन्त्र, चिन्तामणि मन्त्र तथा क्षेत्रपाल मन्त्र, भैरव मन्त्र ,यक्षराज मन्त्र, गोपाल मन्त्र , गणपति मन्त्र, चेटका यक्षिणी मन्त्र, मातंगी मन्त्र, सुन्दरी मन्त्र, श्यामा मन्त्र, तारामन्त्र, कर्णपिशाचिनी मन्त्र, शबरी मन्त्र, एकजटामन्त्र, वामाकाली मन्त्र, नीलसरस्वती मन्त्र, त्रिपुरामन्त्र एवं कालरात्री मन्त्र, ये सभी कलियुग में इष्ट प्रदान करने वाले मन्त्र बतलाये गये है। शापरहित मन्त्रों का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि भीष्म पर्व में जो गीता है वह कलियुग में प्रशस्त है। विष्णु सहस्रनाम स्तोत्र पापनाशक है। गजेन्द्रमोक्ष, कारण्यकस्तव, नरसिंहस्तोत्र, श्रीरामस्तोत्र, दुर्गासप्तशती स्तोत्र, सहस्रनाम स्तोत्र, श्लोकाष्टकनीलकण्ठ, शिवसहस्रनामस्तोत्र, त्रिपुराप्रसादस्तोत्र, सूर्यस्तवराज, पैत्र्यरुचिस्तोत्र, इन्द्राक्षी स्तोत्र, विष्णुस्तोत्र, इन्द्रप्रोक्तमहालक्ष्मी स्तोत्र ये सभी शापरहित है। इनके अतिरिक्त अन्य परशुराम द्वारा अभिशप्त है।

पूर्णाहुत्यादौ मुद्रा विचारः-

आवाहनादिका मुद्राः प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम्। याभिर्विरचिताभिस्तु मोदन्ते सर्वदेवताः।

सम्यक् संपूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोंजलिः। आवाहनी समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः।

अधोमुखी कृता सैव प्रोक्ता स्थापनकर्मणि। आश्लिष्टयुगला प्रोन्नतांगुष्ठयुग्मका।

सन्निधाने समुद्दिष्टा मुद्रेयं तन्त्रवेदिभिः। अंगुष्ठगर्भिणी सैव सन्निरोधे समीरिता।

उत्तानौ द्वौ कृतौ मुष्टी संमुखीकरणी स्मृता। देवतांगे षडंगानां न्यासः स्यात् संकलीकृतिः।
सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी। अवगुंठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता सती।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्ट कनिष्ठानामिका पुनः। तथा च तर्जनी मध्या धेनुमुद्रा समीरिता।
अमृतीकरणं कुर्यात्तया देशिकसत्तमः। अन्योन्यग्रथितांगुष्ठा प्रसारित करांगुलि।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः। योजनात्सर्वदेवानां द्रावणात्पापसंहतेः।
तस्मान्मुद्रेति सा ख्याता सर्वकामार्थसाधिनी। कुम्भमुद्रा- दक्षांगुष्ठे परांगुष्ठे खिप्त्वा हस्तद्वयेनच।
सावकाशामेकमुष्टिं कुर्यात्सा कुम्भमुद्रिका। कूर्ममुद्रा- वामहस्ते च तर्जन्यां दक्षिणस्य कनिष्ठिका।
तथा दक्षिणतर्जन्यां वामांगुष्ठं नियोजयेत्। उन्नतं दक्षिणांगुष्ठं वामस्य मध्यमादिकाः।
अंगुलीर्योजयेत्पृष्ठे दक्षिणस्य करस्य च। वामस्य पितृतीर्थेन मध्यमानामिके तथा।
अधोमुखे च ते कुर्याछदक्षिणस्य करस्य च। कूर्मपृष्ठसमं कुर्यात् दक्षपाणिं च सर्वतः।
कूर्ममुद्रेयमाख्याता देवताध्यानकर्मणि।

यथा क्रम से आवाहनादि मुद्रा का वर्णन कर रहा हूं जिसके निर्माण करने से सभी देवता मुदित हो जाते है। दोनों हाथों से अंजलि बांध कर दोनों अगूठों को अपनी -अपनी अनामिकाओं के मूलपर्वों पर लगाना चाहिये। इसे आवाहनी मुद्रा कहा जाता है। इसह आवाहनी मुद्रा को अधोमुखी बना देने से स्थापनी मुद्रा बन जाती है। दोनों हाथों से मुठ्ठी बांधकर दोनों के अंगूठों को खड़ा कर देने से सन्निधापनी मुद्रा बनती है। कहा जाता है। इस मुद्रा की मुइ्ठियों को उपर घुमा दिया जाता है तो संमुखीकरणमुद्रा बन जाती है। देवताओं के षडंगन्यास में सकलीकृत् मुद्रा भी दिखानी चाहिये। बांये हाथ की मुइ्ठी बांधकर तर्जनी को अधोमुखकरके उसे नियमित रूप से आगे पीछे करने से अवगुंठन मुद्रा बनती है। दाहिने हाथ की अंगुलियों को बायें हाथ की अंगुलियों पर रखकर दाहिने तर्जनी को मध्यमा के मध्य में लगावें। बायें हाथ की अनामिका को दाहिने हाथ की कनिष्ठिका से लगाये।इसी प्रकार सभी अंगुलियों को योजित करने के बाद हाथों को उलट देने से धेनु मुद्रा बनती है। इसी प्रकार अमृतीकरण भी किया जाता है। अमृतीकरण के समय अमृत बीज वं का उच्चारण भी करना चाहिये। दोनों अंगूठों को एक दूसरे के साथ ग्रथित करके दोनों हाथों की अंगुलियों को प्रसारित देने से महामुद्रा बन जाती है। जो साधक को साधक को सभी देवताओं से जोड़े तथा पापों के समूहों को विनष्ट कर दे ऐसे सर्वकार्य साधिनी प्रक्रिया को मुद्रा कहा गया है। दायें अंगूठे को बायें के उपर रखे। इसी अवसथा में दोनों हाथ की मुठ्ठियां बाधे। दोनों मुठ्ठियों के बीच में थोड़ी जगह होनी चाहिये। इसे कुम्भ मुद्रा कहते है। बाईं तर्जनी को दाहिनी कनिष्ठिका से मिलायें। पुनः दाहिनी तर्जनी को बायें अंगूठे से मिलायें और दाहिने अंगूठे को उपर उठा दे। अब बायें हाथ की मध्यमा और अनामिका को दाहिने हाथ की हथेली से लगायें। दाहिने हाथ को कछुए के पीठ की तरह बनायें। देवता के ध्यान कर्म में प्रयुक्त होने वाली इस मुद्रा का नाम कूर्म मुद्रा है।

दक्षस्य तर्जनी मध्ये सव्ये करतले क्षिपेत्। अभिघातेन शव्दःस्यादस्त्रमुद्रा समीरिता।
मत्स्यमुद्रा- दक्षपाणेः पृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत्। अंगुष्ठौ चालयेत्सम्यक् मुदेयं

मत्स्यरूपिणी।

शंखमुद्रा- वामांगुष्ठं तु संगृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना। कृत्वोत्तानं ततो मुष्टिमंगुष्ठं तु प्रसारयेत्। वामांगुल्यस्तथाश्लिष्टाः संयुताः सुप्रसारिताः। दक्षिणांगुष्ठ स्पृष्टा ज्ञेयैषा शंखमुद्रिका।

गरुड़मुद्रा- मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे ष्लिष्टावंगुष्ठौ तथा। मध्यमानामिके तु द्वौ पक्षाविव विचालयेत्।

एषा गरुड़मुद्रा स्याद्विष्णोः संतोषवर्धिनी।

योनि मुद्रा- मध्ये कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरिसंस्थिते। अनामिके मध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके। सर्वा एकत्र संयोज्या अंगुष्ठपरिपीडिताः। एषा तु प्रथमामुद्रा योनि मुद्रेति संज्ञिता।

प्रार्थना मुद्रा- प्रसृतांगुलिकौ हस्तौ मिथः श्लिष्टौ च संमुखौ। कुर्यात्स्वे हृदये सेयं मुद्रा प्रार्थनसंज्ञिका।

पंकजमुद्रा- संमुखीकृत्य हसतौ द्वौ किंचित्संकुचितांगुली। मुकुली तु समाख्याता पंकजा प्रसृतैव सा।।

दोनों हाथों को बाण के समान फैलाकर तर्जनी और अंगूठे के घर्षण से चुटकी बजाने को अस्त्र मुद्रा कहते है। बाईं हथेली को दाहिने हाथ के पृष्ठ भाग पर रखे और फिर दोनों अगूंठों को हथेली को पार करते हुये मिलाये। यह मत्स्य मुद्रा है। बायें हाथ के अगूंठे को दाहिनी मुठ्ठी में रखे, दाहिनी मुठ्ठी को उर्ध्वमुख रखकर उसके अंगूठे को फैलायें। बायें हाथ की सभी अगुंलियों को एक दूसरे के साथ सटाकर फैला दें। अब बायें हाथ की फैली उंगलियों को दाहिनी ओर घुमाकर दाहिने हाथ के अगूठें का स्पर्श करें। यह शंख मुद्रा कहलाती है। दोनों हाथों के पृष्ठ भाग को एक दूसरे से मिलाइये। अब नीचे की ओर लटके हुये दोनों हाथों को तर्जनी और कनिष्ठा को एक दूसरे के साथ ग्रथित कीजिये। इसी स्थिति में दोनों हाथों की अनामा और मध्यमाओं को उल्टी दिशाओं में किसी पक्षी के पंखों की भाति उपर नीचे कीजिये। यह गरुड़ मुद्रा कहलाती है। दोनों कनिष्ठिकाओं को तथा तर्जनी एवं अनामिकाओं को बांधे। अनामिका को मध्यमा से पहले किंचित् मिलायें और फिर उन्हे सीधा कर दे। अब दोनों अगूठों को एक दूसरे पर रखे यह योनि मुद्रा कहलाती है। दोनों हाथों को फैलाये हुये हृदय पर रखे यह प्रार्थना मुद्रा है। दोनों हाथों को सम्मुख करके हथेलियां उपर करे, अंगुलियों को बन्द कर मुठ्ठी बाधे। अब दोनों अगूठों को उगलियों के उपर से परस्पर स्पर्श कराये।

इस प्रकार पुर्णाहुति में मन्त्र, उनके संस्कार तथा विभिन्न प्रकार क आवश्यक मुद्राआंे के कृत्य विचार के विषय में आपने इस प्रकरण में विस्तार से जाना । आशा है इसके बारे में जानकारी हो गयी होगी। अब हम इसको आधार बनाकर कुछ प्रश्न बनाने जा रहे हैं जिससे आपका ज्ञान इस विषय में और प्रौढ़ हो जायेगा। इसमें प्रश्नों या संबंधित शब्दों को दिया गया है जिसके आगे दिये गये रिक्त स्थान को दिये गये विकल्पों से प्रपूरित करना है। प्रश्न अधोलिखित है-

अभ्यास प्रश्न-

उपरोक्त विषय को पढ़कर आप अधोलिखित प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं। अधोलिखित प्रश्न बहु विकल्पीय है। प्रत्येक प्रश्नों में दिये गये चार विकल्पों में से कोई एक ही सही है, जिसका चयन आपको करना है-

प्रश्न 1- मन्त्राणां .... कथ्यन्ते संस्काराः सिद्धदायिनः। जननं जीवनं पश्चात् ताडनं बोधनं तथा।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 2- अभिषेको विमलीकारणाप्यायने पुनः। तर्पणं .... गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 3- मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो .... स्मृतम्। प्रणवान्तरितान्कृत्वा मन्त्रवर्णांजपेत्सुधीः।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 4- मन्त्रवर्णान्समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसां प्रत्येकं वायुना मन्त्री ...... तदुदाहृतम्।

क- दश, ख-दीपनं, ग- ताडनं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 5- विलिख्यमन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः करवीरजैः। तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हन्याद्वातेन ....।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 6- स्वतन्त्रोक्तविधानेन ....मन्त्रार्णसंख्यया। अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिंचेद्विशुद्धये।

क- दश, ख-मन्त्री, ग- जननं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 7- संचिन्त्य मनसा......... ज्योतिर्मंत्रेणनिर्दहेत्। मन्त्रेमलत्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम्।

क- दश, ख-दीपनं, ग-मन्त्रं, घ- बोधनम्।

प्रश्न 8- तारं व्योमाग्निमनुयुग्दण्डो ज्येतिर्मनुर्मतः। कुषोदकेन जप्तेन प्रत्यर्णं......... मनोः।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- प्रोक्षणम्।

प्रश्न 9- तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनं मतम्। मन्त्रेणवारिणा मन्त्रतर्पणं तर्पणं स्मृतम्।

क- दश, ख-दीपनं, ग- जननं, घ- तर्पणम्।

प्रश्न 10- तारमायारमायोगे मनोर्दीपनमुच्यते। जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वप्रकाशनम्।

क- दश, ख-दीपनं, ग- गोपनं, घ- बोधनम्।

5.5 सारांश-

इस इकाई में बलिदान एवं पूर्णाहुति विचार संबंधी प्रविधियों का अध्ययन आपने किया । इस विधि के ज्ञान के अभाव में पूर्णिमा आदि के अवसर पर हवन विधियों का आयोजन, विष्णु यज्ञादि अनुष्ठानों के अवसर पर हवनादि का सम्पादन किसी भी व्यक्ति द्वारा ठीक ढंग से नही हो सकता है। क्योकि इसके बिना हवन की पूर्णाहुति ही नही होगी तो अनुष्ठान का फल कैसे प्राप्त किया जा सकता है।

शास्त्र कहता है कि पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति अर्थात् पूर्णाहुति से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। संसार के समस्त मानव अपने अपने मनोकामनाओं की प्रपूर्ति के लिये विविध यत्न करते रहते हैं जिनमें कर्मकाण्ड के सहारे भी लोग मनोकामनाओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं। शास्त्रीय विधि को गीता में सर्वश्रेष्ठ विधि कहा गया है इसलिये भारतीय मनीषा पौरोहित्य के देव पूजनादि कर्मों का सम्पादन कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का प्रयत्न करती हैं। अनुष्ठानादि कार्यों

को शास्त्रीय विधि के अन्तर्गत इसलिये रखा गया है क्योकि इनका एक क्रम और नियम होता है जो गृह्सूत्रादि ग्रन्थों से प्रमाणित होता है। किसी भी कर्मकाण्ड का आरम्भ जब हम करते है तो जब तक पूर्णाहुति नही हो जाती है तब तक वह अनुष्ठान पूर्ण नही माना जाता है। पूर्णाहुति के अनन्तर ही अनुष्ठान पूर्ण फल देना प्रारम्भ करता है।

पूर्णाहुति में कहा गया है कि स्रुचि के मध्य में आज्य रखकर उसमें वस्त्र, तांबूल, पूंगीफल, पुष्प समन्वित पूर्णाहुति रखे। उसको अधोमुख स्रुव से आच्छन्न करके गन्धाक्षत से समन्वित करके दाहिना हाथ पूर्व में एवं बाया हाथ उसके पश्चात् होना चाहिये। ये हाथ स्रुचि के आगे एवं मध्य के मध्य में तथा मूल एवं मध्य के मध्य में होना चाहिये। हमेशा पूर्णाहुति दोनों हाथों से दी जानी चाहिये। एक हाथ से दी गयी पूर्णाहुति निरर्थक मानी जाती है। शंख के समान मुद्रा बनाकर स्रुचि को वामस्तनान्त तक रखना चाहिये। सप्तते अनुवाक्, आग्नेय सूक्त, वैष्णव, रौद्र, एन्दव, महावैश्वानर एवं चमक मन्त्रों को पढ़ना चाहिये। विवाहादि क्रिया में, शालापूजन में, वास्तुपूजन में, नित्यहोम में एवं वृषोत्सर्ग में पूर्णाहुति नही दी जाती है। स्विष्कृद्धवन के बाद बलि देनें का विधान आता है। उसमें दिक्पालों, नवग्रहों, क्षेत्रपालों को बनि प्रदान किया जाता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावलियां-

होमावसाने - हवन के समाप्त हाने पर, कृत् तूर्यनादौ- तुरही इत्यादि वाद्य यन्त्र की ध्वनि करत हुये, गुरुर्गृहीत्वा- आचार्य ग्रहण करके, बलिपुष्पधूपम्- बलि, पुष्प आर धूप, आवाहयेल्लोकपतीन् - लोकपतियों को आवाहित करे, क्रमेण- क्रम से, यजमानयुक्तः- यजमान से युक्त होकर, पूर्णाहुति- पूरण करने वरली आहुति, हुत्वा- हवन करके, बर्हिहोमादिकं - कुशा इत्यादि, चरेत्- आचरण करना चाहिये, प्राश्नाति - प्राशन करता है, इति - यह, सूत्रमस्ति- सूत्र है, सर्वहोमं हुत्वा- सभी होम करके, शेषं प्राशनमिति - शेष का प्राशन करें, कात्यायनेनोक्तम्- कात्यायन के द्वारा कहा गया है, अस्य- इस का, सूत्रस्य- सूत्र का, व्याख्यायां - व्याख्या में, श्री हरिहरेनुक्तं - श्री हरिहर जी के द्वारा कहा गया है, सर्वेषामाहुतीनां - सभी आहुतियों का,होमद्रव्यं - हवनीय द्रव्य, स्रुवेऽ वशेषितं - स्रुव में अवशिष्ट रह गया है, संस्रवत्वेन- संस्रव के रूप में, प्रसिद्धं पात्रान्तरे - प्रसिद्ध पात्रान्तर में , प्रक्षिप्यते - छोड़ा जाता है, तत्प्राश्यम्- उसका प्राशन करना चाहिये, ऐशान्यामाहरेद्भस्म- ईशान काण से भस्म लेना चाहिये, स्रुचा वाथ- स्रुचि से अथवा, स्रुवेण वा- स्रुव से, अंकनं कारयेत्तेन- उसस अंकन करना चाहिये, शिरः- शिर का, कण्ठांसकेषु - कंठ एवं कन्धा का, श्रेयः सम्पाद्य दानं - इसके बाद श्रेय सम्पाद्य का दान ब्राह्मणों के द्वारा यजमान को किया जाता है, अभिषेको- अभिषेक, विसर्जनम्- विसर्जन, विप्राशिषः- विप्र के आशीष से, प्रगृह्णीयात्तान्मिष्टान्नेन -उस मिष्ठान्न का ग्रहण करे, भोजयेत्- भोजन करावे, ब्राह्मणभोजनसंख्या-ब्राहमण भाजन की संख्या, शान्तौ - शान्ति कर्म में, वक्ष्ये - बोल रहा हूँ , होमाद्विप्रान्दशांशतः- हाम का दशांश, उत्तमं - उत्तम, तद्भवेद् - वह हाता है, तत्वांशेन- चौबीसवां अंश, मध्यमम्- मध्यम, होमाच्छतांशतो - होम का सौंवा अंश, विप्रभोजनं - विप्रभोजन, त्वधममं -

तो अधम, शान्तेर्द्विगुणितं - शान्ति से दुगूना, विप्रं भोजनं - ब्राह्मणों का भोजन, स्तम्भने - स्तम्भन में, मतम्- विचार, त्रिगुणं - तिगूना, द्वेषणोच्चाटे - द्वेषण कर्म एवं उच्चाटन कर्म में, मारणे- मारण में, होम सम्मितम्- होम के बराबर, एकं - एक, एकाहुतौ - एक आहुति में, त्वन्नेन- अन्न से, विप्रमेकं - एक विप्र, शताहुतौ- सौ आहुति, सहस्रस्याहुतेर्वैकं - एक हजार आहुति में भी एक, जघन्योऽपि- अधम, दहति- जल जाता है, क्षिप्रं-शीघ, तद्राष्ट्रं - वह राष्ट्र, नात्र संशयः- इसमं संशय नही है। अतो दातुं - देने में, अशक्तो - असमर्थ, यो- जो, दक्षिणां - दक्षिण, अन्नमेव वा- अथवा अन्न, जपै - जप से, प्रणामैः- प्रणाम से, स्तोत्रैश्च - स्तात्रों से, तोषयेत्- संतुष्ट करे, तर्पयेद्गुरुन्- आचार्य का तृप्त करे , दक्षिणाविचारः- दक्षिणा का विचार, दक्षिणया- दक्षिणा से, मुहूर्त्ते - दो घटी, समतीते - व्यतीत हो जाने पर, भवेच्छतगुणा - सौ गूना हो जाती है, सा- वह, त्रिरात्रे - तीन रात में, तद्दशगुणा- उसका दश गूना, सप्ताहे द्विगुणा ततः- सात दिन में उसका दुगूना, मासे - एक महीने में,लक्षगुणा- लाख गूना, प्रोक्ता- कहा गया है, ब्राह्मणानां- ब्राह्मणों की दक्षिणा, वर्द्धते- बढ़ती है, संवत्सरे व्यतीते - एक वर्ष व्यतीत हाने पर, त्रिकोटिगुणा- तीन करोण गूना , भवेत्- होती है, कर्म्म - कर्म, तद्यजमानानां - उस यजमान का, निष्फलं भवेत्- निष्फल हो जाता है, ब्रह्मस्वापहारी- ब्रह्म धन हरण कर्ता, न कर्मार्हो - कर्म के योग्य नही होता है, अशुचिर्नरः- अपवित्र मनुष्य।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

पूर्व में दिये गये सभी अभ्यास प्रश्नों के उत्तर यहां दिये जा रहे हैं। आप अपने से उन प्रश्नों को हल कर लिये होगें। अब आप इन उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कर लीजिये। यदि गलत हो तो उसको सही करके पुनः तैयार कर लीजिये। इससे आप इस प्रकार के समस्त प्रश्नों का उत्तर सही तरीके से दे पायेगें।

4.3.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-घ।

4.3.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ख, 10-ग।

4.4.1 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ, 5-क, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-ग, 10-घ।

4.4.2 के अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1-क, 2-ख, 3-ग, 4-ग, 5-घ, 6-ख, 7-ग, 8-घ, 9-घ, 10-ग।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1-मनोभिलषितव्रतानुवर्णनम्।

2-पारस्कर गृह्य सूत्रम्।

3- अनुष्ठान निधानम्।

4-शब्दकल्पद्रुमः।

5-संस्कार विधानम्।

6-संस्कार भास्करः।

7-शान्ति- विधान।

8-संस्कार एवं शान्ति का रहस्य।

5.9- सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री-

1- यज्ञ मीमांसा।

2- प्रयोग पारिजात।

3- अनुष्ठान प्रकाश।

4- पूर्त्तकमलाकरः।

5.10 निबंधात्मक प्रश्न-

1- पूर्णाहुति का परिचय बतलाइये।

2- ब्राह्मण भोजन संख्या विधान बतलाइये।

3- दक्षिणा विचार को लिखिये।

4- पुरश्चरण का नियम लिखिये।

5- मन्त्र संस्कार का विचार लिखिये।

6- आवहनादि मुद्राओं का विचार लिखिये।

7- पूर्णाहुति विचार लिखिये।

8- बलिदान के बारे में विचार लिखिये।

9- होमान्त कृत्य प्रकाश डालिये।

10- पूर्णाहुति का महत्व लिखिये।